आचार्य राजशेखर

डॉ० श्यामा वर्मा



मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

आचार्य राजशेखर

प्रकाशक :
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
भोपाल.

प्रथम संस्करण :
१९७१

मूल्य :
दस रुपये

मुद्रक :
चन्द्रा प्रिन्टर्स, सुलतानिया रोड,
भोपाल.

प्राक्कथन

इस बात पर सभी शिक्षा-शास्त्री एकमत हैं कि मातृभाषा के माध्यम से दी-गयी शिक्षा छात्रों के सर्वांगीण विकास एवं मौलिक चिन्तन की अभिवृद्धि में अधिक सहायक होती है। इसी कारण स्वातन्त्र्य आन्दोलन के समय एवं उसके पूर्व से ही स्वामी श्रद्धानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं महात्मा गांधी जैसे मान्य नेताओं ने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने की दृष्टि से आदर्श शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी देश में शिक्षा-सम्बन्धी जो कमीशन या समितियाँ नियुक्त की गयी, उन्होंने एकमत से इस सिद्धांत का अनुमोदन किया।

इस दिशा में सबसे बड़ी बाधा थी—श्रेष्ठ पाठ्य-ग्रन्थों का अभाव। हम सब जानते हैं कि न केवल विज्ञान और तकनीक, अपितु मानविकी के क्षेत्र में भी विश्व में इतनी तीव्रता से नये अनुसंधानों और चिन्तनों का आगमन हो रहा है कि यदि उसे ठीक ढंग से गृहीत न किया गया तो मातृभाषा से शिक्षा पाने वाले अंचलों के पिछड़ जाने की आशंका है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने इस बात का अनुभव किया और भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में विश्व-विद्यालयीन स्तर पर उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थ तैयार करने के लिए समुचित आर्थिक दायित्व स्वीकार किया। केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय की यह योजना उसके शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य अकादमियों द्वारा कार्यान्वित की जा रही है। मध्य-प्रदेश में 'हिन्दी ग्रन्थ अकादमी' की स्थापना इसी उद्देश्य से की गयी है।

अकादमी विश्वविद्यालयीन स्तर की मौलिक पुस्तकों के निर्माण के साथ, विश्व की विभिन्न भाषाओं में बिखरे हुए ज्ञान को हिन्दी के माध्यम से प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों को उपलब्ध करेगी। इस योजना के साथ राज्य के सभी महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय सम्बद्ध हैं। मेरा विश्वास है कि सभी शिक्षा-शास्त्री एवं शिक्षा-प्रेमी इस योजना को प्रोत्साहित करेंगे। प्राध्यापकों से मेरा अनुरोध है कि वे अकादमी के ग्रन्थों को छात्रों तक पहुँचाने में हमें सहयोग प्रदान करें जिससे बिना और विलम्ब के विश्वविद्यालयों में सभी विषयों के शिक्षण का माध्यम हिन्दी बन सके।

जगदीशनारायण अवस्थी
शिक्षा-मंत्री
अध्यक्ष : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

प्रस्तावना

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन संस्कृत साहित्य-समीक्षा की आचार्य-माला के अन्तर्गत किया जा रहा है। इसके पूर्व आचार्य मम्मट और आचार्य हेमचन्द्र के सम्बन्ध में दो समीक्षा-ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. श्यामा वर्मा की प्रस्तुत कृति इस माला का तृतीय पुष्प है।

काव्य-शास्त्रियों और नाटककारों में आचार्य राजशेखर का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे एक प्रकार से मध्यप्रदेशीय कहे जा सकते हैं। दक्षिण भारत में जन्म लेकर और सम्भवतः वहीं विवाहित होकर उन्होंने महोदय (कन्नौज) को अपना साधना-क्षेत्र बनाया किन्तु उनके अन्तिम दिन कलचुरि के शासक केयूरवर्ष के साथ उनकी राजधानी त्रिपुरी में बीते। अनुमान है कि उनका बाल्यकाल भी यहीं बीता होगा। उनकी लेखनी से प्रसूत त्रिपुरी तथा माहिष्मती आदि मध्यप्रदेशीय नगरों के वर्णन ने इस राज्य को गौरवान्वित किया है। सम्भवतः वे संस्कृत के एकमात्र भाग्यवान नाटककार हुए जिनकी कृति का रंगमंचीय प्रयोग उनकी पत्नी ने किया। अवन्तिसुन्दरी के व्यक्तित्व का उत्कर्ष राजशेखर की पत्नी होने के कारण ही नहीं, उनकी अपनी विद्वत्ता और कला-मर्मज्ञता के कारण विद्वत्-समाज में बहुत अधिक है। वे चौहान-क्षत्रिय कुल की थी और लगता है कि राजशेखर से उनका परिणय पारस्परिक अनुराग का परिणाम था। 'काव्यमीमांसा' में अवन्तिसुन्दरी के विभिन्न मतों का उल्लेख मिलता है।

राजशेखर की नाट्य कृतियाँ—'बाल रामायण', 'बाल भारत', 'कर्पूरमञ्जरी' और 'विद्धशालभञ्जिका' प्रसिद्ध हैं। इन सबका काव्य की दृष्टि से भी बहुत अधिक महत्व है। राजशेखर सरस-सूक्ति के प्रति पूर्ण निष्ठावान थे। वे इसे ही काव्य की आत्मा मानते थे। अतः उनकी रचनायें सरस सूक्तियों से भरी पड़ी हैं। 'कर्पूरमञ्जरी' एकमात्र उपलब्ध सट्टक है जिसका महत्व प्राकृत की दृष्टि से भी महनीय है। इसमें तथा 'विद्धशालभञ्जिका' में उनके नाट्य-कौशल के दर्शन होते हैं। बाल-रामायण को भी नाटक की दृष्टि से नहीं तो काव्य की दृष्टि से अतीव उत्कृष्ट कोटि में रखा जा सकता है।

राजशेखर को आचार्यों की श्रेणी में प्रतिष्ठापित करने वाला उनका महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'काव्यमीमासा' है। यदि यह ग्रन्थ पूरा हो गया होता तो सस्कृत साहित्य का सागर होता। फिर भी जो भाग उपलब्ध है, उसका विशेष महत्व है। इसमें राजशेखर ने सम्पूर्ण पूर्ववर्ती चिन्तन का सार सगृहीत कर दिया है। साहित्यिक क्षेत्र में शायद ही कोई भाग्यवान व्यक्ति राजशेखर के समान परवर्ती लेखकों द्वारा उद्धृत किया गया हो। भाषा, व्याकरण, दर्शन आदि समस्त वाङ्मयीन अङ्गो पर राजशेखर का व्यापक अधिकार है। उनकी शैली अत्यन्त मधुर, प्रवाहमयी एवं प्रभावोत्पादक है। राजशेखर की प्रत्येक सूक्ति हृदय और बुद्धि दोनों को समान रूप से प्रभावित करती है। राजशेखर की एक बहुत बड़ी विशेषता उनकी राष्ट्र-भक्ति है। कालिदास के बाद अन्य किसी कवि या आचार्य ने भारत के समस्त जनपदों, नदियों, पर्वतों तथा रहन-सहन, खान-पान वेष-भूषा और सस्कार आदि के प्रति न इतना प्रेम दिखाया और न उनका इतना विशद वर्णन किया जितना राजशेखर ने किया है। राजशेखर के ग्रन्थ वस्तुतः सम्पूर्ण भारत के सास्कृतिक कोष हैं। इसलिए स्वय-पूर्ण, आत्म-तुष्ट एवं श्री और सरस्वती दोनों के कृपापात्र आचार्य कवि के चरणों में यह पुष्प समर्पित करते हुए अपूर्व सुख का अनुभव हो रहा है।

हिन्दी-टकण में कुछ वर्णों की कमी के कारण सस्कृत उद्धरणों में सन्धि के कुछ नियमो, विशेषत परसवर्णता का पालन पूर्णत: नहीं हो सका है, इस कारण कई स्थानों पर 'पञ्च' के लिए पच या 'अङ्क' के लिए अक और जहाँ के लिए 'जहा' जैसे प्रयोग मिलेंगे। आशा है सुधी पाठक सस्कृत-मुद्रण की कठिनाई समझ कर तदर्थ उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे।

भगवान करे, डॉ श्यामा वर्मा की यह कृति राजशेखर की काव्य-माधुरी से जन-जन को आप्यायित कर साफल्य-लाभ करे और उनकी ही कृति का यह वाक्य सफल हो –

'फुल्ला कीर्ति र्भ्रमति सुकवे दिक्षु यायावरस्य'

प्र. द. श्रीवास्तव

भोपाल :
१५ जून, १९७१

सचालक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

चतुर्थ खण्ड

परिशिष्टियाँ

संकेत-सूची

का० म०	कर्पूरमञ्जरी
का० मी०	काव्यमीमांसा
बा० भा०	बाल-भारत
बा० रा०	बालरामायण
वि० भ०	विद्धशालभञ्जिका
ए० बी० ओ० आई०	Annals of the Bhandarkar Oriental Institute
आई० ए०	Indian Antiquary
ई० आई०	Epigraphica Indica
जी० ओ० एस०	Gaekwad's Oriental Series
एच० ओ० एस०	Harward's Oriental Series
सा० द०	साहित्य दर्पण
दश०	दशरूपक
शृं० प्र०	शृंगार-प्रकाश

प्रथम खण्ड

बभूव वल्मीकभवः कवि पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स राजते सम्प्रति राजशेखरः ॥

—श्री० नारायण राम आचार्य, ...
श्री० एन० जी० सुरु, डॉ० पी०वी० काणे, डॉ० मिराशी

५. ग्यारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं बारहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध —श्री० विल्सन

६ ईसा की चौदहवी शताब्दी —डॉ० मैक्समूलर

उक्त विद्वानो के द्वारा अपने मत के समर्थन मे दिये गये तर्कों की परीक्षा करने पर हम राजशेखर के रचना-काल के विषय मे सही निर्णय के निकट पहुँच सकते है।

ईसा की सातवीं शताब्दी ईसा की सातवीं शताब्दी को राजशेखर का रचना-काल मानने वाले श्री० बरो अपने समर्थन मे कवि के नाटक बालरामायण एवं बालभारत के इस श्लोक को उधृत करते है—

> बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा
> ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
> स्थितः पुनर्योभवभूतिरेखया
> स वर्तते सम्प्रति राजशेखर[1] ॥

अर्थात् पहले वाल्मीकि नामक कवि हुए। फिर वे भर्तृमेण्ठ के नाम से भूमण्डल पर अवतरित हुए। तत्पश्चात् उन्होने ही भवभूति के नाम से पृथ्वी पर जन्म लिया और अब वे ही राजशेखर के रूप में विद्यमान हैं।

राजशेखर के इस कथन से स्पष्ट है कि उनसे पूर्व भवभूति की मृत्यु हो चुकी थी। श्री० बरो महोदय ने भवभूति को सातवीं शताब्दी का माना है। उनका मत है कि कुछ समय पश्चात् आविर्भूत राजशेखर भी सातवीं शताब्दी मे ही हुए होंगे।[2]

श्री० बरो महोदय ने इस मत पर श्री० वी० एस० आपटे का आक्षेप यह है कि भवभूति अपने युग मे लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार नही थे। वे स्वयं कहते हैं—

> ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
> जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ।

---

१. बालरामायण १-१६ एवं बालभारत १-१२
२ भवभूति ऐण्ड हिज प्लेस इन संस्कृत लिट्रेचर पृ० -१७

उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥[1]

अर्थात् कभी न कभी, कहीं तो मेरे ग्रन्थों का सहृदय आलोचक पैदा होगा क्योंकि काल अनन्त है और पृथ्वी विशाल है। स्पष्ट है कि भवभूति अपने जीवन-काल में *प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिये करुण-क्रन्दन करने वाले, तथा सम्मान के लिये झोली* फैलाने वाले मलिन-यशा कवि थे। यदि राजशेखर भवभूति के कुछ ही समय पश्चात् हुए होते, तो वे उन्हें कभी अपना आदर्श नहीं मान सकते थे। भवभूति को उचित प्रतिष्ठा प्राप्त करने में कम से कम सौ वर्षों का समय अवश्य लगा होगा। और तभी राजशेखर ने उन्हें अपना आदर्श मानने में गौरव का अनुभव किया होगा। अतः करो महोदय का मत, श्री० आप्टे की दृष्टि में उचित नहीं है। उन्होंने राजशेखर का काल लगभग आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है।

आठवीं शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले विद्वान् क्षीरस्वामी द्वारा लिखित 'अमरकोष' की टीका को आधार मानते हैं। इस टीका में प्रसंगतः राजशेखर की 'विद्धशालभञ्जिका' के चार श्लोक उद्धृत हैं।[2] जिनके आधार पर *श्री पीटर्सन एवं पण्डित दुर्गा प्रसाद क्षीरस्वामी को राजशेखर का समकालीन मानते* हैं। उनकी धारणा है कि क्षीरस्वामी काश्मीर के राजा जयापीड के गुरु थे।[3] जयापीड का समय ७५० ई० है। अतः इन विद्वानों ने क्षीरस्वामी को भी आठवीं शताब्दी के मध्य में तथा राजशेखर को उनका समकालीन सिद्ध करने का प्रयास किया है। *यद्यपि काश्मीर के राजा जयापीड के गुरु का नाम क्षीरस्वामी अवश्य था, किन्तु उन्होंने अमरकोष पर टीका नहीं लिखी। वस्तुतः अमरकोष पर टीका लिखने वाले* क्षीरस्वामी का समय ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। अतः जयापीड के गुरु

---

१. मालतीमाधव-१-४८
२ इनके आरम्भिक चरण हैं—
   (१) "दरदलित हरिद्रागर्भगौराङ्गयष्टिः"—अमरकोष पृ० १८ वि० भ० ३-१३
   (२) 'द्विर्भ्यस्थिति पुराण-मौक्तिकमणि.'—अमरकोष पृ० २२ वि० भ० १-११
   (३) 'गोनासाविनिवेशितकरम्'—अमरकोष पृ० ३८ वि० भ० १-३
   (४) 'शार्दूलि कृष्णसारो नमो मन्मथाय—अमरकोष पृ० १८७ वि० भ० १-१३
३. इन्ट्रोडक्शन टु वल्लभदेवाज सुभाषितावली—पृ० १०१

क्षीरसागर के भ्रान्त नाम के आधार पर राजशेखर को आठवी शताब्दी का मानना अनुचित है।

आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध : आठवी शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले श्री आप्टे का कथन है कि—

"Bhavabhuti was not appreciated in his own days He had to rest with well ground faith on boundless time and extensive time and extensive earth for the appreciation of his works, and it is, I think, quite reasonable to suppose that a period of at least 100 years must have elapsed before the verdict of posterity was unmistakeably pronounced in his favour. At such a dist nce can alone Rajacekhara be reasonably supposed to mention Bhavabhuti in the manner above referred to. From this I conclude that our poet must have not flourished till at least one hundred years after Bhavabhuti. In other woeds he could not have lived earlier than the end of the 8th Century A. D.,[1]

भवभूति के गौरव के सम्बन्ध मे आप्टे महोदय का कथन ठीक भी हो सकता है, किन्तु राजशेखर के काल-निर्धारण के सम्बन्ध मे यह आधार अप्रामाणिक है। राजशेखर ने अपने ग्रन्थो मे अपने आश्रयदाता नरेश महेन्द्रपाल का उल्लेख किया है। किन्तु सियदोनी अभिलेख के अनुसार महेन्द्रपाल का राज्यकाल ९०३ ई० से ९०७ ई० ठहरता है।[2] अत श्री० आप्टे का मत प्रमाणिक प्रतीत नही होता।

ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध : ग्यारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध एव बारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध को राजशेखर का रचना-काल मानने वाले विल्सन महोदय ने अपने मत की पुष्टि मे कर्पूरमञ्जरी सट्टक की निम्न प्रस्तावना उद्धृत की है[3] —

चाहुआणकुल मोलिमालिआ राअसेहर कइद गेहिणी।
भत्तुणो किइमवतिसुन्दरी सा पउजइउमेदमिच्छइ ॥

इसके अनुसार राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी न केवल चौहान कुलोत्पन्न है अपितु वह चौहान कुल का शिरोरत्न भी है। चौहान वश राजपूतों का था।

---

१. राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग्स पृ०-१८
२ एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १ पृ० १७३।
३. कर्पूरमजरी–१-११।

उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥[1]

अर्थात् कभी न कभी, कहीं तो मेरे ग्रन्थों का सहृदय आलोचक पैदा होगा क्योंकि काल अनन्त है और पृथ्वी विशाल है। स्पष्ट है कि भवभूति अपने जीवन-काल में प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिये करुण-क्रन्दन करने वाले, तथा सम्मान के लिये झोली फैलाने वाले मलिन-यशा कवि थे। यदि राजशेखर भवभूति के कुछ ही समय पश्चात् हुए होते, तो वे उन्हें कभी अपना आदर्श नहीं मान सकते थे। भवभूति को उचित प्रतिष्ठा प्राप्त करने में कम से कम सौ वर्षों का समय अवश्य लगा होगा। और तभी राजशेखर ने उन्हें अपना आदर्श मानने में गौरव का अनुभव किया होगा। अत बरो महोदय का मत, श्री० आप्टे की दृष्टि से उचित नहीं है। उन्होंने राजशेखर का काल लगभग आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है।

आठवीं शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले विद्वान् क्षीरस्वामी द्वारा लिखित 'अमरकोष' की टीका को आधार मानते हैं। इस टीका में प्रसगत. राजशेखर की 'विद्धशालभञ्जिका' के चार श्लोक उद्धृत हैं।[2] जिनके आधार पर श्री पीटर्सन एवं पण्डित दुर्गा प्रसाद क्षीरस्वामी को राजशेखर का समकालीन मानते हैं। उनकी धारणा है कि क्षीरस्वामी काश्मीर के राजा जयापीड के गुरु थे।[3] जयापीड का समय ७५० ई० है। अत इन विद्वानों ने क्षीरस्वामी को भी आठवीं शताब्दी के मध्य में तथा राजशेखर को उनका समकालीन सिद्ध करने का प्रयास किया है। यद्यपि काश्मीर के राजा जयापीड के गुरु का नाम क्षीरस्वामी अवश्य था, किन्तु उन्होंने अमरकोष पर टीका नहीं लिखी। वस्तुत अमरकोष पर टीका लिखने वाले क्षीरस्वामी का समय ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। अत जयापीड के गुरु

---

१. मालतीमाधव-१·४४
२. इनके आरम्भिक चरण हैं—
   (१) "दरदलित हरिद्रापिञ्जराण्यङ्गकानि"—अमरकोष पृ० १८ त्रि० भ० ३-१७
   (२) 'द्विर्भ्योम्नि पुराण-मौक्तिकमणि.'—अमरकोष पृ० २२ त्रि० भ० १-११
   (३) 'गोत्रामात्रविनियोजितायनजरत्'—अमरकोष पृ० ३८ त्रि० भ० १-३
   (४) 'झटिति कुचतटाग्रे नमो मन्मथाय—अमरकोष पृ० १८० त्रि० भ० १-१७
३. इन्ट्रोडक्शन टु वल्लभदेवाज सुभाषितावली—पृ० १०१

क्षीरसागर के भ्रान्त नाम के आधार पर राजशेखर को आठवीं शताब्दी का मानना अनुचित है।

आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध : आठवीं शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले श्री आप्टे का कथन है कि—

"Bhavabhuti was not appreciated in his own days He had to rest with well grouod faith on boundless time and extensive time and extensive earth for the appreciation of his works, and it is, I think, quite reasonable to suppose that a period of at least 100 years must have elapsed before the verdict of posterity was unmistakeably pronounced in his favour. At such a dist·nce can alone Rajacekhara be reasonably supposed to mention Bhavabhuti in the manner above referred to. From this I conclude that our poet must have not flourished till at least one hundred years after Bhavabhuti. In other woeds he could not have lived earlier than the end of the 8th Century A. D.,[1]

भवभूति के गौरव के सम्बन्ध में आप्टे महोदय का कथन ठीक भी हो सकता है, किन्तु राजशेखर के काल-निर्धारण के सम्बन्ध में यह आधार अप्रामाणिक है। राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में अपने आश्रयदाता नरेश महेन्द्रपाल का उल्लेख किया है। किन्तु सियदोनी अभिलेख के अनुसार महेन्द्रपाल का राज्यपाल ९०३ ई० से ९०७ ई० ठहरता है।[2] अतः श्री० आप्टे का मत प्रमाणिक प्रतीत नहीं होता।

ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध : ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध को राजशेखर का रचनाकाल मानने वाले विल्सन महोदय ने अपने मत की पुष्टि में कर्पूरमञ्जरी सट्टक की निम्न प्रस्तावना उद्धृत की है[3] —

चाहुआणकुल मोलिमालिआ राअसेहर कइंद गेहिणी।
भत्तुणो किदिमवन्तिसुन्दरी सा पउञ्जइउमेममिच्छइ॥

इसके अनुसार राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी न केवल चौहान कुलोत्पन्न है अपितु वह चौहान कुल का शिरोरत्न भी है। चौहान वंश राजपूतों का था।

१. राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग्स पृ०-१४
२ एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १ पृ० १७३।
३. कर्पूरमंजरी-१-११।

इससे श्री विल्सन महोदय ने अनुमान किया है कि राजशेखर किसी राजपूत नरेश के मन्त्री थे तथा वे ईसा की ग्यारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे विद्यमान थे —

In a verse cited from another work by the writer the (Karpurmanjari) his wife is styled as the chaplet of the crest of the Chauhan Raco *from which it follows that he* belonged to that tribe. We can only conclude, therefore, that Rajshekhara was the minister of some Rajput prince who flourished in the central India, at the end of the eleventh or the beginning of the twelveth century."[1]

परन्तु कर्पूरमञ्जरी के आधार पर श्री० विल्सन ने जो अनुमान निकाले हैं वे युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होते। यद्यपि राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी राजपूत थी, राजशेखर स्वयं जाति से ब्राह्मण थे। अत पत्नी के आधार पर उन्हें भी राजपूत मानना सगत प्रतीत नहीं होता। दूसरी बात यह है कि, वे महामंत्री के पुत्र थे,[2] स्वय मत्री नहीं। जो व्यक्ति अपने ग्रन्थो मे बार बार स्पष्ट शब्दो मे स्वयं को महेन्द्रपाल का गुरु[3] एव महेन्द्रपाल को अपना शिष्य[4] बता रहा है, वह किसी अन्य क्षत्रिय राजा का मत्री कैसे हो सकता है ? अत. दुर्बल प्रमाणों पर आधारित होने के कारण विल्सन महोदय का मत, जो राजशेखर को ग्यारहवी शताब्दी-उत्तरार्द्ध एव बारहवी शताब्दी-पूर्वार्द्ध मे निर्धारित करता है, अनुपयुक्त है।

ईसा की चौदहवी शताब्दी को राजशेखर का रचनाकाल माननेवाले प्रमुख विद्वान् डॉ० मेक्समूलर की विचारधारा कुछ नवीन आधार लिए हुए हैं। वे कहते है —

---

१. हिन्दू थियेटर—एच. एच. विल्सन जिल्द २ पृ० ३६२
२ बालरामायण—१-८ सूक्तमिद तेनैव हि महामन्त्रिपुत्रेण।
  बालभारत—१-६ उक्त हि तेनैव महामन्त्रिपुत्रेण।
३. कर्पूरमजरी—१-६ "बालकई कइराओ णिब्भरराजस्स तहउवज्झाओ।"
४. विद्धशालभजिका—१-६ रघुकुलतिलको महेन्द्रपाल सकलकलानिलय स *यस्य शिष्य.।*
  —बालरामायण १-१८ देवो यस्य महेन्द्रपालनृपति. शिष्यो रघुग्रामणी
  —बालभारत १-११ वही

Rajachekhara lived in the fourteenth century. He wrote the *Prabandhakosh in about 1347 A. D.*"[१]

उन्होने राजशेखर को 'प्रबन्धकोष' नामक ग्रन्थ का रचयिता कहा है। चौदहवी शताब्दी मे राजशेखर सूरि नामक जैन साहित्यकार ने 'प्रबन्धकोष' की रचना की थी। किन्तु राजशेखर के जिन ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है उनमे प्रबन्धकोष का नाम नही है और न ही वे जैन साहित्यकार थे। अत राजशेखर को चौदहवी शताब्दी का मानना उचित नही है।

ईसा की नवीं शताब्दी को अनेक विद्वान् राजशेखर का रचनाकाल मानते हैं। "देवो यस्य महेन्द्रपाल नृपति शिष्यो रघुग्रामणी." के अन्त साक्ष्य को आधार मानकर वे थोडे-बहुत अन्तर से नवीं शताब्दी के आस पास राजशेखर का समय निर्धारित करते है। विभिन्न विद्वानो के द्वारा प्रतिपादित कालावधि इस प्रकार है।

१ डॉ० स्टेनकोनो एव प्रो० लॉनमैन[२]	—९०० ई०
२. श्री० सी० डी० दलाल,[३] प० आर० ए० शास्त्री	—८८० ई० –९२० ई०
३. श्री० *नारायणराम आचार्य*[४]	—८८४ ई०–९५९ ई०
४. श्री० एन० जी० सुरु[५]	—७५५ ई०–९३० ई०
५ डॉ० पी० वी० काणे[६]	—८७५ ई०–९५० ई०
६ डॉ० वि० वि० मिराशी[७]	—८८५ ई०–९७५ ई०

इन तिथियो के अवलोकन से हमारे आलोच्य कवि के लिए एक सीमा बन जाती है और वह है ८५५ ई० से ९७५ ई० तक का अन्तराल। इसके उचित निर्धारण के पूर्व इस प्रसग मे उन साहित्यकारो का उल्लेख उपयुक्त होगा, जिन्होंने राजशेखर को अपने ग्रन्थो मे उद्धृत किया है। इसे हम साहित्यिक साक्ष्य कहेंगे—

---

१ इण्डिया.व्हाट कैन इट टीच अस ?–मैक्समूलर–पृ० ३२८
२ कर्पूरमजरी—हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज, पृ०–१७९
३. काव्यमीमासा (प्रस्तावना) गायकवाड ओरियण्टल सीरीज पृ० ३१
४. कर्पूरमंजरी–निर्णयसागर प्रेस–पृ० ५
५. कर्पूरमजरी–(प्रस्तावना) श्री० एन० जी० सुरु पृ० १०२
६ इन्ट्रोडक्शन टु साहित्यदर्पण–डॉ० पी० वी० काणे पृ० २०७
७ पाठक कमेमोरेशन वॉल्यूम–डॉ० वी० वी० मिराशी पृ० ३६५-३६६

साहित्यिक साक्ष्य

राजशेखर के पश्चात् उनके भावों एवं शब्दों को ग्रहण करने वाले आचार्यों में प्रमुख हैं—धनंजय, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, कुन्तक, मम्मट, वाग्भट, हेमचन्द्र, अरिसिंह, अमरचन्द्र, देवेश्वर, केशवमिश्र एवं विश्वनाथ। कालक्रम की दृष्टि से *धनंजय प्रथम हैं जिन्होंने राजशेखर के समय से कुछ समय पश्चात् ही उन्हें उद्धृत किया है।* दशरूपक में प्रपञ्च के प्रसंग में वे कहते हैं—

> "असद्भूतं मिथः स्तोत्रं प्रपञ्चो हास्यकृन्मतः।
> असद्भूतेनार्थेन पारदार्यादिनैपुण्यादिना आन्योन्य-
> स्तुतिः स प्रपञ्चः। यथा कर्पूरमञ्जर्यां[1] भैरवानन्द —
>
> रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा
> मद्यं मांसं पीयते खाद्यते च।
> *भिक्षा भोज्यं चर्मखण्डं च शय्या*
> कौलो धर्मः कस्य नो भाति रम्यः॥"

इसी प्रकार धनञ्जय ने अप्रयोग की दस अवस्थाओं में से "आनन्द" नामक *अवस्था के उदाहरण के लिये 'विद्धशालभञ्जिका' के निम्न श्लोक का उल्लेख* किया है—

> "आनन्दो यथा विद्धशालभञ्जिकायाम्[2]
> सुधाबद्ध—ग्रासैरुपवन—चकोरैरनुसृता,
> किरन् ज्योत्स्नामच्छा नवलवलिपाकप्रणयिनीम्"

धनंजय का समय ९७४ ई० से ९९४ ई० के मध्य का है। अतः राजशेखर को ९९४ ईसवी के पूर्व का मानना अनुचित न होगा।

इसी प्रकार सोमदेव ने यशस्तिलकचम्पू में पूर्ववर्ती साहित्यकारों की एक *नामावली दी है जिसमें राजशेखर का नाम अन्त में आता है।*

'यथा उर्वभारवि-भवभूति-भर्तृहरि भर्तृमेण्ठकण्ठगुणाढ्यव्यास-भासबाण-कालिदास मयूरनारायणकुमारमाघराजशेखरादिमहाकवि काव्येषु[3]

---

१. दशरूपक ३-१५
२. दशरूपक ४-५४।५५
३. *यशस्तिलकचम्पू (चतुर्थ उच्छ्वास)* २।११३

इससे प्रतीत होता है कि राजशेखर यशस्तिलककार के समय में जीवित थे या उनसे कुछ दिन पूर्व ही दिवगत हुए थे। "यशस्तिलकचम्पू" की रचना ६५६ ई० में हुई थी। यही राजशेखर की परावधि मानी जा सकती है।

राजशेखर ने अपने ग्रन्थो मे वाल्मीकि से लेकर कवि रत्नाकर तक का उल्लेख किया है। रत्नाकर आनन्दवर्धन के समकालीन थे, तथा वे काश्मीर-नरेश अवन्ति वर्मा की विद्वत्सभा को मण्डित करते थे। इनका समय ८५५ ई० -८८३ ई० है। अत साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर राजशेखर ईस्वी सन् ८८३ से ईस्वी ६५६ के बीच रखे जा सकते है।

उपरिचर्चित काल-निर्धारक मान्यताओ तथा साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित तिथि का औचित्य एव अनौचित्य, ऐतिहासिक साक्ष्य से स्पष्ट हो सकता है। क्योंकि राजशेखर द्वारा दी गई आश्रयदाता नरेशो की तिथि मे सन्देह के लिए बहुत कम अवकाश है।

ऐतिहासिक साक्ष्य

राजशेखर ने कर्पूरमजरी की प्रस्तावना मे स्वय को गुर्जर-प्रतिहारवशी महेन्द्रपाल का उपाध्याय[1] बतलाया है।

"बालकई कइराओ णिब्भअराअस्स तह उवज्झाओ"

महेन्द्रपाल की राजधानी कान्यकुब्ज नगरी थी। काठियावाड मे स्थित ऊना के अभिलेख[2] मे इस नरेश की प्रशस्ति है। यह प्रशस्ति ८६३ ई० की होने के कारण इस शासक की पूर्वावधि भी ८६३ ई० मानी जा सकती है। इस राजा का प्रशस्ति-परक अन्तिम अभिलेख झांसी जिले के सियदोनी[3] ग्राम मे है। जिस पर ६०३-६०७ ई० अकित है। अत अभिलेखो के आधार पर महेन्द्रपाल का समय ८६० ई० से ६१० ई० तक स्थिर किया जा सकता है।

"बालभारत" की प्रस्तावना मे गुर्जर-प्रतिहारवशी महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल का उल्लेख है। यह नरेश राजशेखर का आश्रयदाता था।[4] इसके शासन काल के

---

१ कर्पूरमञ्जरी १.६
२ एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द ६, पृ० ६ पादटिप्पणी द्रष्टव्य।
३ एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १ पृ० १७३
४. बालभारत १-७नमितमुरलमौलि. पाकलो मेकलाना
रणकलितकलिंग. केलितट् केरलेन्दो।
अजनि जितकुलूतः कुन्तलाना कुठारो
हठहृतरमठश्री श्री महीपालदेव।

दो महत्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त है। एक हड्ल[1] ग्राम मे है, जिस पर महीपाल की तिथि ६१४ ई० उत्कीर्ण है, दूसरा एवं अंतिम प्रतापगढ़[2] मे है जिस पर ६४८ ई० अंकित है। दोनो अभिलेखों के आधार पर राजशेखर के आश्रयदाता महीपाल का समय ६१० ई० से ६४८ ई० मानना प्रामाणिक है।

राजशेखर की 'विद्धशालभञ्जिका" त्रिपुरी-नरेश युवराजदेव के प्रीत्यर्थ प्रस्तुत की गई थी। युवराजदेव त्रिपुरी के नरेश थे। बिलहरी[3] ग्राम मे प्राप्त शिलालेख के आधार पर इनका शासनकाल ६१० ई० से ६४८ ई० ज्ञात होता है।

इस प्रकार इन तीन आश्रयदाताओं का कालक्रम है —

१. महेन्द्रपाल —८६० ई० से ६१० ई०
२. महीपाल —६१० ई० से ६४८ ई०
३. युवराजदेव प्रथम —६१० ई० से ६४८ ई०

तीनों के आश्रय में रहने के कारण राजशेखर का रचनाकाल भी लगभग ८८० से ६५० तक रहा होगा।

निष्कर्ष

विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचारों एवं अनुमानों के आधार पर राजशेखर का रचनाकाल ईसा की सातवी शती से चौदहवीं शती के बीच स्थिर करने का प्रयास किया है। किन्तु कहीं महेन्द्रपाल की तिथि और कहीं राजशेखर की कृतियों से उनका साम्य न होने के कारण वे तिथियाँ अनुपयुक्त हैं। कतिपय विद्वानों ने नवम शताब्दी के आसपास ही राजशेखर का समय निर्धारित किया है किन्तु साहित्यिक एवं ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार राजशेखर निश्चित ही ८८५ ई० मे साहित्य-क्षेत्र मे उतर चुके थे। दूसरे, जो विद्वान् राजशेखर को नवम शताब्दी का मानते हैं वे भी उनका काल ८८५ ई० के लगभग ही स्थिर करते हैं।

राजशेखर महेन्द्रपाल के गुरु थे। महेन्द्रपाल के पिता मिहिरभोज की मृत्यु ८८५ ई० में हो चुकी थी। इसी समय महेन्द्रपाल (ई० ८८५ में) राज्य धिष्ठित

१ इंडियन एण्टीक्वेरी-जिल्द-१२ पृ० १६३ पादटिप्पणी-द्रष्टव्य
२ इंडियन एण्टीक्वेरी-जिल्द १४ पृ० १२२ पाद टिप्पणी द्रष्टव्य
३ एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द १ पृ० २५२ पादटिप्पणी द्रष्टव्य

हुए थे ।[1] महेन्द्रपाल के गुरु राजशेखर ने भी अनुमानतः ८८५ ई० में साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया होगा ।

उन्होंने युवराजदेव (६१० ई० से ६४८ ई० तक) की सभा को अलंकृत किया था। वहीं उन्होंने 'विद्धशालभञ्जिका' का प्रणयन किया होगा। तत्पश्चात् प्रौढ पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिए उन्होंने 'काव्यमीमांसा' ग्रन्थ की रूपरेखा निर्धारित की होगी। लगता है कि इसी पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ की रचना करते-करते नब्बे वर्ष की आयु में सन् ६७५ ई० के लगभग वे दिवंगत हो गए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर ८८५ ई० से ६७५ ई० तक साहित्य-जगत को आलोकित करते रहे।

राजशेखर नामों की अनेकता

राजशेखर नाम के अनेक व्यक्ति संस्कृत साहित्य में मिलते हैं। किन्तु उनका स्थितिकाल उनके नामों की अनेकता के सम्बन्ध में फैली भ्रान्ति का निराकरण करता है।

(१) सन् ३२२ में केरल प्रदेश में राजशेखर नाम के एक राजा हुए थे।[1] उन्होंने 'मुकुन्दमाला' ग्रन्थ की रचना की थी। अभिनव कालिदास के शिष्य कवि कुञ्जर ने 'राजशेखर-चरित' नामक प्रबन्ध का निर्माण किया जिसमें उस राजा को "कुलशेखर" और "रसिकशेखर" शब्दों से सम्बोधित किया है तथा उसके जीवन की प्रमुख घटनायें वर्णित की हैं।

(२) माधवाचार्य ने अपने "शंकरदिग्विजय" में राजशेखर नाम के राजा[2] का उल्लेख किया है तथा उसे भी केरल प्रदेश का राजा बतलाया है। साथ में यह भी लिखा है कि वे आठवीं शताब्दी के शंकराचार्य के समकालीन थे। अतः राजशेखर-चरित में वर्णित केरल क्षितिपति 'राजशेखर' माधवाचार्य वर्णित राजा 'राजशेखर' से भिन्न हैं। यह तो स्पष्ट है लेकिन 'शंकरदिग्विजय' और उसके लेखक माधवाचार्य, दोनों की जानकारी संदिग्ध होने के कारण उपर्युक्त विवेचन विश्वसनीय नहीं माना जा सकता।

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर—एम. कृष्णमाचारी—पृ० ५०८ ।
२. वही—, पृ० ६२५

(४) दक्षिण मे जंगेजशेरि के समीप तलइनइल्ल गाव मे ७५० ई० से ८५० ई० के बीच किसी राजशेखर नामक नरेश[1] के होने की जनश्रुति प्रचलित है। इस जनश्रुति के प्रामाणिक होने में संदेह है।

(४) इतिहास में राजशेखर सूरिनामक एक जैनाचार्य[2] का नाम भी मिलता है। इन्होने प्रबन्धकोष' या 'चतुर्विशति प्रबन्ध' की रचना की थी। इनका समय १३४८ ई० है। डॉ० मैक्समूलर ने नाम की समानता के कारण भ्रान्ति मे यायावरीभ राजशेखर और जैन राजशेखर को अभिन्न माना है।

(५) इन राजशेखरो के अतिरिक्त गोदावरी के किनारे पेरुर मे भी एक कोल्लूरिवंशज राजशेखर[3] हुए है। इनका दूसरा नाम सोमशेखर था। इनकी तीन रचनायें—'साहित्यकल्पद्रुम' 'शिवशतक' और 'अलकारमकरन्द' है। इनका समय १८४० ई० है।

उक्त पाँचो राजशेखर नामक व्यक्तियों मे से तीन नरेश, एक कोल्लूरिवंशज साहित्यकार और एक जैन साहित्यकार है। कवि-आचार्य राजशेखर न तो राजा थे और न जैन। दूसरे राजशेखर का काल ८८५ ई० से ९७५ ई० के मध्य का है। अतः 'काव्यमीमासाकार' राजशेखर इन सब राजशेखरो से सर्वथा भिन्न हैं।

जन्म-स्थान

यह निर्विवाद है कि राजशेखर, गुर्जर-प्रतिहार महेन्द्रपाल और महीपाल के शासन-काल मे 'कान्यकुब्ज' में थे। वे कुछ समय तक कलचुरि नरेश युवराजदेव की राजधानी 'त्रिपुरी' में भी रहे। किन्तु उनके जन्मस्थान का प्रश्न अब भी विचारणीय बना हुआ है।

राजशेखर के पितामह अकालजलद महाराष्ट्र के प्रतिष्ठित जनों के मूर्धन्य थे।' *तदामुष्यायनस्य महाराष्ट्र चूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थोदौर्दकि.।'*[4] किन्तु राजशेखर का जन्म-स्थान महाराष्ट्र था, यह निश्चित नही है। इनके जन्मस्थान का निर्धारण करने वाले विद्वानो के दो वर्ग है। पहला यह कहता है कि वे मध्यप्रदेश में उत्पन्न हुए थे। दूसरे वर्ग का कथन है कि उनका जन्म-स्थान दक्षिण प्रदेश था।

---

१ हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर—एन. कृष्णमाचारी— पृ० ६२६।
२. —वही— पृ० ४३२।
३ —वही— पृ० ५०८।
४. बालरामायण १-१३।

उनकी पूरी धारणा–कि पांचाल और कन्नौज के कवियों तथा सुन्दरियों के प्रति उनके प्रशंसात्मक वचन उनका मध्यदेशीय होना सूचित करते है–अनुपयुक्त हैं । ऐसे तर्क यदि मान लिये जायें तो साहित्यकारों के स्थान-निर्धारण का काम अत्यन्त सरल हो जायगा किन्तु इसके परिणाम कितने दोषपूर्ण होगें यह सहज ही कल्पित किया जा सकता है । दक्षिण प्रदेश को राजशेखर का जन्म-स्थान प्रमाणित करने वाले श्री आपटे का कथन है कि राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में दक्षिणात्यों के आचरण, उनकी स्थानीय विशेषताओं एव दक्षिण की नदियों के सौन्दर्य का अत्यन्त सहृदयतापूर्वक वर्णन किया है । अत आपटे महोदय का अनुमान है कि राजशेखर दक्षिण देशवासी या महाराष्ट्र के निवासी रहे होंगे ।[1] इस अनुमान को वे इस तर्क से पुष्ट करते हैं कि सम्भवत. उनके हृदय पर जन्म-भूमि की प्रकृति तथा लोक-रीति की प्रतिभा का इस प्रकार का अंकन होना सहज है । श्री आपटे महोदय के कथन मे प्रामाणिकता दिखाई देती है । तद्धितप्रियता दाक्षिणात्यो की एक साहित्यिक विशेषता रही है । राजशेखर के ग्रन्थो के अनुशीलन मे ज्ञात होता है कि 'काव्यमीमांसा' में न केवल 'तद्धिताप्रिया हि दाक्षिणात्या' इस महाभाष्य के वाक्य का स्मरण दिलाया गया है प्रत्युत उनकी अपनी रचनाओ मे तद्धित-रूपो का बहुलता से प्रयोग भी किया है ।

श्री नारायण दीक्षित ने 'विद्धशालभञ्जिका' की टीका में लिखा है कि बाल-रामायणे *स्वस्य महाराष्ट्रवर्णनात् महाराष्ट्र. कवि । सोऽयं देशी-प्रायस्वदेश-जान् प्रयुक्तवान्। योऽस्माक सुबोधो बहुधास्ति स:'* । इस प्रकार श्री दीक्षित ने *राजशेखर को स्पष्ट रूप से महाराष्ट्र का कवि कहा है ।*

डॉ॰ मिराशी[2], श्री स्टेनकोनो एवं श्री लॉनमैन[3], श्री एस॰ के॰[4] दे, श्री कृष्णमाचारियर[5], श्री पी॰ वी॰ काणे[6], श्री दसाल एव श्री शास्त्री[7] इसी पक्ष

---

१. राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग्स–आपटे पृ॰ २२ ।
२. ए॰ वी॰ ओ॰ आर॰ आई॰–पृ॰ ३६६ ।
३. कर्पूरमञ्जरी –हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज–पृ॰ १८०–१८१।
४. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर–जिल्द १–एस॰ के॰ दे पृ॰ ४२५ ।
५. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर–एन॰ कृष्णमाचारी–पृ॰ ६२५ ।
६. इन्ट्रोडक्शन टु साहित्यदर्पण–डॉ॰ काणे–पृ॰ २०७ ।
७ काव्यमीमांसा–गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज–पृ॰ ३० (प्रस्तावना) ।

के समर्थक है। राजशेखर का जन्मस्थान महाराष्ट्र मानने मे कोई आपत्ति नही होना चाहिये। हाँ, इस विशाल महाराष्ट्र में किस भू-भाग विशेष को कवि ने अपने जन्म से कृतार्थ किया, यह प्रश्न दुरूह तो नही, किन्तु विवेचनीय है।

राजशेखर ने काव्यमीमामा मे काव्य-पुरुष को विदर्भ-देशोत्पन्न बतलाया है और उसे वैदर्भी रीति मे ही आकृष्ट भी किया है। उन्होने साहित्य का जन्म-स्थान, काव्य-पुरुष तथा साहित्य-विद्यावधू का विवाहस्थान इसी विदर्भभूमि को माना है। उनके कर्पूरमञ्जरी सट्टक की नायिका भी विदर्भ देश की ही है। उनके ग्रन्थों मे इतना गौरवपूर्ण 'विदर्भ'–निश्चित ही कवि का जन्म स्थान होना चाहिये।

विदर्भ का अपना निजी इतिहास है। वत्सगुल्म अकोला जिले मे स्थित वाशिम का ही प्राचीन नाम है। चौथी तथा पाँचवी शताब्दी ईस्वी मे इस नगरी को वाकाटक नरेशो की वैभवशाली राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। उन नरेशों के साथ ही वह गौरव भी धाराशायी हो गया। राजशेखर ने पाच सौ वर्षों के पश्चात् उस वैभव-विहीना नगरी को, साहित्यिक प्रतिष्ठा देकर पुन गरिमा से मण्डित किया। राजशेखर के आदर्श भवभूति भी विदर्भ देश मे पैदा हुए थे। किन्तु उन्होने विदर्भ को विशेष महत्व नही दिया। राजशेखर ने उसे इतनी अधिक प्रतिष्ठा जन्मभूमि के प्रेम के कारण ही प्रदान की है।

प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के निर्माण मे वश, पूर्वज एव माता पिता का अत्यधिक महत्व होता है—

वंश

राजशेखर यायावर वश मे उत्पन्न हुए थे। यह यायावरवश ब्राह्मणों का ही होता है। अत राजशेखर ब्राह्मण जाति के थे। यायावर शब्द का सामान्य अर्थ है—निरन्तर चलने वाला। प्राचीन काल मे धर्मशास्त्रकारो ने यायावर श्रेणी गृहस्थों की बतलाई है। देवल[१] ने गृहस्थो को दो भागों मे बाँटा है। १–शालीन तथा २–यायावर। यायावर शालीन से ऊचे माने जाते हैं। बौधायन[२] ने यायावर के विषय मे कहा है कि यायावर गृहस्थ अत्युत्तम जीविका चलाने वाले होते है। वे काटकर घर ले जाते समय पृथ्वी पर गिरे अन्न को ही जीविकार्थ चुनते हैं और सम्पत्ति का सचय नही करते। वे जीवकोपार्जनार्थ

१. याज्ञवल्क्यस्मृति १–१२८।
२. बौधायन धर्मसूत्र ३–१–१।

पौरोहित्य, अध्यापकत्व अथवा दान का आश्रय नहीं लेते । बौधायन से भिन्न मत वैखानस-गृह्यसूत्र[१] मे उपलब्ध होता है । इस सूत्र में यायावरों के छह कार्य गिनाये हैं । १–हविष एवं सोम यज्ञ का सम्पादन, २–यज्ञ का पौरोहित्य, ३–वेद का अध्ययन अध्यापन, ४–दान एव प्रतिग्रह, ५–श्रौत एव स्मार्त अग्नि का निरन्तर सेवन तथा अतिथियों की परिचर्या ।

फिर भी सम्पूर्ण विवेचन से ज्ञात होता है कि यायावर वंश अपनी धार्मिकता, नैष्ठिकता तथा सदाचार के लिये सदा से प्रसिद्ध है । राजशेखर ने स्वय को बारंबार यायावर या यायावरीय कहा है ।

पूर्वज

यह यायावर कुल, कवियों के प्रसव के लिये कल्पतरु था । इस कुल में राजशेखर के पूर्वजों में अकालजलद, सुरानन्द एव कविराज आदि उल्लेखनीय काव्यकार हुए हैं ।[२]

कविराज अकालजलद राजशेखर के प्रपितामह थे । वे महाराष्ट्र के प्रतिष्ठितों मे भी मूर्धन्य थे । राजशेखर अकालजलद के विषय में कहते हैं—"जब सूर्य सरोवर मे मेढक अपने बिलों मे पड़े मृतप्राय हो रहे थे, तब अकालजलद ने आकर सूखे सरोवर मे ऐसी वर्षा की कि अब उसी मे जगली हाथियों के झुंड गले तक डूब *कर जल पी रहे हैं ।*[३] *कादम्बरीराम नामक नाटककार ने, अकालजलद के* श्लोकों को अपनी कृति मे इस कुशलता से सविष्ट किया कि वे उसी के प्रतीत होने लगे । अकालजलद की वचन-चन्द्रिका का कवि-चकोर नित्य ही पान करते हैं ।[४] किन्तु वह चन्द्रिका रिक्त नहीं होती । इससे स्पष्ट है कि राजशेखर के प्रपितामह महाराष्ट्र देश के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार थे ।

अकालजलद के समान सुरानन्द भी यायावर वश के थे तथा राजशेखर के पूर्वज थे । सभवतः ये राजशेखर के पितामह होंगे । सुरानन्द चेदिमण्डल के भूषण थे ।[५] राजशेखर ने काव्यमीमासा मे सुरानन्द के "अपहरण" सबंधी मत को

१. वैखानस–गृह्यसूत्र १–८ ।
२ बालरामायण १–१३ ।
३. सूक्तिमुक्तावली ४–८४ ।
४. सूक्तिमुक्तावली ४–८३ ।
५. सूक्तिमुक्तावली ४–८७ ।
नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः ।
नदीना च सुरानन्दश्चेदिमण्डल मण्डनम् ॥

आदरपूर्वक ग्रहण किया है । इससे प्रतीत होता है कि राजशेखर उनकी विद्वत्ता एवं प्रतिष्ठा से अपनी युवावस्था में ही लाभान्वित हुए होंगे ।

इसी यायावर वंश से तरल नाम के कवि भी प्रसिद्ध है । सूक्तिमुक्तावली में यायावर कुलश्रेणी के मण्डनरूप से तरल कवि का परिचय मिलता है ।[1] राघवपाण्डवीय काव्य के रचयिता कविराज से हम अवश्य परिचित हैं । किन्तु यह यायावरीय कविराज से भिन्न है। क्योंकि यह कविराज धारानरेश कामदेव (सन् ११८२–११८७) के समकालीन थे । यायावरीय कविराज के विषय में अन्य किसी प्रकार की जानकारी प्राप्त नही है ।

माता पिता : राजशेखर की माता का नाम शीवलती तथा पिता का नाम दुर्दुक या दुहिक था–"तदामुष्यायणस्य महाराष्ट्र चूडामणेरकाल जलदस्य चतुर्थो दौर्दुकि शीलवती सूनुरुपाध्याय श्रीराजशेखर इत्यपर्याप्त बहुमानेन ।"[2] नाम को छोड़कर उनकी माता के विषय में अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है । कवि के पिता किसी राजा के महामन्त्री थे[3] किन्तु किस राजदरबार में वे महामन्त्री का पद सम्हाल रहे थे इसकी भी विश्वसनीय जानकारी हमें प्राप्त नही है । इनके परिवार के अन्य सदस्यों, या भाई बहिनों आदि के विषय में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है । हो सकता है, वे अपने माता पिता के एक मात्र पुत्र रहे हों ।

पत्नी : उन्हे श्री एवं सरस्वती से वरप्राप्ता पत्नी का भी लाभ हुआ था। नवम शताब्दी में क्षत्रियों का चौहान कुल प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर हो रहा था । राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी चौहान वंशीया क्षत्रिया थी। अवन्तिसुन्दरी का कुल अन्य चौहानों में मूर्धन्य माना जाता था।[4] स्पष्ट है कि राजशेखर तथा अवन्तिसुन्दरी का विवाह अन्तर्जातीय या अनुलोम था । इस अन्तर्जातीय (अनुलोम) विवाह के लिये राजशेखर को कितने बड़े संघर्ष का सामना करना पड़ा होगा यह अनुमान हम सहज ही कर सकते है ।

---

१ सूक्तिमुक्तावली —
यायावरकुलश्रेणेर्हरियष्टेश्च मण्डनम् ।
सुवर्णबन्धरुचिरस्तरलस्तरलो यथा ॥

२. बालरामायण–अंक १–१३–१४ ।

३. बालभारत १–८।६ (उक्तं हि तेनैव महासुमन्त्रिपुत्रेण)
बालरामायण–१–८।७ (सूक्तमिद तेनैव महामन्त्रिपुत्रत्रेण)

४. कर्पूरमंजरी १–११
चाहुआणकुलमोलिमालिआ राउसेहर कइंदगेहिणी ।
भत्तुणो किइमवनिसुन्दरी सा पउजइउमेममिच्छइ ॥

अवन्तिसुन्दरी विदुषी महिला थी। संस्कृत तथा प्राकृत दोनों भाषाओं पर उनका प्रभुत्व था। उनके द्वारा रचे गये किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ का नाम नहीं मिलता, फिर भी इतना स्पष्ट है कि वे अलंकारशास्त्र में निपुण थी। 'काव्यमीमांसा' में अवन्तिसुन्दरी के मतों का तीन बार उल्लेख है। एक में उन्होंने वामन के पाक विषयक मत[1] का खण्डन किया है। दूसरे शब्दहरण के विषय में[2] अवन्तिसुन्दरी का मत महत्वपूर्ण है। तीसरे रस-परिपाक के विषय में[3] भी उनका स्वतंत्र मन्तव्य मिलता है। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला में[4] अवन्तिसुन्दरी को दो बार उद्धृत किया है जिसमें स्पष्ट है कि वे न केवल संस्कृत और प्राकृत अपितु तत्कालीन जनभाषाओं में भी पारंगत थी। दसवीं शताब्दी के तिलकमंजरीकार आचार्य धनपाल की छोटी बहन का नाम भी अवन्तिसुन्दरी था। धनपाल ने उसके लिये 'पाइअलच्छी' की रचना की थी। डॉ॰ बूलर इसी आधार पर 'पाइअलच्छी' की प्रस्तावना में[5] यह तर्क प्रस्तुत करते है कि हेमचन्द्र की देशीनाममाला में जिस अवन्तिसुन्दरी का उल्लेख है वह धनपाल की बहन थी, कर्पूरमंजरीकार राजशेखर की पत्नी नहीं। बूलर महोदय की यह बात कितनी हास्यास्पद लगती है।

राजशेखर ने कर्पूरमंजरी की रचना अवन्तिसुन्दरी के लिये की थी। नाम से अवन्तिसुन्दरी अवन्तिदेश की प्रतीत होती है। संभव है उनका नाम कुछ अन्य हो, परन्तु अवन्तिप्रदेश पर प्रगाढ अनुराग होने से उन्होंने प्रेयसी का नाम अवन्तिसुन्दरी रख लिया हो।

पारिवारिक जीवन

राजशेखर की साहित्यिक प्रतिष्ठा को बनाये रखने में इनकी धर्मपत्नी का बहुत बड़ा योगदान प्रतीत होता है। इनका पारिवारिक जीवन सुखद रहा होगा। क्योंकि "कवि का जैसा स्वभाव होता है वैसा ही उसका काव्य होता है। जैसा चित्रकार होता है वैसा ही उसका चित्र होता है"। इस नियम से कवि के साहित्य से

१. काव्यमीमांसा १–११
२ काव्यमीमांसा अ ५ पृ० २०
३ वही ५ ११ पृ० ५७।
४. देशीनाममाला ५–७१, ५–१५७।
५. पाइअलच्छी–डा० बूलर (प्रस्तावना) पृ० ७।

संतुष्ट पारिवारिक जीवन का पता चलता है । उनके समस्त ग्रन्थों का सम्यक् निरीक्षण करने से मालूम होता है कि वे विलासी तथा विनोदी स्वभाव के थे । उनके जीवन का अधिकांश भाग राजदरबार में ही बीता था । अत उनकी वाणी में शिष्टता तथा आचार-विचार एवं वेशभूषा में राजसभोचित गरिमा थी । आदर्श कवि की जीवन-चर्या का वर्णन राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में किया है । *अनुमानत उनका जीवन तदनुरूप रहा होगा ।* इस दृष्टि से वे वात्स्यायन वर्णित नागरिकचर्या के नागरक थे । वात्स्यायन के नागरक सुख समृद्धि के प्रतीक थे । हमारे काव्य-साधक के विषय में भी यह कथन अतिशयोक्ति न होगी ।

अध्ययन

राजशेखर ने किस गुरुकुल या विद्यापीठ में शिक्षा ग्रहण की, इसका निर्देश प्राप्त नहीं है । राजशेखर ने स्वय कवि के लिये वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाणविद्या, राजसिद्धान्तत्रयी, सासारिक या व्यवहारिक वृत्त, अन्यान्य कवियों की रचनायें, *दृश्यकाव्य, श्रव्यकाव्य,* प्रकीर्णक (चौंसठ कलायें, आयुर्वेद ज्योतिष, वृक्षशास्त्र, अश्व गजलक्षण आदि) का अध्ययन आवश्यक बतलाया है । वे स्वय *चारों वेदों और वेदांगों के विद्वान थे ।* इन्होंने ऋग्वेद की दो रचनायें काव्यमीमांसा में उद्धृत की है । काव्यपुरुष की उनकी कल्पना पुरुष-सूक्त पर आधारित है । ऐतरेत, शतपथ, तैत्तिरीय ब्राह्मण, मुण्डक, श्वेताश्वतर, ईश और महानारायणादि उपनिषदों का उन्होंने मनन किया था ।

सस्कृत व्याकरण का इनका अध्ययन गम्भीर था । कविरहस्य का छठा अध्याय व्याकरण शास्त्र के नियमों से सबन्धित है । प्रकृति और प्रत्यय निष्पन्न सुबन्त एव तिङन्त शब्द, प्रातिपदिक एव पद की परिभाषा, सुबन्त, समासान्त तद्धितान्त कृदन्त और तिङन्त के पांच पद-भेद, समासवृत्ति के छ भेद, तद्धितवृत्ति की अनन्तता, दस लकारों पर आधारित तिङन्त के दस भेद, वाक्य, वाक्यभेद, *भारत के विभिन्न देशों की प्रियवृत्तियाँ, पातञ्जल महाभाष्य के पस्पशाह्निक का* समीक्षण, व्याकरण का काव्यविद्या की दृष्टि से मूल्यांकन, व्याकरणकार पाल्यकीर्ति *के मत का उल्लेख, शब्द ब्रह्मवाद का विवेचन आदि से उनकी व्याकरण विषयक* पारगतता सूचित होती है ।

वायु-पुराण इनका प्रिय पुराण है । काव्यपुरुष के जन्म की कथा प्रस्तुत, वायु पुराण के कथानक पर आधारित है । कविरहस्य अधिकरण के सप्तम अध्याय

मे ब्राह्मवचन उसके पाँच प्रकार-स्वायम्भुव, ऐश्वर्य, आर्ष, आर्षीक एव आर्षीपुत्रक, इन सबका वर्णन राजशेखर ने वायुपुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण के आधार पर किया है । इसके अतिरिक्त विष्णुपुराण और अग्निपुराण मे उनकी रुचि दिखाई देती है । भारतवर्ष के वर्णन में जम्बूदीप का उल्लेख, कविप्रसिद्धियाँ तथा बाल-रामायण मे लिखित अनेक कथाओ का आधार आदर्श पुराण हैं । इन पुराणो के अध्ययन मे राजशेखर की विशेष रुचि थी ।

राजशेखर स्मृतियो के भी अध्येता थे । इन्होने 'विद्धशालभजिका' तथा 'काव्यमीमासा' मे मनुस्मृति का श्लोक उद्धृत किया है ।

आस्तिक तथा नास्तिक, दोनो दर्शनो पर राजशेखर का अच्छा अधिकार था। इन दर्शनो का परिचय एव उसमे राजशेखर की विद्वत्ता, कविरहस्य के अर्थव्याप्ति नामक नवम अध्याय मे दिखाई देती है । साख्य, न्याय, योग, वैशेषिक, वेदान्त, पूर्वमीमासा आदि आस्तिक दर्शन तथा बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि नास्तिक दर्शनो के विषय मे इनका ज्ञान अत्यन्त व्यापक था । राजशेखर साम्प्रदायिक विद्याओ से भी सुपरिचित थे । शैव, पाचरात्र (वैष्णव) एव बौद्ध सिद्धातो का भी उन्हें ज्ञान था । इनकी रचनाये कौटिलीय अर्थशास्त्र, वात्स्यायनीय कामसूत्र एवं भारतीय नाट्यशास्त्र से प्रभावित है । निश्चित ही इन्होने इन ग्रन्थो का अध्ययन किया होगा ।

राजशेखर ने 'बालरामायण' और 'बालभारत' नाटको के कथानको के लिये रामायण और महाभारत का अध्ययन किया था । इसके अतिरिक्त कालिदास की समस्त रचनाये–रघुवश, कुमारसभव, मेघदूत, अभिज्ञान-शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय एवं मालविकाग्निमित्र–उन्होने रुचिपूर्वक पढी थी । भारवि के किरातार्जुनीय, माघ के शिशुपालवध, कुमारदास के जानकी हरण, भर्तृमेण्ठ के हयग्रीववध, मयूर के सूर्यशतक, अमरुक के अमरुशतक, भट्टनारायण के वेणीसहार, बाणभट्ट की कादम्बरी एव चण्डीशतक, पुष्पदन्त के शिवमहिम्नस्तोत्र, वाक्पतिराज के गौडवध, त्रिविक्रमभट्ट के दमयन्तीचम्पू, जीमूतवाहन की व्यवहारमातृका, वात्स्यायन के कामसूत्र, हालसातवाहन की गाथा–सप्तशती, रत्नाकर की सुभाषितावली, व्यासमुनि के महाभारत, वाल्मीकि ऋषि की रामायण, भवभूति के मालतीमाधव एवं महावीरचरित आदि के अनेक उदाहरण काव्यमीमासा ग्रन्थ मे बिखरे पड़े हैं ।

इसी प्रकार काव्यशास्त्र के विषय में उनका पाडित्य प्रगाध था । समस्त प्राचीन आचार्यों का स्थान-स्थान पर उल्लेख उनके व्यापक काव्यशास्त्रीय अध्ययन का सूचक है । भरत, उद्भट, रुद्रट, सुरानन्द श्यामदेव, वाक्यतिराज, मेधाविरुद्र, मगल, द्रोहिणि और आनन्दवर्धन के स्पष्ट नामोल्लेख के अतिरिक्त "आचार्याः" नाम से बहुधा भामह, एव दण्डी का सकेत भी काव्यमीमांसा मे उपलब्ध है । एक वाक्य मे कहा जाय तो इनके अध्ययन की परिधि मे सम्पूर्ण वाङमय आ जाता है ।

यात्राएँ

राजशेखर ने वत्सगुल्म से कान्यकुब्ज एव कान्यकुब्ज से त्रिपुरी तक तो भ्रमण किया ही था परन्तु उनके अन्य प्रदेशो की पर्यटन विषयक प्रामाणिक जानकारी अनुपलब्ध है । फिर भी स्वदेश के भूगोल का सूक्ष्म ज्ञान उनके ग्रन्थो मे बिखरा पडा है । राजशेखर ने 'बालरामायण' मे मिथिला, लका, कोकण, अयोध्या, सिंहल, कैलास प्राग्ज्योतिष, कामरूप, पाण्ड्य,द्रविण, माहिष्मती, दशार्ण, सिंहल मथुरा, अवन्ति, कुशस्थली, क्रथकैशिक, कुन्तल, काची, लाट, ओड्, मगध,काम्बोज, सौराष्ट्र, शक, नेपाल, आन्ध्र, हैहय, विदेश, लम्पाक, वाल्व, वाल्हीक, प्रयाग, चित्रकूट तथा 'बालभारत' मे मुरल, मेकल, कलिंग, रपठ, धकुरु आदि और जनपदो का सास्कृतिक एव प्राकृतिक महत्व वर्णित किया है । 'काव्यमीमासा' मे भौगोलिक आधार पर उनका पाँच खण्डो मे विभाजन भी बतलाया है । उनके इस विशाल भौगोलिक ज्ञान तथा उसके सूक्ष्म वर्णन मे हम अनुमान करने के लिये बाध्य है कि राजशेखर ने अवश्य ही भारत के सुदूर प्रान्तो का अर्थात् हिमालय से कन्याकुमारी एव कच्छ से ब्रह्मदेश तक का प्रवास और प्रकृति निरीक्षण किया होगा । इनके सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण एव शास्त्रो के गहन अध्ययन झाँकी की उनकी विभिन्न रचनाओ मे दिखाई देती है ।

रचनाएँ

आज राजशेखर के नाम से निम्न पाँच रचनाये उपलब्ध है–'बालरामायण' 'बालभारत', 'कर्पूरमजरी', 'विद्धशालभजिका' और 'काव्यमीमासा' । इनमे 'बालरामायण' और 'बालभारत' नाटक 'कर्पूरमजरी' सट्टक, 'विद्धशालभजिका' नाटिका तथा 'काव्यमीमासा' काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है ।

इन रचनाओं के अतिरिक्त कतिपय विद्वानो ने राजशेखर की कुछ अन्य कृतियो का भी उल्लेख किया है । जैसे, चौदहवी शती के आचार्य हेमचन्द्र ने अपने काव्या-

नुशासन में 'स्वनामाकता यथा राजशेखरस्य हरविलासे, द्वारा इन्हे हरविलास ग्रंथ का न केवल कर्ता बताया है अपितु अन्य दो श्लोको द्वारा[१] यह भी प्रमाणित किया है कि यह ग्रंथ कभी अस्तित्व मे था। आचार्य हेमचन्द्र के पूर्व १३ वी शताब्दी के वृत्तिकार उज्ज्वलदत्त–जिन्होने उणादि सूत्रों पर वृत्ति लिखी है[२]–ने हरविलास ग्रन्थ का तो उल्लेख किया है परन्तु राजशेखर का नही। हेमचन्द्राचार्य द्वाराउद्धृत अंश से विदित होता है कि इसका प्रचलन चौदहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक था। सभव है किसी तमसावृत प्रदेश में पड़ा यह ग्रंथ किसी अन्वेषक सुधी की प्रतीक्षा कर रहा हो।

राजशेखर की सदिग्ध पदावली के कारण उनके नाम पर दो अन्य ग्रन्थो का अस्तित्व भी विवाद का विषय बन गया है। 'बालरामायण' की प्रस्तावना में उन्होने प्रथम षट्प्रबन्धो का अवलोकन करने का आग्रह किया है।[३] अतः ये षट्प्रबन्ध विद्वानो के लिए प्रहेलिका बन गये है। इसी प्रकार काव्यमीमासा मे देश विभाग के विवेचन के पश्चात् "यस्तुजिगीषत्यधिक पश्यतु मद्भुवनकोषमसौ" कहकर भुवनकोष' नामक ग्रन्थ के स्वतंत्र या 'काव्यमीमासा' के अध्याय विशेष होने की समस्या को हल करने के लिए छोड़ गए हैं। इन दोनो ग्रन्थो के विषय में अनेक मत उपलब्ध हैं।

डॉ० मिराशी 'षट्प्रबन्ध' को कवि की प्रथम रचना मानते है।[४] इसी प्रकार दूसरे ग्रन्थ 'भुवनकोष' के सबध मे डॉ० वि० वि० मिराशी[५] डॉ० एस० के०[६] एव प्रो० रैनो[७] का कथन है कि वह स्वतत्र ग्रन्थ न होकर 'कविरहस्य अधिकरण' का अन्तिम अध्याय है।

---

१. काव्यानुशासन–हेमचन्द्र–पृ० ४३५
आशीर्यथा हरविलासे—
ओमित्येकाक्षर ब्रह्मश्रुतीना मुखपक्षरम्। प्रसीदतु सता स्वान्तेष्वेक त्रिपुरुषीमयम्॥
सुजनदुर्जनस्वरूप यथा हरविलासे—
इतरततो भुषन् भूरि न पतेत् पिशुन. शुन। अवदाततया किन्च न भेदो हसत सत॥
२ उणादिसूत्रवृत्ति–उज्ज्वलदत्त, २।२९
३. विद्धि न. षट् प्रबन्धान्, बालरामायण १।१२
४. पाठक कमेमोरेशन वाल्यूम पृ० ३६०
५. —वही— पृ० ३६०
६. हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर–एस० के० डे०–भाग १ पृ० ४५५।
७ इन्ट्रोडक्शन टु कर्पूरमञ्जरी–एन० जी० सुरु, पेज lxxxvi

श्री एम० कृष्णमाचारियर ने[1] राजशेखर को "अष्टपत्रदलकमल" ग्रन्थ का तथा प्रो० रैनो ने[2] "रत्नमंजरी नाटिका" का कर्ता बतलाया है। इन दो ग्रन्थों का अन्यत्र उल्लेख उपलब्ध नही है।

डॉ० झाम्वरे ने अपने प्रवन्ध मे 'षट् प्रवन्धों' को (छै) छह स्वतन्त्र ग्रन्थ माना है वे *वालरामायण, वालभारत, हरविलास, कर्पूरमजरी, विद्धशालभजिका,* 'भुवनकोष' एवं 'काव्यमीमासा', को मिलाकर राजशेखर के १३ ग्रन्थो का उल्लेख करते हैं।

उपर्युक्त विवेचना से पता चलता है कि *राजशेखर की उपलब्ध कृतियों की* अपेक्षा अनुपलब्ध कृतियाँ ही अधिक है। किन्तु विश्वसनीय जानकारी के अभाव मे हमे केवल उनका नाम निर्देश करके ही मौनधारण करना होगा।

ग्रन्थों का रचना क्रम

उपलब्ध ग्रन्थो के रचना-क्रम के सम्वन्धी मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। नीचे कतिपय प्रमुख विद्वानों के मत प्रस्तुत है—

१–श्री० वी० एस० आपटे एवं डॉ० स्टेनकोनो

१ कर्पूरमजरी २ विद्धशालभजिका ३ वालरामायण ४ वालभारत

२–डॉ० ए० बी० कीथ

१ कर्पूरमंजरी २ वालरामायण ३ विद्धशालभजिका ४ वालभारत

३–श्री० सी० डी० दलाल

१ वालरामायण २ वालभारत ३ विद्धशालभजिका ४ कर्पूरमजरी

४–प्रो० रैनो एवं श्री० शास्त्री

१ कर्पूरमजरी २ विद्धशालभजिका ३ वालरामायण ४. काव्यमीमासा

५–डॉ० मिराशी

१ वालरामायण २ वालभारत ३ कर्पूरमजरी ४ विद्धशालभजिका ५. काव्यमीमासा

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–एन० कृष्णमाचारी, पेज ६२७ ६२८।

२. द्रष्टव्य —वही—पृ० ६२७-६२८।

इस रचना-क्रम से कतिपय तथ्यों की जानकारी मिलती है। पहिली बात-१८८६ में जब श्री० वी० एस० आपटे ने "राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग्ज" की रचना की तथा १९०१ ई० में डॉ० स्टेनकोनो ने 'कर्पूरमंजरी' सट्टक की टीका लिखी जब तक 'काव्यमीमांसा' ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आया था। दूसरी बात यह है कि डॉ० मिराशी और श्री० दलाल को छोड़कर सभी विद्वान 'बालभारत' को कवि की अंतिम रचना मानते हैं। इसका कारण वे बालभारत का अपूर्णत्व बतलाते हैं। केवल इन्हीं दो विद्वानों ने 'बालरामायण' को कवि की प्रथम रचना माना है। अन्य तीन विद्वान 'कर्पूरमंजरी' को प्रथम कृति मानने के पक्ष में हैं।

राजशेखर ने 'बालरामायण' तथा 'बालभारत' में स्वयं को महामंत्री-पुत्र कहकर अपने पिता का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि इन ग्रंथों के रचना-काल तक उनके पिता जीवित थे। अन्य तीन कृतियों में पिता का नाम निर्देश नहीं है। अतः बालरामायण को प्रथम रचना मानना उचित प्रतीत होता है। 'काव्यमीमांसा' ग्रन्थ की सुयोजित रूपरेखा देने के पश्चात् भी उसका अपूर्ण रहना कवि की मृत्यु की ओर ही संकेत करता है। अतः काव्यमीमांसा अंतिम रचना मानना न्याय्य होगा।

राजशेखर के नाट्यग्रन्थों की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि 'बालरामायण' 'बालभारत' एवं 'कर्पूरमंजरी' की रचना कान्यकुब्ज में तथा 'विद्धशालभंजिका' की रचना त्रिपुरी में हुई थी। 'काव्यमीमांसा' के विषय में दो मत हैं—डॉ० दशरथ शर्मा के अनुसार यह ग्रन्थ कन्नौज में रचा गया था।[१] डॉ० मिराशी का कथन है कि उसकी रचना त्रिपुरी में हुई थी।

संस्करण

इन रचनाओं के निम्नलिखित संस्करण उपलब्ध है—

बालरामायण : (१) पण्डित ओल्ड सीरीज ३ के अन्तर्गत श्री० गोविन्ददेव शास्त्री द्वारा बनारस से सन् १९६६ में प्रकाशित।

(२) श्री० जे० विद्यासागर द्वारा कलकत्ता से सन् १८८४ में प्रकाशित।

(३) श्री० लक्ष्मण सूरि द्वारा कलकत्ता से सन् १७६९ में प्रकाशित।

कर्पूरमंजरी : (१) 'पंडित ओल्ड सीरीज ७' के अन्तर्गत श्री० वामनाचार्य द्वारा सन् १८७२-७३ में बनारस से प्रकाशित।

१. साहित्य सुषमा भाग ८ अंक ४

(२) 'काव्यमाला सीरीज न० ४' के अन्तर्गत वासुदेव व्याख्या समेत श्री दुर्गाप्रसाद तथा श्री पाण्डुरग परब द्वारा सन् १८८७ मे बम्बई मे प्रकाशित।

(३) जे० विद्यासागर द्वारा व्याख्या सहित कलकत्ता से १८७६ मे प्रकाशित।

(४) आग्ल भाषा मे 'ए लकी वाइफ' शीर्षक के अन्तर्गत श्री वी० एस० इस्लामपुरकर द्वारा बम्बई से १८६० मे प्रकाशित।

(५) श्री स्टेनकोनो तथा श्री सी० आर० लॉनमैन द्वारा 'हारवर्ड ओरियन्टल सीरीज ४' के अन्तर्गत केम्ब्रिज से १६०१ मे प्रकाशित।

(६) श्री० मोतीलाल बनारसीदास द्वारा इसी सस्करण का बनारस से पुन. १६६५ मे प्रकाशन।

(७) श्री एन० जी० सुरु द्वारा अग्रेजी और मराठी अनुवाद सहित १६६० मे पूना से प्रकाशित।

(८) चौखम्बा सस्कृत सीरीज से आचार्य रामचन्द्र द्वारा हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन।

इन सस्करणों के अतिरिक्त हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि स्वर्गीय श्री० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कर्पूरमजरी' का हिन्दी मे अविकल अनुवाद किया है।

विद्धशालभंजिका

(१) श्री० वामनाचार्य द्वारा 'पडित ओल्ड सीरीज' के अन्तर्गत १८७२-७३ ई० मे बनारस से प्रकाशित।

(२) श्री जे० विद्यासागर द्वारा सत्यव्रत व्याख्या समेत कलकत्ता से सन् १८७३ मे प्रकाशित।

(३) इनके द्वारा सन् १८८३ मे पुन प्रकाशित।

(४) श्री बी० आर० आरते द्वारा (नारायण दीक्षित की व्याख्या समेत) पूना से सन् १८८६ मे प्रकाशित।

(५) आग्ल भाषा मे प्रथमत अनुदित, जे० ए० ओ० एस० मे लुई एच० ग्रे (Louis H. Gray) द्वारा सन् १६०६ मे प्रकाशित।

काव्यमीमांसा

(१) 'गायकवाड ओरियन्टल सीरीज १' के अन्तर्गत श्री सी० डी० दलाल एव श्री० आर० ए० शास्त्री द्वारा बडौदा से सन् १६१६ मे प्रकाशित।

(२) बिहार राष्ट्रभाषा परिषद से सन् १९५४ ई० में श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत द्वारा प्रकाशित ।

(३) 'हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला १४' के अन्तर्गत वाराणसी से सन् १९५८ में मधुसूदन मिश्र द्वारा प्रकाशित ।

(४) डॉ० गगासागर राय द्वारा सपादित ।

(५) डॉ० गंगानाथ झा ने कवि शिक्षा प्रणाली विषय पर व्याख्यान दिए थे । उन व्याख्यानों का सकलन 'कविरहस्य' रूप में हिन्दुस्तानी अकादमी ने सन् १९२८-१९२९ में प्रकाशित किया था। यह 'कविरहस्य' पुस्तक काव्यमीमांसा के कविरहस्य का ही अनुवाद है ।

बालभारत

'बालभारत' का स्वतन्त्र सस्करण उपलब्ध नहीं है । 'काव्यमाला सीरीज ४' के अन्तर्गत कर्पूरमंजरी के सस्करण से सलग्न इस ग्रंथ का एकमेव सस्करण उपलब्ध है ।

राजशेखर की रचनाओं के इतने अधिक सस्करण उनकी लोकप्रियता के प्रतीक है ।

सम्मान-प्रतिष्ठा

राजशेखर के समकालीन कवि मित्र कृष्णशंकर वर्मा की राजशेखर के विषय में यह प्रशस्ति प्रसिद्ध है—

पातु श्रोत्ररसायनं रचयितुं वाचः सतां सम्मता
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः ।
भोक्तुं स्वादुफलं च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुकं
तद् भ्रातः शृणु राजशेखरकवेः सूक्तीः सुधास्यन्दिनीः ॥

अर्थात् यदि कानों को रसायनपान कराना चाहते हो, सज्जन-सम्मत वचनों की रचना करने के इच्छुक हो, विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने की लालसा रखते हो, रस-स्रोत की पराकाष्ठा चाहते हो, जीवन-रूपी वृक्ष के मधुर फल का आस्वादन करना चाहते हो तो हे भाई, राजशेखर की अमृतवर्षिणी सूक्तियों को सुनो ।'

वार-बार उनकी काव्यमाधुरी का पान करने पर भी को रसिकों तृप्ति नही होती थी। उनके दूसरे मित्र आपराजित ने स्पष्ट शब्दो में कहा है—

> वालकवि. कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्याय. ।
> इत्यस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमारुढ ।
> सोऽस्य कवि श्रीराजशेखर त्रिभुवनमपि धवलयन्ति
> हरिणाक प्रति पड्‌वित सिद्धया निष्कलका गुणा यस्य ।।

अर्थात् वालकवि, कविशिरोमणि, निर्भयराज के उपाध्याय आदि का गौरव इन्होंने पाया है। इनके निष्कलक गुणो में त्रिभुवन उज्ज्वल हो रहा है। मृगाक-कथाकार आपराजित के इन वचनो से प्रमाणित होता है कि राजशेखर अपने युग के मूर्धन्य कवि थे। जिनकी कीर्ति उनके समक्ष ही दिग्दिगन्त मे फैल गई थी। अपने जीवन-काल मे इतनी अधिक कीर्ति शायद ही किसी कवि को मिली हो। उनकी मृत्यु के पश्चात् साहित्यकारो ने उन्हे स्तुतिकुसुमाञ्जलि अर्पित की है, वह पठनीय है। सोड्‌ढल का कथन है—

> यायावर प्राज्ञवरो गुणज्ञैराशसित सूरिसमाज वर्यं ।
> नृत्यत्युदार भणिते रसस्था नटीव यस्योऽरसा पदश्री ।।

(अर्थात् रसमयी नटी के नृत्य के समान जिसकी कविता मे पदो की शोभा नृत्य करती हुई दिखाई देती है, ऐसे राजशेखर गुणज्ञ सुधीजनों द्वारा प्रशसित है) तिलकमजरीकार धनपाल का कथन है कि मुनियों की वृत्ति धारण करने वाले यायावर कवि की कविता समाधिगुणशालिनी तथा प्रसादगुण से परिपक्व होती है—

> समाधि-गुण-शालिन्य प्रसन्नपरिपक्त्रिमा ।
> यायावर-कवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तय ।

राजशेखर ने साहित्यकारो मे एव विद्वत्समाज मे जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, उससे कही अधिक प्रतिष्ठा एव सम्मान उन्हे राजदरबार मे प्राप्त था। राजशेखर नवी शती के अद्भुत पराक्रमी एव प्रख्यात सम्राट गुर्जर प्रतिहार महेन्द्रपाल के राजगुरु थे। यह कितना भव्य सम्मान था। इस प्रकार इस उभयमुखी प्रतिभा से सम्पन्न कलाकार ने द्विविध-साहित्यिक तथा राजकीय-गौरव प्राप्त किया था।

मृत्यु

क्षेमेन्द्र ने राजशेखर के विषय मे कहा है कि—

कर्णाटी-दशाङ्कित सितमहाराष्ट्री-कटाक्षाहतः
प्रौढान्ध्रीस्तनपीडित प्रणयिनी भ्रूभंग वित्रासित. ।
लाटीबाहुविवेष्टितश्च मलयस्त्रीतर्जनीतर्जित
सोऽय सम्प्रति राजशेखर-कविर्वाराणसी वाञ्छति ॥

(अर्थात् पहले जो कर्नाटक देश की वनिताओं के दन्तक्षतो से चिह्नित हुआ, फिर महाराष्ट्र की गोरी ललनाओं के कटाक्षनिक्षेप का शिकार हुआ, बाद में आन्ध्र की प्रौढ सुन्दरियो के स्तनो के भार से दब-सा गया, फिर प्रेयसी की कुटिल भृकुटि से भयभीत हुआ, बाद मे लाट देश की कामिनियों के बाहुपाश मे आबद्ध हुआ, और मलय-नितम्बिनी की तर्जनी से तर्जित भी हुआ, वही कविशिरोमणि राजशेखर आज वाराणसी जाने की स्पृहा कर रहा है'।

क्षेमेन्द्र के इस कथन मे सत्यता या प्रामाणिकता का अभाव होने के कारण यह विश्वसनीय नही है। राजशेखर ने वत्सगुल्म को अपने जन्म से पुनीत किया था, किन्तु वह क्षेत्र जन्मस्थली तक ही महत्त्वपूर्ण रहा। उनकी कर्म भूमि कान्यकुब्ज थी। त्रिपुरी पर भी उनका प्रभाव था। महेन्द्रपाल नरेश के आश्रय में इस तरुण कवि ने पहले बालरामायण की रचना की और तत्पश्चात् कर्पूरमञ्जरी की। जब वे महेन्द्रपाल के उत्तराधिकारी पुत्र महीपाल की छत्रच्छाया में बालभारत को पूर्ण कर रहे थे, उसी समय उन पर दुर्दिन के बादल मण्डराने लगे। पिता की मृत्यु एव आश्रयदाता के जगल-जगल मे भटकने से कवि पर दोहरी विपत्ति आ पड़ी और वे इसी दशा मे कन्नौज से त्रिपुरी पहुँचे। वहाँ 'विद्धशालभंजिका' की रचना की। पुन महीपाल के स्थिर हो जाने पर कन्नौज लौटे। तब तक वे वृद्धावस्था मे पदार्पण कर चुके थे और अपने प्रौढ़ पाडित्य एव जीवन की सम्पूर्ण-साहित्यिक निधि को काव्यमीमासा मे एकत्र करना चाहते थे किन्तु जराजर्जरित देह उनकी साधना मे बाधक हुई। वे काव्यमीमासा ग्रन्थ को प्रारंभ ही कर पाये कि उनकी मृत्यु हो गई। इस समय वे नब्बे वर्ष के थे। भारत तथा भारती दोनों ही इस महापुरुष के निधन से होने वाली क्षति को आज तक पूर्ण नहीं कर पाये।

सामयिक परिस्थितियाँ

समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव साहित्यकार की रचनाओं मे यत्र- तत्र दृष्टिगत होता है। साहित्य युग का निर्माण करता है, और युग साहित्य का। सामाजिक, राजनीतिक एव धार्मिक स्थितियों से उद्भूत प्रेरणा साहित्यकार को

प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों मे, सामयिक साहित्य, देश, धर्म, समाज और जीवन ही साहित्य-निर्माता की पृष्ठभूमि होते हैं।

राजशेखर नवम शताब्दी के साहित्यकारों की कोटि मे अग्रणी कहे जा सकते हैं। वे साहित्य-नायक थे। जनरुचि के अनुकूल साहित्यिक पृष्ठभूमि तैयार करना ही उनका परम लक्ष्य था। अत. साहित्य को नई दिशा की ओर मोड़ने का इन्होंने प्रशंसनीय प्रयास किया। शताब्दियों से चली आने वाली साहित्यशास्त्रीय परम्परा को एक नवीन दिशा की ओर उन्मुख करने में उनकी वैखरी प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई। अत राजशेखर कालीन स्थितियो का अवलोकन, उनकी रचनाओं के अनुशीलन के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

नाटककार राजशेखर के पूर्व विद्यमान नाट्य-परम्परा का प्रभाव उनकी नाट्य-कृतियों मे स्पष्ट झलकता है। अत इस पूर्ववर्ती नाट्यपरम्परा का विहगावलोकन यहाँ आवश्यक होगा।

नाट्य-परम्परा

संस्कृत साहित्य में नाटकों की सजीव एव मूर्त परम्परा का प्रवर्तन भास के साथ होता है। भासकृत नाटकों की संख्या तेरह है। ये नाटक है—दूतवाक्य, कर्णभार, दूत-घटोत्कच, उरुभग, मध्यमव्यायोग, पचरात्र, अभिषेक, बालचरित, अविमारक,, प्रतिमा, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्ता और चारुदत्त। इन रचनाओं का आधार महाभारत, रामायण, उद्दयन कथा एव काल्पनिक है। दूतवाक्य, कर्णभार, दूतघटोत्कच, उरुभग, मध्यमव्यायोग, पचरात्र और बालचरित महाभारताश्रित है। प्रतिभा और अभिषेक का उपजीव्य रामायण है, और अविमारक एवं चारुदत्त के कथानक काल्पनिक है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण एव स्वप्नवासवदत्त उद्दयन की जीवन-घटना से सम्बन्धित है।

नाटकों की निर्माण-परम्परा मे भास के बाद कालिदास का क्रम आता है। नाटकों के क्षेत्र मे इस महाकवि ने (१) मालाविकाग्निमित्र (२) विक्रमोर्वशीय एव (३) अभिज्ञान शाकुन्तल—इन तीन कृतियों का प्रणयन किया है। मालविकाग्निमित्र की गणना नाटिका-भेद मे की जाती है, विक्रमोर्वशीय की त्रोटक एव अभिज्ञान शाकुन्तल की नाटक मे।

कालिदास के बाद अश्वघोष का नाम उल्लेखनीय है। अश्वघोष के नाटक का नाम 'शारिपुत्र प्रकरण' है। अश्वघोष के पश्चात् शूद्रक उल्लेखनीय हैं। इन्होंने मृच्छकटिक की रचना की थी। राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टि से यह

राजशेखर को उत्तराधिकार के रूप मे भास से मुरारि तक की नाट्य परम्परा उपलब्ध थी। इन सम्पूर्ण कृतियों को हम कथानक की दृष्टि से तीन भागों में बाँट सकते है—(१) रामायण पर आश्रित–प्रतिमा, अभिषेक, उत्तररामचरित, महावीरचरित एव अनर्घराघव (२) महाभारत पर आश्रित—दूतवाक्य, कर्णभार, दूतघटोत्कच, उरुभग, मध्यमव्यायोग, पचरात्र, बालचरित एवं वेणीसहार, (३) कल्पित या उत्पाद्य—मालविकाग्निमित्र, अविमारक, चारुदत्त, रत्नावली, प्रियदर्शिका, मालतीमाधव आदि। कल्पित कथावस्तु का मुख्य उद्देश्य रामायण और महाभारताश्रित नाटकों से भिन्न था। स्वाभाविक है कि उत्पाद्य कथावस्तु पर आश्रित नाट्यकृतियाँ जनमत के अधिक समीप रही होगी। घिसीपिटी कथा-वस्तु में लाख प्रयत्न करने पर भी नये प्राण उडेलना कठिन था। जनसामान्य के लिए इन कथाओं मे तब तक कोई विशेष रुचि नही हो सकती थी, जब तक कि उनमे कोई विशेष कलाप्रयोग न किया गया हो। भवभूति को इसी कारण, नवीन रस मार्ग का वरण करना पडा। दूसरी ओर कल्पित कथायें छोटे-छोटे राजपरिवारो के अन्तरग स्नेह सबधो का उद्घाटन करती, और प्रकारान्तर से लोगों की अपरितृप्त शृगार भावना की पुष्टि मे सहायक होती थी। इनमें दर्शक की उत्सुकता बनी रहती थी, क्योंकि वे उनके कथानक से पूर्वपरिचित न होते थे। अपने दर्शकों के बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखते हुए, उत्पाद्य वस्तु के नाटककारों ने अपनी कृतियों में प्राकृत को अधिक महत्व दिया था।

राजशेखर ने समर्थ कलाकार की भाँति अपने पूर्व से चली आती हुई चारो शैलियों का वरण किया और अपनी प्रतिभा के सस्पर्श से उनमें नवीन प्राणो का सचरण किया। उन्होने रामायणीय कथानक पर नवीन प्रयोग करते हुए, बालरामायण लिखा, और महाभारत के आधार पर बालभारत की रचना की। शिष्ट, अधीत, मध्यवर्ग के लिए विद्धशालभजिका का निर्माण किया, तो सामान्य समाज को कर्पूरमजरी के लावण्य कौशल से चमत्कृत करने का प्रयास किया। राजशेखर का वैशिष्ट्य उनकी समग्र ग्रहणशीलता मे है। इन कृतियो के सम्बन्ध मे उनके नवीन कला-प्रयोगों की चर्चा हम विशेष प्रसग पर करेंगे।

शास्त्र-परम्परा

जिस प्रकार राजशेखर को उत्तराधिकार मे भास से मुरारि तक की नाट्य-परम्परा प्राप्त थी उसी प्रकार उन्हे आचार्य भामह से आचार्य आनन्दवर्धन तक काव्यशास्त्र की विकसित प्रणाली पृष्ठभूमि के रूप मे उपलब्ध थी। उन्होने

काव्यमीमासा ग्रन्थ मे प्राय. सभी पूर्ववर्ती आचार्यों—(भरत, वामन, उद्भट, लोल्लट, आनन्दवर्धन) के मतो का उल्लेख किया है। साथ ही उन पूर्वगामी आचार्यों की नामावली भी इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की है, जिनसे पूर्ववर्ती आचार्य नितान्त अपरिचित थे। इन पूर्वगामी आचार्यों मे अमर[1] उक्तिगम[2], उतथ्य[3], उपमन्यु[4], अवर्ष[5], प्रचेतायन[6], मगल[7], रूप[8], श्यामदेव[9] सुरानन्द[10], और सूर[11] केवल नाम शेष हैं। इनकी कृतियों अथवा इनका स्वय का परिचय राजशेखर के शब्दों में ही मिलता है।

काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य मेधाविरुद्र का उल्लेख आलंकारिक के रूप में मिलता है। स्वय भामह[12] ने अपने काव्यलंकार में मेधाविरुद्र को दो स्थलों पर उद्धृत किया है। रुद्रट के काव्यालकार की टीका लिखने वाले नमि-साधु ने[13] इनके अलकार-शास्त्रीय ग्रन्थ का निर्देश किया है। अत इनका अस्तित्व निर्विवाद है। राजशेखर इनकी मौलिक प्रतिभा की प्रशसा करते हुए कहते हैं कि इस प्रतिभा के कारण ही जन्म से अन्धे होने पर भी मेधाविरुद्र, कुमारदास आदि को समस्त विषय प्रत्यक्षवत् भासित होते थे।

"प्रतिभावत पुनरपश्यतोऽपिप्रत्यक्ष इव। यतो मेधाविरुद्र कुमारदासादयो जात्यन्धा कवय श्रूयन्ते।[14] आचार्य दण्डी ने इनका उल्लेख मेधावी नाम से किया[6] है।

कालक्रमानुसार मेधावी के पश्चात् आचार्य भामह का स्थान है। काव्यशास्त्र के ये आद्य आलकारिक हैं। इनकी अलंकारशास्त्र से सबधित एकमात्र कृति काव्यालकार है। इन्होंने इस ग्रन्थ मे काव्य-शरीर (काव्य के प्रयोजन, लक्षण आदि) अलंकार, दोष, न्यायनिर्णय, शब्दशुद्धि आदि का विवेचन किया है। राजशेखर ने इनके सिद्धातो का उल्लेख 'आचार्य:' नाम से किया है।

---

१. काव्यमीमासा अध्याय १० पृ० ५५५, (२), (३), (४) वही अ १ पृ० १, (५) वही अध्याय १० पृ० ५५, (६) वही अध्याय १ पृ० १ (७) वही अध्याय ४ पृ० ११, १४ अध्याय ५ पृष्ठ १६, २०, (८) वही अध्याय १० पृ० ५५, (९) वही अध्याय ४ पृ० ११, १३, अध्याय ५ पृ० १७ (१०) वही अध्याय १३ पृ० ७८, (११) वही अ. १३ पृ० ७८

१२. काव्यालंकार-भामह. २-४०, २-८८

१३. काव्यालकार-रुद्रट १.२

१४. काव्यमीमांसा. अध्याय ४ पृ० ११-१२

भामह के पश्चात् आचार्य दण्डी का नाम आता है। इन्होने काव्य तथा शास्त्र दोनो ही क्षेत्रों की श्री-वृद्धि की। अलकार-शास्त्र को उनकी अमूल्य देन है— काव्यादर्श। तीन परिच्छेदो में विभक्त इस ग्रन्थ मे काव्यलक्षण, काव्यभेद, गद्य के दो भेद, आख्यायिका, कथा, रीति, गुण तथा कवि के आवश्यक गुण, अलकार, अलंकारो की परिभाषायें, उनके उदाहरण, यमक, चित्रबन्ध, गोमूत्रिका, सर्वतो-भद्र और वर्ण-नियम आदि सोलह प्रकार की प्रहेलिकाओ और दस प्रकार के काव्य-दोषो का विशद विवेचन किया है। काल की दृष्टि से दण्डी के उपरान्त उद्भट और वामन का स्थान है। ये दोनो प्राय समकालीन थे तथा काश्मीर-नरेश जयापीड के सभापण्डित थे। राजशेखर ने उद्भट और वामन के विचार औद्-भटा[1] एव वामनीया[2] नाम से व्यक्त किए हैं। आचार्य उद्भट के ग्रन्थ का नाम 'अलकारसारसग्रह' है। नामानुसार इस ग्रन्थ का प्रमुख विवेच्य विषय अलंकार है। रीति को काव्य की आत्मा वर्णित करने के अतिरिक्त इन्होंने काव्य के प्रयोजन, काव्य के अधिकारी, रीति के प्रकार, काव्य के प्रकार, पद-वाक्य, वाक्यार्थों के दोष, अलकार, गुण, गुणो के दस भेद, काव्यसमय, सदिग्ध शब्दविवेचन तथा शब्दशुद्धि का विवेचन किया है।

आचार्य रुद्रट काव्यालकार के कारण अलकार-क्षेत्र मे प्रसिद्ध हैं। इनके ग्रन्थ में काव्य प्रयोजन, भाषा, रीति, रस तथा वृत्ति का वर्णन होने पर भी प्रमुखता अलकारो के विवेचन को दी गयी है। इन्होने अलकारो का प्रथमत वैज्ञानिक विभाजन किया है। राजशेखर ने वक्रोक्ति की शब्दालकारता के विवेचन के अवसर पर इनका उल्लेख किया है।

रुद्रट के पश्चात् आनन्दवर्धन का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ये ध्वनि सम्प्र-दाय के प्रवर्तक हैं। इनकी एकमात्र कृति 'ध्वन्यालोक' ध्वनि विरोधी मतो, ध्वनि के भेद-प्रभेदो एव उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालती है। राजशेखर ने कही इनका निर्देश 'कश्चित्' शब्द द्वारा और कही 'आनन्द'[3] नाम से किया है।

आनन्दवर्धन के पश्चात् काव्यक्षेत्र मे राजशेखर का पदार्पण हुआ। हम देखते हैं कि काव्य के शास्त्रीय क्षेत्र मे भी नाट्यक्षेत्र के समान राजशेखर के सम्मुख प्रचुर

१. काव्यमीमासा : अध्याय ६ पृ० २२, अध्याय ६ पृ० ४४
२. वही–अध्याय ४ पृ०, १४,
३ वही–अध्याय ५ पृ० २०

सामग्री विद्यमान थी। उन्होंने उपस्थित सामग्री का यथावत् अध्ययन कर अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से उसे और विकसित एवं समृद्ध किया। न केवल विचारों और सिद्धांतों की दृष्टि से, अपितु निरूपण-शैली की दृष्टि से भी उन्होंने साहित्य-समीक्षा को एक नई दिशा प्रदान की और मौलिक सर्जन के साथ-साथ आचार्य के रूप में भी प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित हुए। उनकी काव्यमीमांसा के विवेचन के समय इस विषय पर विशेष प्रकाश डाला जायगा। यहाँ उनके नाट्य-ग्रन्थों एवं काव्यशास्त्र की पृष्ठभूमि का एक चित्र देना आवश्यक है, जिससे उनकी कृतियों की समीक्षा करते समय उनके सम्मुख प्रस्तुत साहित्य सामग्री के परिप्रेक्ष्य में हम उनके उचित मूल्यांकन में समर्थ हो सकें।

संस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा और उसके आश्रयदाता

संस्कृत नाट्य-परम्परा एवं काव्य-परम्परा का अनुशीलन तत्कालीन संस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा पर प्रकाश डालने में सहायक सिद्ध होता है। राजशेखर से पूर्व-भास से मुरारि पर्यन्त एवं भामह से आनन्दवर्धन तक (नाट्य एवं काव्य) वाङ्मय को गतिशीलता प्रदान करने वाले दो प्रमुख वर्ग थे—कवि और आचार्य, साहित्य-कार एवं साहित्य सेवी। यहां साहित्य सेवी से तात्पर्य समाज के साहित्यानुरागी राजगणों से है। भारत में कवियों एवं विद्वानों को सब प्रकार की सहायता एवं सम्मान प्रदान करने की परम्परा राजपरिवारों के इतिहास में प्रारम्भ से ही पायी जाती है। चालुक्य वंश के विष्णुवर्धन, श्रीधरसेन एवं मातृगुप्त ने क्रमश भारवि, भट्टि एवं भर्तृमेण्ठ जैसे महाकवियों को प्रश्रय दिया था। स्थाण्वीश्वर के वर्धन कुल की छत्रच्छाया में बाणभट्ट, मयूर, मातंग दिवाकर जैसे प्रथितयशस्क साहित्य-कार पल्लवित हुए। कन्नौज का वर्धन वंश भवभूति एवं वाक्पतिराज के संरक्षण का श्रेयोभागी रहा। काश्मीर के उत्पल राजघराने के आश्रय ने शिवस्वामी, रत्नाकर, मुक्ताकण और आनन्दवर्धन जैसे कलाकारों की प्रतिभा को मुखरित किया। इसी देश के जयापीड नृपति ने वामन, उद्भट जैसे आचार्यों को अपना संरक्षण प्रदान किया। राजकुमारों के संरक्षण में प्रतिभाशाली व्यक्ति पनपते रहे। राजशेखर ने इस तथ्य को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है —

"राजाश्रयेण च गता. कवय. प्रसिद्धिम् ।"

ये साहित्यकार अपनी कृतियों के साथ-साथ अपने आश्रयदाता नरेशों को भी अमर कर गए। इसकी पुष्टि 'राजश्च नास्ति कविना सदृश सहाय' इस वाक्य से हो जाती है। राजा एवं साहित्यकार दोनों ने मिलकर संस्कृत को जो प्रतिष्ठा प्रदान की, उसकी प्रतीति तत्कालीन ग्रन्थवैभव से हो जाती है। राजशेखर के युग में

चक्रायुध के समय तीन तुल्यबल सम्राटवंशों की लोलुप दृष्टि कन्नौज नगरी पर जा टिकी। ये अदम्य साहसी शासक थे—बंगाल के पाल, राजपूताना के गुर्जर-प्रतिहार, एवं मालखेड के राष्ट्रकूट। अत: दुर्बल शासकों से छुटकारा पाते न पाते कन्नौज को इन तीन दिग्गजों की गृध्रदृष्टि का पात्र बनना पड़ा। आठवीं शताब्दी के अधिकांश भाग में तथा नवीं शताब्दी के प्रारंभिक चरण में इस नगरी में युद्ध की रणभेरी रह रहकर बजती रही। अन्तराल देकर पाल प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट एक दूसरे से तलवारों के सहारे मिलते रहे। पिता के हाथ से तलवार छूटती नहीं कि पुत्र उसे थाम कर रणभूमि में उतर पड़ता।

श्री० एच० रायचौधरी, कालिकिंकर दत्त एवं आर० सी० मजूमदार ने तत्कालीन उत्तर भारत के राजनीतिक केन्द्र कन्नौज का वर्णन इस प्रकार किया है—

"पश्चिम एशिया की सैनिक जातियों के लिए जिस प्रकार बेबिलोन था, ट्यूटोनिक बर्बरों के लिए जिस प्रकार रोम था, पूर्वी और दक्षिणी यूरोप के लिए मध्ययुग में जिस प्रकार बाइजेन्टियम था उसी प्रकार आठवीं और नवीं शताब्दियों के नवोदित राजवंशों के लिए 'महोदय' अर्थात् कन्नौज था।[1]

भारत के इस त्रिकोण संघर्ष में भाग लेने वाले नवोदित राजवंशों, पाल, प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट—का परिचय निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायगा।

पाल	प्रतिहार	राष्ट्रकूट
धर्मपाल (७७० ई. से ८१० ई.)	वत्सराज (७८० ई. से ८०५ ई.)	ध्रुव (७७९ ई. से ७९३ ई.)
देवपाल (८१० से ८५० ई.)	नागभट्ट द्वितीय (८०५ ई. से ८३३ ई.)	गोविन्द तृतीय (७९४ ई. से ८१३ ई.)
विग्रहपाल (८५० ई. से ८५४ ई.)	रामभद्र (८३३ ई. से ८३६ ई.)	अमोघवर्ष (८१४ ई. से ८७७ ई.)
नारायणपाल (८५४ ई. से ९०८ ई.)	मिहिरभोज (८३६ ई. से ८८५ ई.)	कृष्ण द्वितीय (८७८ ई. से ९१४ ई.)
राज्यपाल द्वितीय (९०८ ई. से ९२५ ई.)	महेन्द्रपाल (८८५ ई. से ९१० ई.)	इन्द्र तृतीय (९१४ ई. से ९२२ ई.)
गोपाल द्वितीय (९२५ ई. से ९५० ई.)	भोज द्वितीय (९१० ई. से ९१३ ई.)	अमोघवर्ष द्वितीय (९२२ ई. से ९२३ ई.)
विग्रहपाल (९५० ई. से ९७६ ई.)	महीपाल (९१४ ई. से ९४४ ई.)	गोविन्द चतुर्थ (९३० ई. से ९३६ ई.)

१. प्राचीन भारत (भारत का वृहद् इतिहास) भाग-१
हेमचन्द्र राय चौधरी, कालिकिंकर दत्त, आर० सी० मजूमदार—पृ० १३४

आयुधवशीय इन्द्रायुध को कन्नौज के आसन से हटाना और चक्रायुध को उस स्थान पर प्रतिष्ठित करना धर्मपाल के लिये चिर अभिशाप बन गया। ८१५ ई मे गुर्जर प्रतिहार नरेश नागभट्ट एव राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय की सेनाओं द्वारा उसे करारी हार ही न मिली, प्रत्युत लोहा लेते लेते धराशायी होना पड़ा । नाग भट्ट द्वितीय ने कन्नौज पर गुर्जर प्रतिहारो के प्रभुत्व की स्थापना की । प्रतिस्पर्धी राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय से परास्त होने पर भी उसने कन्नौज को अपने हाथो से जाने नही दिया। नागभट्ट के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी रामभद्र अयोग्य शासक सिद्ध हुआ, अत धर्मपाल के उत्तराधिकारी देवपाल ने उसे सहज ही उखाड दिया। देवपाल उत्तरी भारत के बडे भाग का निष्कण्टक स्वामी बन गया। देवपाल की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी विग्रहपाल की शान्तिवादी नीति से प्रतिहार नरेश भोज (रामभद्र का उत्तराधिकारी) को स्वर्णावसर प्राप्त हुआ। उसने देवपाल की गद्दी पर बैठे हुए विग्रहपाल को बुरी तरह पराजित किया। उसने दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय को नर्मदा तट पर विजित कर मालव भूमि पर भी अपना कब्जा कर लिया । इस प्रकार दो प्रतिद्वन्द्वी शक्तियो पर विजय पा जाने के पश्चात् भोज को पजाब, अवध और अन्य प्रदेशो पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में कोई कठिनाई न हुई । भोज ने कश्मीर, सिन्ध, बिहार, बगाल के पाल राज्य और जबलपुर प्रदेश के कलचुरि राज्य को छोडकर सारे उत्तरी भारत को प्रतिहार साम्राज्य मे सम्मिलित कर लिया । यह महान् सम्राट् इस विस्तृत क्षेत्र पर कन्नौज से निष्कण्टक राज्य करता रहा । ८८५ ई० मे उसकी मृत्यु हो गई । वह अपने बेटे और उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल के लिये एक सुसगठित साम्राज्य छोड गया । इसी काल मे राजशेखर कन्नौज आये ।

राजशेखर कालीन राजनीतिक स्थिति

त्रिकोण सघर्ष का अवसान प्रतिहार साम्राज्य की विजय एव महेन्द्रपाल के राज्याभिषेक मे हुआ । इस शासक के काल मे प्रतिहार साम्राज्य अपनी सफलता एव समृद्धि की चरम सीमा पर था । कान्यकुब्ज को हर्षकालीन गरिमा पुन लौट आई । महेन्द्रपाल केवल तलवार का ही धनी न था, अपितु साहित्यकारो का आश्रयदाता भी था। ऊना,[1] दिघवा-दुबोनी[2] और रामगया[3] के भिन्न भिन्न

१. एपिग्राफिया इण्डिका–भाग ९, पृष्ठ ६, टिप्पणी।
२. इण्डियन एण्टिक्वेरी–भाग १४, पृष्ठ ११२ ।
३. आर्कियालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, कनिघम–भाग ३, पृ० १२३ ।

अभिलेखों में उसके लिये महेन्द्रायुध, महेन्द्रपालदेव, महीन्द्रपाल आदि उपाधियों का प्रयोग किया गया है। मगध और उत्तर बंगाल पर विजय प्राप्त कर उसने पिता मिहिरभोज की साम्राज्यसीमा और भी विस्तृत कर दी। महेन्द्रपाल के दो अभिलेख ऊना (मालवा) में प्राप्त हुए हैं। इनमें क्रमशः चालुक्य नरेश बलवर्मन् और उसके पुत्र अवनिवर्मन् द्वितीय द्वारा एक सूर्य मंदिर को दिये गये दो गावों के दान का उल्लेख है। ये दोनों सामन्त इन अभिलेखों में परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेन्द्रायुध अथवा महेन्द्रपाल के सामन्त कहे गये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि (काठियावाड) सौराष्ट्र भी महेन्द्रपाल के अधीन था। पेहवा, दिघवा, दुबौली एवं सियदौनी अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि उसका साम्राज्य पश्चिम में पूर्वी पंजाब, पूर्व में पश्चिमी मगध, उत्तर में नेपाल की तराई तथा दक्षिण में ग्वालियर प्रदेश तक विस्तृत था। राजशेखर के ग्रन्थों में इस दानी, साहित्यसेवी, आश्रयदाता के लिये निर्भयराज, निर्भय नरेन्द्र, रघुकुलतिलक एवं रघुकुल चूडामणि, विरुदों का प्रयोग उपलब्ध होता है। सियदोनी अभिलेख में महेन्द्रपाल की अन्तिम तिथि ९०७ ई० मिलती है। अतः सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि ९१० ई० में महेन्द्रपाल की मृत्यु हो गई होगी।

महेन्द्रपाल की मृत्यु के पश्चात् सम्भवतः उनके दो पुत्रों, भोज द्वितीय और महीपाल प्रथम में युद्ध छिड़ गया। महेन्द्रपाल की अनेक रानियां थी। उनमें से एक के पुत्र का नाम भोज और दूसरी के पुत्र का नाम महीपाल था। युद्ध के प्रारंभ में भोज की विजय हुई। भोज की इस जीत में उसके एक सामन्त चेदि नरेश कोक्कल प्रथम ने बडी सहायता की थी। उधर चन्देल नरेश हर्षदेव ने महीपाल का पक्ष लिया। इस समय सामन्त कोक्कल की मृत्यु हो चुकी थी। अतः महीपाल को पुनः सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया गया। इस युद्ध से छुटकारा पाते ही उसे राष्ट्रकूटों का मुकाबला करना पडा। खम्भात[१] ताम्रपट के अनुसार राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय और महीपाल के युद्ध में महीपाल की पराजय हुई, किन्तु इन्द्र तृतीय के वापस चले जाने के पश्चात् महीपाल ने कन्नौज पर पुनः अधिकार कर लिया तथा वंश की खोई हुई गरिमा पुनः प्राप्त की। अरब यात्री अलमसूदी ने प्रतीहार-राष्ट्रकूट-संघर्ष का उल्लेख किया है। उसने कन्नौज के प्रतिहार राजा को बऊर तथा राष्ट्रकूटों को बल्हर कहा है। उसका कथन है कि बल्हर से रक्षा करने के लिये बऊर ने दक्षिण में एक सेना स्थापित कर रखी थी। अरब यात्री सुलेमान का वर्णन भी उल्लेखनीय है। वह लिखता है कि "जुज्र के पास

१ एपिग्राफिका इण्डिका भाग ६, पृ० ३६ टिप्पणी।

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन चार दिशाओं में चार सेनायें सदा तैयार रहती थी। पश्चिम की सेना विशेष सुसज्जित थी। इसका कारण यह था कि उक्त राज्य की पश्चिमी सीमा अरबों के सुल्तान राज्य से मिली हुई थी। अरब वाले हिन्द पर आक्रमण करने के लिये सदा सुसज्जित रहते थे। दक्षिण की सेना (वलूहारा) राष्ट्रकूट का सामना करने के लिये तत्पर थी, क्योंकि वह अरबों का मित्र और सहायक था। पूर्व और उत्तर की सेनाओं का अधिक काम नहीं था। ये सेनायें इधर उधर भी जाती थीं। कन्नौज की प्रधान सेना घुड़सवारों की थी, तथा सेना में विशेष रूप से मारवाड़ी क्षत्रिय थे।"

९४५ ई० के लगभग महीपाल की मृत्यु हो गई। महीपाल एवं भोज द्वितीय के आन्तरिक कलह में भोज की सहायता देने वाले चेदिराज कोक्कल के १८ अठारह पुत्र थे। कोक्कल की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र शङ्करगण ने पिता का अधिकार प्राप्त किया। उसके उपरान्त उसके बड़े पुत्र बालहर्ष ने अल्पकाल तक शासन किया। बालहर्ष के पश्चात् उसका छोटा भाई युवराज प्रथम कलचुरि सत्ता का स्वामी बना। यह अपने काल का शक्तिशाली शासक था। युवराज ने अपनी पुत्री कन्दुकदेवी का विवाह राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष तृतीय के साथ कर राष्ट्रकूटों से रक्त-सम्बन्ध स्थापित किया। इस दम्पति से कृष्ण तृतीय का जन्म हुआ यह ९४६ ई० के लगभग राष्ट्रकूट सिंहासन पर आसीन था। इसने अपने पिता की नीति का त्याग कर कलचुरि वंश से शत्रुता कर ली, तथा अपने नाना युवराज देव प्रथम पर आक्रमण किया। बिलहरी अभिलेख से पता चलता है कि युवराज ने (कर्नाटों) राष्ट्रकूटों को पराजित किया था। राजशेखर इस नरेश के दरबार में भी रहे थे।

राजशेखर के समय की राजनीतिक स्थिति का यह पर्यवेक्षण हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि राजशेखर के उदय के पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति डाँवा-डोल थी। उत्तर में अरबों का जोर था, उसी प्रकार पाल, प्रतीहार एवं राष्ट्रकूट अपनी शक्ति की प्रतिष्ठा के लिये आन्तरिक शक्ति की नींव खोखली कर रहे थे। लगभग डेढ़ शताब्दी तक यह आन्तरिक संघर्ष विकराल रूप धारण किये रहा, किन्तु संघर्ष की सुखद परिणति गुर्जर प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल की प्रभुता में समाहित हो गई। राजशेखर महेन्द्रपाल के राजगुरु थे। उन्होंने महेन्द्रपाल के शक्तिशाली पिता मिहिरभोज के ऐश्वर्य, महेन्द्रपाल की सार्वभौमता एवं महीपाल के सामयिक पतन की अनुभूति एक साथ की। इस राजनीनितिक उत्थान पतन

ने उनके जीवन पर पर्याप्त प्रभाव डाला जिसकी अभिव्यक्ति अपूर्ण बालभारत एवं बालरामायण के प्रसंगों में हुई है।

राजशेखर युगीन धार्मिक स्थिति : यह युग हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की उन्नति का काल था। सम्प्रदायों में वैष्णव, शैव, शाक्त एवं सूर्य सम्प्रदाय प्रमुख थे।

वैष्णव सम्प्रदाय : इस समय विष्णु की उपासना अनेक नामों—गरुडासनदेव, चक्रस्वामिदेव, त्रैलोक्यमोहन, माधव, वामन, स्वामिदेव आदि—से की जाती थी। समाज में उनके अनेक अवतारों की भलीभाँति प्रतिष्ठा हो चुकी थी। मंदिरों और मूर्तियों की स्थापना पुण्य कर्म समझा जाता था। ग्वालियर अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस काल में अल्लनामक एक व्यक्ति ने विष्णुमंदिर का निर्माण कराया था। पेहोवा अभिलेख तोमरों द्वारा निर्मित एक विष्णु मंदिर का उल्लेख करता है। मंदिरों के लिये दानदाताओं की कमी न थी। बहुसंख्यक विष्णु मूर्तियों का निर्माण इसी युग में हुआ था। जोधपुर अभिलेख में शंख, चक्र, गदा और कमल धारण किये हुए चतुर्मुखी पारमेश्वरी प्रतिमा का उल्लेख है। शेषशायी रूप में भी विष्णु अनेकों मंदिर में प्रतिष्ठित हुए।

शैव सम्प्रदाय : वैष्णव सम्प्रदाय की भाँति शैव सम्प्रदाय भी लोकप्रिय था। शिव भगवान्, महादेव, रुद्र, शंकर, शम्भु, सर्व, पशुपति, योगस्वामी आदि अनेक नामों से प्रख्यात थे। देश के अधिकांश भागों में शिव के मंदिरों और प्रतिमाओं की स्थापना की गई थी। मंदिरों की आर्थिक व्यवस्था दान द्वारा सुकर हो जाती थी। देश में बहुसंख्यक शैवाचार्य और शैव-पाशुपत सन्यासी थे। उनके बहुत से मठ थे।

शैव और वैष्णव मतों का संबन्ध : धार्मिक सहिष्णुता के कारण वैष्णवों और शैवों के पारस्परिक सबन्ध अच्छे थे। शिव मंदिर में प्रायः विष्णु की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित की जाती थी। कभी कभी शैवाचार्य शैव मंदिरों के साथ वैष्णव मंदिरों की देखभाल करते थे। राष्ट्रकूट नरेशों की मुहरों में इन दोनों देवताओं की मूर्तियाँ मिलती है।

इन दो सम्प्रदायों के अतिरिक्त तांत्रिक सम्प्रदाय भी देश में प्रचलित था। उसकी चरमाभिव्यक्ति कौल मत से हो रही थी। कौल सिद्धों की साधना अत्यन्त विकृत तथा भीषण आचारों से भरी हुई थी। यह धीरे धीरे अपने हाथ पैर फैलाती जा रही थी। कौलों ने मांसाहार, सुरापान तथा यौन-सम्पर्क को साधना

के रूप मे स्वीकार कर लिया था । आचरण से पतित होते हुए भी वे राजमहल से समाज तक को सिद्धियों के चमत्कार दिखाकर प्रलोभित करते थे । इस प्रकार की साधना समाज को दूषित करने का गर्हणीय कार्य कर रही थी ।

बौद्ध धर्म : बौद्ध धर्म अपनी अवनत अवस्था मे था । इसके अनुयायी अल्पसख्यक थे, किन्तु उन्हें पूर्णतया धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी । पाल नरेश धर्मपाल एव देवपाल स्वयं बौद्ध थे ।

जैन धर्म · इस समय दक्षिण मे जैन धर्म का प्रचार था। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम, कृष्ण द्वितीय, इन्द्र तृतीय तथा चतुर्थ ने इस धर्म को राजाश्रय दिया था ।

पूजा : हिन्दुओ मे बहुदेवोपासना और मूर्ति-पूजा का प्रचलन था । *मूर्ति पूजा के अनेक विधि-विधान विद्यमान थे । शक्ति की पूजा पार्वती, काली,* दुर्गा, चामुण्डा, भगवती आदि अनेक नामो मे होती थी । सूर्य पूजा को भी पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त थी । प्रतिहार नरेश रामभद्र और विनायकपालदेव आदित्यभक्त कहे गये हैं। विनायक पूजा का भी प्रचार था । विनायक गणेश के नाम से प्रख्यात थे ।

धार्मिक स्थिति के अवलोकन से पता चलता है कि इस युग मे अनेक धार्मिक थे। जिनमे वैष्णव, शैव, (कौल) प्रधान थे। इनके अतिरिक्त बौद्ध और जैन धर्म का प्रचार भी था। देवी देवताओ की साकार भक्ति का महत्व अधिक था । फिर भी इन धर्म साधनाओ मे पारस्परिक विरोध न था । एक ही वश के राजगण भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी होते थे । प्रतिहार वशी नागभट्ट द्वितीय और भोज प्रथम भगवती के उपासक थे तो रामभद्र और विनायक पालदेव आदित्य भक्त । राष्ट्रकूट नरेश जैनावलम्बी थे, किन्तु उनके वश मे उत्पन्न दन्तिदुर्ग ने ब्राह्मणधर्म का अवलम्बन किया था । पाल नरेश बौद्ध धर्म के प्रचारक थे । उन्होंने परम सौगत पदवी धारण की थी किन्तु धर्मपाल द्वारा नरनारायण तथा विनायकपाल द्वारा शिवमदिर के निमित्त दान का उल्लेख मिलता है । सक्षेप मे इस युग मे धार्मिक सहिष्णुता पराकोटि की थी ।

राजशेखर की रचनाओ पर प्रभाव · राजशेखर की रचनायें सामयिक एवं पूर्ववर्ती वातावरण से अछूती न रह सकी । उन पर प्राचीन नाट्य एव शास्त्र परम्परा का प्रचुर मात्रा मे प्रभाव दिखाई देता है ।

रत्नावली एव मालविकाग्निमित्र की छाप पूर्ववर्ती नाट्य के प्रभाव को सूचित करती है।

काव्यमीमासा मे पूर्ववर्ती काव्य परम्परा का अविच्छिन्न प्रभाव लक्षित होता है। राजशेखर ने आचार्य, वामनीय, औद्भट, भरत आदि शब्दो से इसी तथ्य को दिग्दर्शित किया है। तत्कालीन साहित्यिक धारा भी इसमे प्रवाहित है। कवियो की पाठप्रणाली, कवियो की चर्चा आदि के प्रसग सामयिक प्रभाव से परिनिष्ठित हैं। इन कृतियो के पृथक् पृथक् अनुशीलन से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी।

द्वितीय खण्ड

राजशेखर के नाटक

वल्मीकजन्मा स कविः पुराण कवीश्वरः सत्यवतीसुतश्च ।
यस्य प्रणेता तदिहानवद्यं सारस्वतं वर्त्म न कस्य वन्द्यम् ॥
वदनेन्दुषु वामदृशामिन्दीवरपत्रसंघटितम् ।
रसनासु च सुकवीनां निवसति सारस्वतं चक्षुः ।

राजशेखर के नाटक

राजशेखर के दो नाटक उपलब्ध है—बालरामायण और बालभारत । इन नाटको के मूल स्रोत है रामायण एव महाभारत । राजशेखर के पूर्व भी इन दो काव्यकथाओ के आधार पर निर्मित काव्यो तथा नाटको की संस्कृत मे बहुलता थी । राम साहित्य की परम्परा मे महाकाव्य क्षेत्र मे कालिदास तथा नाट्यकला मे भवभूति का नाम विशेष उल्लेखनीय है। राजशेखर ने इस साहित्य परम्परा को उत्तराधिकार मे पाया था । बालरामायण की रचना करते समय वाल्मीकि-रामायण के अतिरिक्त भवभूति का महावीर-चरित राजशेखर के सामने था । उसका पर्याप्त प्रभाव इस नाट्यकृति पर परिलक्षित होता है ।

सस्कृत साहित्य मे महाभारत के कथानक को लेकर अनेक नाटको की रचना हुई । पचरात्र, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, दूतवाक्य, उरुभग, कर्णभार एव वेणीसहार महाभारत पर ही आश्रित है । राजशेखर ने बालभारत के कथानक का चयन इस महाकाव्य से किया । किन्तु इस कृति के केवल दो अंक उपलब्ध है ।

शास्त्रीय दृष्टि से बालरामायण को रूपक के अन्तर्गत नाटक भेद मे रखा जा सकता है । यह नाटक दस अको मे विभक्त है । इसमे सीता-स्वयवर से रामराज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है ।

प्रथम चार अको की घटनाये बालकाण्ड पर आधारित है । पांचवें अंक का मूलाधार अरण्यकाण्ड है । छठे अक मे अयोध्याकाण्ड एव अरण्यकाण्ड के प्रसंग हैं । सातवें अक की घटनाये सुन्दर एव किष्किन्धा काण्ड पर आश्रित है । तथा आठवें और दसवें अको तक युद्धकाण्ड मे सबन्धित घटनायें वर्णित है। इस नाटक मे रामायण के उपाख्यान के अतिरिक्त कई नवीनतायें भी हैं जो कि राजशेखर की मौलिक प्रतिभा का परिचय देती हैं ।

कथानक . दस अंको मे विभाजित बालरामायण का कथासूत्र इस प्रकार है :– प्रथम अक मे शुन शेप रगमच पर आता है । उसके कथन से ज्ञात होता है

किन्तु भृगिरिटि दोनो को युद्ध से रोकते है । राम और रावण का प्रसंग ही प्रमुख होने के कारण इस अंक की अभिधा रामरावणीय है ।

तीसरे अंक मे गृध्रमिथुन के कथोपकथन से दो बातें विदित होती है । पहली यह कि राम और लक्ष्मण ने (यज्ञ मे बाधा उत्पन्न करने के कारण) ताड़का, सुबन्धु और मारीच का वध कर दिया है । दूसरी, सीता के विरह मे विक्षिप्त रावण के विनोदार्थ "सीतास्वयंवर" नामक नाटक का अभिनय होने वाला है । प्रमुख दृश्य मे रावण को "सीतास्वयंवर" के दर्शक के रूप मे दिखाया गया है । राम, लक्ष्मण और विश्वमित्र स्वयंवर कक्ष मे अपना उचित स्थान ग्रहण करते हैं । सीता के अप्रतिम सौंदर्य पर सारे राजगण मुग्ध है । सीता, धात्रेयिका, जनक, शतानन्द और प्रतीहारी रंगमंच पर दिखाई देते है, । प्रतीहारी घोषणा करता है कि शिवधनुष को भंग करने वाला व्यक्ति ही सीता का पाणिग्रहण कर सकेगा । सब नरेशो के द्वारा इस कार्य मे असमर्थता प्रकट कर देने पर राम सहज ही धनुर्भंग करते हैं । परिणामत जनक राम से सीता का पाणिग्रहण कराते है । नाटक देखते हुए रावण अत्यन्त क्षुब्ध हो उठता है । किन्तु शीघ्र ही प्रतीहारी उसे बताता है कि वह नाटक देख रहा है । इसी समय वैतालिक सन्ध्या की सूचना देते है । रावण अपने प्रासाद से लौटता है । लंकेश्वर के विलक्षण आचरण का प्रदर्शन ही इस अंक की प्रमुख घटना होने से, इस अंक का शीर्षक है "विलक्षण लंकेश्वर" ।

चतुर्थ अंक मे उपाध्याय और बटु के संवाद से पता चलता है कि राम के द्वारा धनुर्भंग का समाचार सुनकर उग्रकोपी परशुराम अध्यापन कार्य छोड़कर प्रतिशोध लेने के लिये शीघ्र ही मिथिला की ओर प्रस्थान करने वाले है । प्रमुख दृश्य मे दशरथ, विमान द्वारा मिथिला पहुँचते है किन्तु दौवारिक उन्हे बतलाता है कि समस्त विवाह-विधि हो चुकी है और राम अयोध्या के लिये प्रस्थान करने वाले है । विदाई समारोह मे सीता को गुरुजन कुलवधू धर्म की शिक्षा प्रदान करते हैं । इसी समय घोर गर्जना करते हुए परशुराम विवाहमंडप मे आ खड़े होते है । वे राम पर अत्यन्त क्रुद्ध होते हैं । राम विनयपूर्वक क्षमा याचना करते हैं किन्तु परशुराम किंचित् भी द्रवित नहीं होते । अन्त मे राम और परशुराम युद्ध के लिये तैयार होते हैं । इस अंक का अभिधान है 'भार्गवभंग' ।

पाँचवें अंक मे मायामय और माल्यवान् की चर्चा से विदित होता है कि राम और परशुराम के युद्ध मे राम विजयी हुए हैं । दुर्बुद्धि रावण सीता मे अनुरक्त है, तथा उसका हरण करना चाहता है । इसलिये मन्दोदरी के पिता मायामय

ने रावण के कृत्रिम परितोष के लिये यन्त्र-जानकी का निर्माण किया है । प्रमुख दृश्य में विरही रावण के दर्शन होते हैं । वह सीता के लिये अत्यन्त व्याकुल है । प्रहस्त यन्त्र-जानकी और उसकी सखी सिन्दूरिका को रावण के समक्ष उपस्थित करता है । कतिपय प्रणयोद्गार के पश्चात् रावण सीता के आलिंगन के लिये बढता है, किन्तु छूते ही ज्ञात हो जाता है कि वह यन्त्र-जानकी है । वह प्रहस्त को आदेश देता है कि उसे प्रमोदवन का मार्ग दिखाया जाय । कामसतप्त रावण के लिये 'षड्ऋतु चक्रवाल' की योजना की जाती है किन्तु उसे शान्ति नहीं मिलती है । वह कामदेव से ऐसे प्रहार की प्रार्थना करता है जिससे वह और उसकी प्रिया जानकी मरने के पश्चात् पुन. स्वर्ग में मिल सकें । उसकी कामशांति के लिये गिरिपत्नियाँ अप्सरायें, नदियाँ, लक्ष्मी, वारुणी एवं सरस्वती उसकी विविध सेवायें करती हैं किन्तु उनसे कोई लाभ नहीं होता । वह हाथी, सर्प, हरिण, चन्द्र, वायु, लता आदि पर प्रिया के विभिन्न अवयवों का सौंदर्य हरने का आरोप लगाता है । प्रभजिका उसे वस्तुस्थिति का बोध कराती है । इसी बीच छिन्ननासा शूर्पणखा, सीता का हरण करने के प्रयास मे असफल होकर लौटती है । रावण की क्रोधाग्नि भडक उठती है । सम्पूर्ण अंक में दशानन की उन्मत्तावस्था का वर्णन होने के कारण इस अक का नाम 'उन्मत्त दशानन' है ।

छठे अक के आरंभ मे माल्यवान् के कथन से पता चलता है कि बहुत की दुर्दशा के प्रतिशोध के लिये रावण राम की राजधानी की ओर जा रहा था किंतु उसे रोका गया । उसके दूत ने खबर दी कि वैदेही ने रावण के साथ रहने का निश्चय किया है । इसके पश्चात् मायामय और शूर्पणखा आती है ।

उन दोनो के वार्तालाप से चौदह वर्ष के लिए राम के निर्वासन का रहस्य उद्घाटित होता है । जिस समय दशरथ कैकयी सहित इन्द्र की सहायता के लिये स्वर्ग गये हुए हैं मायामय शूर्पणखा एव उसकी परिचारिका क्रमश दशरथ, कैकयी एव मथरा के छद्म रूप मे अयोध्या पहुँचे । छद्म-कैकयी ने दशरथ से दो वरो की याचना की—राम का चौदह वर्ष के लिये वनवास एव भरत का राज्याभिषेक । वामदेव के रोकने पर भी पितृपरायण राम ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की और वन के लिये प्रस्थान कर दिया । सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ गये । दशरथ और कैकयी के आगमन के भय से नकली कैकयी और दशरथ जनसमूह में मिल गये । प्रमुख दृश्य मे दशरथ और कैकयी जब अयोध्या में प्रवेश करते हैं तो राजधानी को सुनसान और उदास देखकर उन्हें कुशंका उत्पन्न होती है । वामदेव जब रावण के छल प्रसग का वर्णन करते हैं तब दशरथ और कैकयी अत्यन्त

शोकाकुल हो उठते हैं। राम का समस्त परिवार शोक-सन्तप्त दिखाई देता है। इसी समय सुमन्त्र आते हैं। वे राम के वन जीवन, तथा नर्मदा तक के प्रवास का करुण वर्णन करते हैं। तत्पश्चात् जटायु का दूत चित्रशिखण्ड भी आकर सीता के हरण तथा उन्हें छुड़ाने के प्रयास में गृध्रराज जटायु की मृत्यु का दुखद संवाद सुनाता है। यह सुनकर व्यथित हुए दशरथ, गंगा यमुना के संगम में शरीर त्याग करने की इच्छा प्रकट करते हैं। राम-निर्वासन में दशरथ एवं कैकयी को निर्दोष प्रदर्शित करने के कारण इस अंक की संज्ञा है—"निर्दोषदशरथ"।

सातवें अंक का आरम्भ कर्पूरचण्ड और चन्दनचण्ड नामक वैतालिकों द्वारा नेपथ्य में गायी गई प्रभात-गीतावली से होता है। वे राम के पुनीत जीवनक्रम का वर्णन करते हैं। प्रतीहार प्रवेश करके उन्हें शौर्य-गुण के गान करने से मना कर देता है क्योंकि रामचन्द्र ने पिता की मृत्यु से दुखी होकर रावण के वध तक अपने यशोगान पर नियंत्रण लगा दिया है। प्रतीहारी एवं वैतालिकों की चर्चा में राम के विनय करने पर भी समुद्र द्वारा मार्ग न देने की घटना का पता चलता है। अन्तत: राम को क्रुद्ध होकर अग्निबाणों की वर्षा करनी पड़ती है। राम, विभीषण और सुग्रीव मंच पर दिखाई देते हैं। हनुमान् नामक नवीन पात्र का आगमन होता है। हनुमान् राम को यथोचित प्रणाम करता है—समुद्र अपनी पत्नियों सहित आकर राम से क्षमा याचना करता है। वह सेतु बाँधने के लिये राम से आग्रह करता है। सेतु-निर्माण का कार्य प्रारंभ होता है। राम मलयपर्वत पर चढ़कर सेतुनिर्माण के कार्य का अवलोकन करते हैं। एकाएक भीषण गर्जना होती है। रावण द्वारा भेजी गई राक्षस सेना सेतुबन्ध में विघ्न डालने का प्रयास करती है। परिणामस्वरूप वानर और राक्षसों के बीच घमासान युद्ध छिड़ जाता है। राक्षस-सैन्य पराजित होकर भाग जाता है। पुन: बाधा उत्पन्न करने के लिये रावण विमान से सीता का कटा मस्तक फेंकता है। उसे देखकर राम और लक्ष्मण शोकविह्वल हो जाते हैं। किन्तु शीघ्र ही सारिका मायासीता के नकली होने की सूचना देती है। अब राम द्विगुणित उत्साह से युद्ध के लिये आगे बढ़ते हैं। राक्षसदल पुन: घोरगर्जन करता हुआ रणक्षेत्र में उतरता है और राम को भी चेतावनी देता है। दोनों सेनायें युद्ध के लिए सन्नद्ध हैं। इस अंक का नाम है 'असमपराक्रम'।

आठवें अंक के आरम्भ में सुमुख और दुर्मुख इन दो राक्षसों के वार्तालाप से पता चलता है कि रावण ने 'तुलाद्यूत' प्रस्ताव की सम्मति के लिये, शुक और सारण को राम के पास भेजा है। शर्त यह थी कि इस तुलाद्यूत में जिसकी जीत होगी

उसे—सीता और लंका दोनों मिल जायेंगी। सबके निषेध करने पर भी राम अपनी स्वीकृति प्रदान कर देते है। इस कार्य मे राम का प्रतिनिधि अंगद विजयी होता है, किन्तु रावण तुलाद्यूत की शर्त वापिस ले लेता है। त्रिजटा नामक राक्षसी, सीता को युद्ध विषयक समस्त घटनाओं की जानकारी देती रहती है। प्रमुख दृश्य मे रावण सोकर उठता है। वह राम और लक्ष्मण से युद्ध करने के लिये क्रमशः कुम्भकर्ण और मेघनाद को भेजता है। मेघनाद और कुम्भकर्ण मारे जाते हैं। इस अंक मे वीरो के वीरत्व का वर्णन है। अतः अंक का शीर्ष है 'वीरविलास'।

नवें अंक के आरम्भ मे यम पुरुष दिखाई देता है। उसके कथन से पता चलता है कि उसने लंका मे हुई मृत्यु-संख्या की जानकारी के लिये चित्रगुप्त के पास अपने सेवक को भेजा है। मृत्यु की संख्या अत्यधिक होने के कारण चित्रगुप्त काम के भार से आक्रान्त है। तथापि वे मृत्यु-लेखा प्रस्तुत करते है। इन्द्र और दशरथ राम-रावण के द्वन्द्वयुद्ध के अवलोकन के लिये तैयार है। दो चारण युद्ध का वर्णन करते हुए कहते हैं कि युद्ध को राम यथासंभव शांतिपूर्वक निपटाना चाहते हैं किन्तु रावण को यह स्वीकार नहीं है। दोनो योद्धाओं मे पहले तो वचनो का आदान प्रदान होता है, तत्पश्चात् बाणों की वृष्टि। अनेक प्रकार के अस्त्रो के चालन से युद्ध की विभीषिका बढ जाती है। राम द्वारा रावण के मस्तक छिन्न करने का प्रयास सफल होता है, क्योंकि रावण के कटे हुए सिर के स्थान पर दूसरा सिर उत्पन्न हो जाता है। अन्त मे राम विश्वामित्र द्वारा प्रदत्त मायाहर नामक अस्त्र का प्रयोग करते हैं, जिससे वे रावण के दसो सिरो का उच्छेद करने में सफल हो जाते है। देवगण रावण वध मे प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि करते हैं। अतः इस अंक का नाम 'रावण वध' है।

अन्तिम अंक मे राम के जीवन का सुखमय पक्ष वर्णित है अतः अंक का शीर्षक 'राघवानन्द' है। अशोका लंका एवं अलका के कथन से ज्ञात होता है कि सीता की अग्निपरीक्षा की गई जिसमे से वे अक्षत निकल आईं। राम अयोध्या गमन के लिये तत्पर हैं। प्रमुख दृश्य मे राम, लक्ष्मण, सीता, त्रिजटा, सुग्रीव और विभीषण विमान पर चढ़कर अयोध्या के लिये प्रस्थान करते हैं। जिन स्थलो पर युद्ध की महत्वपूर्ण घटनायें घटी थी उन स्थलो का निर्देश करते हुए वे क्रमशः आगे बढते हैं। विमान समुद्र सतह से ऊपर आकाश की ओर पहुँचता है। हिमालय, कैलाश, मानस, मन्दर, मेरु आदि पर्वत को पार करते हुए यान चन्द्रलोक मे पहुँचकर पुनः रोहणगिरि, मलयगिरि, ताम्रपर्णी एवं अगस्त्याश्रम से होता हुआ लोपामुद्रा के पुनीत आश्रम मे रुकता है। तत्पश्चात् द्रविड़, आंध्र, कावेरी, महाराष्ट्र, नर्मदा,

लाट, मालवा, उज्जयिनी, पांचाल, महोदय, प्रयाग, वाराणसी एवं मिथिला को पार करते हुए वे लोग अयोध्या में आते हैं। राम के राज्याभिषेक के सुन्दर चित्रण के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

राजशेखर ने बालरामायण नाटक में रामायण की कथा को आधार माना है किन्तु उन्होंने कतिपय नूतनताओं की उद्भावना की है, जिसमें महाकाव्य नाटक के कलेवर में परिणत किया जाने योग्य हो सके। स्वयं राजशेखर ने बालरामायण की प्रस्तावना में इसका स्पष्ट संकेत किया है यथा—

पारिपार्श्विक —वाल्मीकिना मुनिवरिष्ठेन दृष्टनिबन्धनस्य रामचन्द्रचरितस्य क पुनः स विशेषो यमेष कविदर्शयिष्यति।

सूत्रधार —मारिष! क्वचित्कश्चित्प्रगल्भते नहि सर्वं सर्वो जानाति।

पारिपार्श्विक —भाव! ननु भणामि प्रत्यक्षीकृतसकल सर्गशब्दार्थात् तत्रभवतो महर्षेरनिक्रम्य किमेष चर्मचक्षु प्रेक्षिष्यते।

सूत्रधार —मारीष मा मैवम्

वदनेन्दुपु वामदृशामिन्दीवर पत्रसघटितम्।

रमनासु च सुकवीना निवसति सारस्वत चक्षु॥[1]

जिन प्रसगों में नाटककार ने अपनी मौलिकता प्रकट की या प्रचलित कथा से भिन्नता प्रदर्शित की है, वे है—१–सीतास्वयवर, २–विवाहोपरान्त दशरथ का आगमन, ३–स्वयवर के समय विश्वामित्र की अनुपस्थिति, ४–ताड़का, मारीच एवं सुबाहु का वध, ५–राम-परशुराम संघर्ष, छद्म मस्तकों के प्रसग, ६–यन्त्रजानकी, ७–शूर्पणखा प्रकरण, ८–कैकयी का दोषनिवारण एवं ९–दशरथ मरण।

सीतास्वयंवर वाल्मीकि-रामायण में सीता स्वयवर के प्रसग में कहा गया है कि जब अनेक राजा शिव के धनुष को उठाने में असमर्थ रहे तो उन्होंने मिथिला पर आक्रमण कर दिया[2] किन्तु उस घटना के वर्षों बाद राम ने धनुर्भंग करके सीता का पाणिग्रहण किया।[3]

बालरामायण में सीता-स्वयवर प्रसग दो बार वर्णित है। प्रथम अक में सीता स्वयवर की घोषणा के पश्चात् रावण मिथिला को प्रस्थान करता है किन्तु

१ बालरामायण अंक १ पृष्ठ ६।७
२ वाल्मीकि रामायण १–६६
३. वही–२–११८

धनुष ग्रहण करने के पश्चात् वह धनुष परीक्षा को अस्वीकार कर देता है ।[१] इस नाटक के तृतीय अंक मे पुनः सीता स्वयंवर के आयोजन का वर्णन मिलता है । शिव का धनुष भग करने का अनेक राजाओ ने प्रयास किया किन्तु वे असफल रहे । अन्ततः राम धनुष-भंग करते है । सीता-स्वयवर के गर्भांक में रावण सम्मिलित होता है किन्तु दर्शक के रूप मे ।[२]

विवाह के उपरान्त दशरथ का आगमन वाल्मीकि-रामायण के अनुसार विश्वामित्र जनक के यज्ञ के अवसर पर राम-लक्ष्मण को मिथिला ले जाते हैं । राम धनुष-भग करते है । दशरथ को निमंत्रित किया जाता है । तत्पश्चात् उनके पुत्रो का विवाह होता है ।[३] बालरामायण मे दशरथ को निमंत्रित नही किया जाता वे स्वय रामविवाह का समाचार सुनकर मिथिला पहुँचते है लेकिन तब तक विवाह का कार्य सम्पन्न होकर वरवधू की विदाई का आयोजन हो रहा होता है ।[४]

स्वयवर के समय विश्वामित्र की अनुपस्थिति : रामायण के अनुसार स्वयवर के समय विश्वामित्र स्वय उपस्थित थे[५] जबकि बालरामायण मे विश्वामित्र के स्थान पर उनके प्रतिनिधि शुनःशेप उपस्थित है ।[६]

ताड़का, मारीच एवं सुबाहु का वध (वध की स्थान-भिन्नता) : वाल्मीकि रामायण के अनुसार सिद्धाश्रम मे पहुँचने के पूर्व ही राम ताड़का का वध करते हैं[७] तथा आश्रम मे यज्ञ-रक्षा करते समय वे सुबाहु और मारीच का वध करते हैं । लेकिन बालरामायण मे सिद्धाश्रमवासियो को अपने उत्पातो से त्रस्त करने से राम वहीं उनका वध करते हैं ।[८] उसी प्रकार मिथिला जाने मे विघ्न उत्पन्न करने के कारण वे मारीच सुबाहु का वध करते हैं ।[९]

राम-परशुराम संघर्ष : वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम के पराक्रम तथा उनके द्वारा धनुर्भंग का समाचार सुनकर परशुराम उनसे द्वंद्वयुद्ध करना चाहते

१ बालरामायण अंक १–५०।५१
२. वही अक ३ पृ० ६०।८५
३. वाल्मीकि रामायण १–६६
४. बालरामायण ४४१४२
५. वाल्मीकि रामायण १–३१–५० ।
६. बालरामायण १–२३:२३
७. *वाल्मीकि रामायण १–२६ वही–१–४० ।*
८ वाल्मीकि रामायण ३–६ ।
९. बालरामायण ३।७–८ ।

है। विवाह के पश्चात् अयोध्या की ओर प्रस्थान करते समय वे राम को चुनौती देते हैं, किन्तु ज्यों ही वे विष्णु-चाप चढाते है, परशुराम निष्प्रभ होकर उन्हें विष्णु के अवतार के रूप मे पहचान कर प्रणाम करते है। राम चढे हुए बाण से परशुराम के तपोबल द्वारा संचित पुण्य नष्ट करते है और परशुराम महेन्द्र पर्वत की ओर चले जाते हैं।[1]

बालरामायण मे धनुष-भग का समाचार सुनकर परशुराम मिथिला पहुँचते है। अत्यन्त क्रुद्ध होकर वे राम का वध करने की बार बार धमकी देते हैं। अन्त मे दोनो युद्ध के दृश्य के उद्देश्य से रंगमच से चले जाते हैं।[2]

यन्त्र-जानकी (छद्म-मस्तकों के प्रसंग) रामायण मे रावण प्रहस्त द्वारा सीता के पास राम के वध का समाचार सुनाता है तथा विद्युज्जिह्व के द्वारा सीता को राम का मस्तक तथा धनुष दिखाता है। रावण के चले जाने पर राम का मायावी मस्तक और धनुष दोनो अदृश्य हो जाते हैं।[3] दूसरी घटना माया-सीता के वध से संबन्धित है। इन्द्रजीत लका के पश्चिमी द्वार से निकलकर हनुमान तथा अन्य वानरो के सामने अपने रथ पर बैठी सीता का सिर काट लेता है। राम-सीता-वध का समाचार सुनकर विलाप करने लगते है किन्तु विभीषण राम को विश्वास दिलाता है कि रावण सीता का वध नही कर सकता। अवश्य ही यह कोई माया-सीता होगी।[4]

बालरामायण मे रावण सेतु निर्माण के समय विमान द्वारा राम के शिविर के पास आकाश मे पहुँचता है तथा राम के सम्मुख यन्त्रजानकी का वध करके उसका मस्तक समुद्रतट पर फेंककर लंका लौट जाता है।[5] इस प्रकार ग्रन्थो मे मायाशीर्षों के प्रसग मे अन्तर है।

शूर्पणखा प्रकरण (शूर्पणखा के प्रसंग में समय का अन्तर) · वाल्मीकि-रामायण में शूर्पणखा राम के पास वन मे जाकर यह इच्छा प्रकट करती है कि वह सीता तथा लक्ष्मण का भक्षण करके उनकी पत्नी बनना चाहती है। राम उसको अविवाहित लक्ष्मण के पास भेज देते हैं। राम की अस्वीकृति जानकर शूर्पणखा सीता पर आक्रमण करने के लिये उद्यत होती है, किन्तु राम की आज्ञा से लक्ष्मण

१. वाल्मीकि रामायण १–७४–७५–७६।
२. बालरामायण ४.८१·८३।
३. वाल्मीकि रामायण ६–३१।
४. वही–६–८१।
५. बालरामायण ७–७१–७९।

उसके कान और नाक काट लेते है ।[1] बालरामायण मे शूर्पणखा वनवास के पूर्व ही अयोध्या के राम तथा लक्ष्मण द्वारा तिरस्कृत और विरूपित की जाती है ।[2] वाल्मीकि-रामायण के अनुसार शूर्पणखा विरूपित हो जाने के बाद जन्मस्थान में अपने भाई के पास पहुँचकर विलाप करती है । बालरामायण मे वह रावण के पास जाकर कहती है कि मैने सीता को तुम्हारे योग्य समझकर उसका अपहरण करना चाहा, फलस्वरूप राम-लक्ष्मण ने यह दुर्गति कर दी ।

उक्त प्रसग मे रामायण तथा बालरामायण के काल मे वर्षों का अन्तर है ।

कैकयी का दोष-निवारण : वाल्मीकि ने पहले तो कैकयी की दुष्टता का चित्रण किया है ।[3] फिर कैकयी के दोष-निवारण का भी प्रयत्न किया है । किन्तु बालरामायण ने प्रारम्भ से ही कैकयी को निर्दोष दिखाया है । जब दशरथ कैकयी के साथ इन्द्रलोक मे गए हुए थे तभी दोनो की अनुपस्थिति मे मायामय, शूर्पणखा तथा एक परिचारिका क्रमश. दशरथ, कैकयी तथा मथरा का रूप धारण करके राम निर्वासन की अभिसंधि मे सफल होते हैं ।

दशरथ-मरण : रामायण मे राम-वनगमन के पश्चात् सुमत्र से राम का सदेश सुनकर दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं तदनन्तर शोकाकुल अवस्था मे उनकी मृत्यु हो जाती है ।[4] बालरामायण मे दशरथ सीताहरण के समाचार से अत्यन्त व्याकुल होकर गंगा यमुना के सगम मे डूब कर प्राण त्याग देते है ।[5]

नाटक मे इन बडे परिवर्तनो के अतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे परिवर्तनो अथवा नावीन्य का विन्यास भी लक्षित होता है जैसे—

१—आठवे अक मे नरान्तक और अगद का तुलाद्यूत प्रसग तथा उसमे विजयी व्यक्ति को सीता तथा लका का स्वामी होने की कल्पना नवीन है ।

२—रामायण मे कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् नरान्तक का वध वर्णित है ।[6] नाटक मे यह मृत्यु कुम्भकर्ण-वध के पूर्व होती है ।[7] नाटक में कुम्भकर्ण और

१. बालरामायण ७–७१–७९ ।
२. बालरामायण ४–७८ ७९ ।
३. वाल्मीकि रामायण २–४५ ।
४ वाल्मीकि रामायण २–५९:६० ।
५ बालरामायण ६–६२ ।
६. वाल्मीकि रामायण ६-६९
७. बालरामायण ८-८१-८२

मेघनाद राम और लक्ष्मण के साथ प्राय. एक ही समय में युद्ध करते है।[1] जबकि महाकाव्य में इन दोनो के युद्ध के बीच अनेक दानवो के युद्ध का वर्णन है।[2] सेतुबन्ध के समय में सिंहनाद राम के पास जाकर उनका युद्ध के लिए आह्वान करता है।[3] रामायण में इसका उल्लेख नही है। रामायण मे रावण की मृत्यु ब्रह्मास्त्र द्वारा वर्णित है।[4] बालरामायण मे रावण के नव सिरो का उच्छेद मायाहर द्वारा तथा दसवें का उच्छेद ब्रह्मास्त्र द्वारा दिखाया गया है।[5] रामायण के अनुसार राम वन गमन के समय भरत नन्दिग्राम मे रहे[6] जबकि नाटक के अनुसार वे अयोध्या मे ही रहे। राम के साथ चलने का उन्होंने आग्रह भी किया था।[7]

परिवर्तन का उद्देश्य : राजशेखर ने कई प्रसगो मे अपनी मौलिकता सकारण प्रदर्शित की है। यथा—सीता-स्वयम्वर प्रसग में रावण की विद्यमानता इस तथ्य का उद्घाटन करती है कि सीता-हरण का मूल कारण केवल राम के प्रति रावण की विद्वेष-भावना ही नही है अपितु उसके मन में सीता के प्रति अनुराग है। इससे रावण के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। यही घटना बालरामायण का मुख्य वर्ण्य विषय है। नाटककार का लक्ष्य रामविवाह का वर्णन नही है। राम-विवाह मे वे धनुर्भंग प्रसग को मुख्य स्थान देते है। अत इस समय दशरथ के वहाँ होने या न होने का कोई अर्थ नही है। इसलिए उन्होने विवाह के समय दशरथ की अनुपस्थिति बतलायी है। यही भावना विश्वामित्र की उपस्थिति के विषय मे भी उचित प्रतीत होती है।

राजशेखर ने ताड़का, मारीच एव सुबाहु-वध के प्रसगो मे रामायण की कथा का अनुसरण न करके जो काल-भेद दिखाया है वह इसलिए कि अभिनेयता की दृष्टि से इन प्रसगो का महत्व गौण था। हाँ, इस दिशा में नाटककार से अवश्य ही थोडा प्रमाद हो गया है।

राम के देवत्व की अपेक्षा उनके श्रेष्ठ मनुष्यत्व की प्रतीति के लिए नाटककार ने परशुराम-राम के सघर्ष का आयोजन किया और एक को विजयी घोषित किया। यन्त्र-जानकी का आयोजन नाटकीय आकर्षण की दृष्टि से किया गया प्रतीत होता है।

१. बालरामायण ८-२०
२. वाल्मीकि रामायण ६-६०-६८-८८-९२
३. बालरामायण ७-४०
४ वाल्मीकि रामायण ६-१०२-४-६-८
५ बालरामायण ९-४९-५०-५४-५५
६. वाल्मीकि रामायण २-७१
७. वही—बालरामायण ६-३३-३४

राजशेखर ने नाटक के आरम्भ में ही रामायणीय कथा मे विशिष्टता प्रदर्शित करने का सकल्प किया। उस संकल्प की पूर्णता इन परिवर्तित दृश्यो मे दृष्टिगत होती है।

पूर्ववर्ती साहित्यकारो का प्रभाव : यह नितान्त सत्य है कि साहित्यकार अपनी रचना मे मौलिकता की सृष्टि करता है तथापि पूर्ववर्ती साहित्य एवं सम-कालीन वातवारण के प्रभाव से वह अछूता नहीं रह सकता। नाटककार दृश्य काव्य का सृजन करता है। उसका काव्य दर्शको की विवेकशीलता से ही मडित या खण्डित होता है। कतिपय साहित्यकार परीक्षको (दर्शको) के समक्ष स्वय ही वस्तुस्थिति का उद्‌बोधन कर देते हैं। राजशेखर का भी इसी तरह का प्रयास निम्न पक्तियो मे प्रतिफलित हो रहा है।

ब्रह्मण्य. शिवमस्तु वस्तु वितत किञ्चिद् वय ब्रूमहे,
हे सन्त शृणुतावधत्त विधृतो युष्मासु सेवाञ्जलि ।
सत्य कि विनयोक्तिभिर्मम गिरा यद्यस्ति सूक्तामृत
मायन्ति स्वयमेव तत्सुमनसो याच्या पर दैन्यभू ।[1]

उनकी "बभूव वाल्मीकभव· पुरा कवि स्थित. पुनर्यो भवभूति-रेखया"— पक्तियाँ पूर्ववर्ती साहित्यकारो के प्रभावातिशय की द्योतक है। इन दो साहित्यकारो के अतिरिक्त अपनी प्रतिभा से राजशेखर को प्रभावित करने वालो मे कवि कुल गुरु कालिदास विशेष स्मरणीय हैं। भवभूति की रामकाव्य से सबन्धित कृति उत्तर-रामचरित है। इसमे राम के जीवन का उत्तरार्द्ध वर्णित है। यद्यपि बालरामायण मे राम के जीवन का पूर्व पक्ष चित्रित है, तथापि जहाँ कही भी राजशेखर को उत्कृष्ट भावाभिव्यक्ति का अवसर मिला उन्होने उसे शीघ्र ही ग्रहण कर लिया। ऐसे साम्यस्थल अनेक हैं। उदाहरणार्थ उत्तररामचरित मे राम के पुत्र लव की राम के प्रति भर्त्सना-पूर्ण उक्ति—

१— वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते ।
सुन्दरस्त्रीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महान्तो हि ते ॥
यानि त्रीण्यकुतोमुखान्यपि पदान्यासन् खरायोधने ।
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जन· ।[2]

और बालरामायण में रावण के पुत्र सिंहनाद की राम के प्रति व्यङ्ग्योक्ति—

१. बालरामायण १-१०
२. उत्तररामचरित ५.३५

स्त्रीमात्र ननु ताडका भृगुभवो रामश्च विप्र. शुचि
मारीचो मृग एष भीतिभवनं वाली पुनर्वानर ।
मा काकुत्स्थ । विकत्थसे कथय किं वीरो जित कस्त्वया
दोर्दर्पस्तु तथापि ते यदि तत. कोदण्डमारोपय ।[1]

इन दोनों में उल्लेखनीय भाव-सादृश्य है।

राजशेखर राम के विषय में कहते हैं—

त्वया तु क्षीरकण्ठेन वनवासो निषेव्यते ।[2]

भवभूति ने भी इसी प्रकार के उद्गार प्रकट किये थे—

धृत बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यक-व्रतम् ।[3]

बालरामायण में रावण के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग सुनकर सिंहनाद करता है :

रे रे क्षत्रिय तातमधिक्षिपसि, तदेष शितमुखै शिलीमुखैरवकीर्यसे[4]
उत्तररामचरित में राम की निन्दा सुनकर चन्द्रकेतु क्रोधसतप्त होकर कहता है
मा तातापवादिन् । भिन्नमर्याद । अति हि नाम प्रगल्भसे ।[5]

भवभूति सत्सगति की महिमा का गान करते है—

सता सद्भि सङ्ग कथमपि हि पुण्येन भवति ।[6]

इसी भाव की अभिव्यक्ति राजशेखर ने निम्न शब्दों मे की है—

समप्रेमरस समरूपयौवन समविलासविशिष्टम् ।
समसुखदु ख च जन समपुण्यैर्जनो लभते ।[7]

ऋषियो के प्रति भवभूति की उक्ति—

नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि[8]

राजशेखर के वचनों को प्रभावित करती है। वे कहते है

१. बालरामायण ७.८८
२ उत्तररामचरित १-२२
३. वही–१-२५
४. बालरामायण ७ ८० ८१
५ उत्तररामचरित ६ ३४-३५
६. उत्तररामचरित २-१
७. बालरामायण २-१२
८. उत्तररामचरित. १-२५

यद्वाचंयमवृत्तय. किमपर नीवारमुष्टिम्पचाः ।[१]

राम के शोक से पत्थर भी आँसू बहाते हैं—

भवभूति—अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।[२]

राजशेखर-ग्रावग्रन्थीनां परं यदि न दलति हृदयम् ।[३]

भवभूति के इसी भाव का ग्रहण राजशेखर की उपरि पंक्तियो मे दिखायी देता है—

राजशेखर ने भवभूति के समान कालिदास के ग्रन्थो से भी भाव ग्रहण किया है। इस दृष्टि से रघुवश, अभिज्ञानशाकुन्तल, एव विक्रमोवशीय उल्लेखनीय है। सीता-स्वयंवर की कल्पना का आधार रघुवश-वर्णित इन्दुमती स्वयंवर है। विरही रावण के उन्मत्त प्रलाप क्षण भर के लिए विक्रमोर्वशीय के पुरुरवा एव मालती-माधव के माधव का स्मरण दिलाते हैं जो उर्वशी एव मालती के विरह में पशु पक्षियों से प्रिया का पता पूछने लगते है।

सीता की विदाई के प्रसग मे जनक उसे गार्हस्थ्य धर्म का उपदेश देते है। शकुन्तला को बिदा करते समय यह कार्य कण्व मुनि ने किया था। दोनो के उपदेशो में बहुत कुछ समानता दृष्टिगोचर होती है।

कालिदास— शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखी-वृत्ति सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोपणतया मा स्म प्रतीप गम ।
भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येव गृहिणीपदं युवतयो वामा. कुलस्याधय. ।।[४]

राजशेखर— अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पितदृष्टि रासनविधिस्तस्योपचर्या स्वयम् ।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यैं पुत्रि । निवेदिता कुलवधूसिद्धान्तधर्मा अमी ।।

निर्व्याजा दयिते, ननान्दृषु नता, श्वश्रूषु भक्ता भव ।
स्निग्धा बन्धुषु वत्सला परिजने स्मेरा सपत्नीष्वपि ।।
पत्युर्मित्रजने सनर्मवचना, खिन्ना च तद्द्वेषिषु
स्त्रीणा संवनन नतभ्रु । तदिदं श्रेष्ठौषध भर्तृषु ।।[४]

१. बालरामायण १०-९२
२. उत्तररामचरित १-२८
६. अभिज्ञान शाकुन्तल ४.१८
४. बालरामायण ४:४३-४४

यों इन दोनों का ही मूलस्रोत वात्स्यायन का काम सूत्र है। राजशेखर के बालरामा-
यण पर महावीरचरित का भी प्रभाव लक्षित होता है। दोनों के कथानक में पर्याप्त साम्य है। भवभूति ने सीता स्वयंवर से राज्याभिषेक तक की घटनाओं को नाट्य-रूप में स्वीकृत किया है। राजशेखर ने इन्हीं प्रसंगों को अपने नाटक में मान्यता दी है। इस नाटक में कथानक के साम्य के अतिरिक्त भाव-साम्य एवं शब्द-साम्य के अनेकों उदाहरण मिलते है, जिनका सकलन एक लघुपुस्तिका का रूप ग्रहण कर सकता है। नीचे निदर्शनमात्र प्रस्तुत किया जा रहा है

बालरामायणम्		महावीरचरितम्	
१–वीराद्भुतप्रायरसे प्रधाने	१-२	१–वीराद्भुतप्रियतया	१-६
२–बालरामायणम् नाटयितव्यम्	१-५।६	२–महावीरचरितं प्रयोक्तव्यम्	१–३।४
३–उक्त तेन महामन्त्रिपुत्रेण	१-८।८३	३–उक्त च तेन श्रोत्रियपुत्रेण	१-६।७
४–तदामुष्यायणस्य	१-१३।१४	४–तदामुष्यायणस्य	१–४।५
५–अथास्य शिष्य किल याज्ञवल्क्य स्तस्यापि राजा जनक स योगी	१-२१	५–याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायण जगौ।	१-१४
६–अनमात्यायतमिद्धेधिङ मन्त्रित्वम्।	१-२४।२५	६–साचिव्यनाम महते सन्तापाय	६-२।३
७–स्वेच्छया कुर्वन्स्वामी यत्किचन यतस्तत। तत्तत् प्रतिचिकीर्षन्तो दुःख जीवन्ति मन्त्रिण।	१।२५	७–यत्किचित्दुर्मदा स्वैरमाद्रियन्ते निरर्गलम् तत्र तत्र प्रतिकारश्चिन्त्यो साधु विधावपि।	६।३
८–यस्य भगवतस्त्रैराङ्कव शौन शेप रम्भास्तम्भन	१।१०।११	८–मैत्रावारुणकस्य, त्रिशङ्कु याजिन शालियब्राह्मणस्य—	१-२५।२६
९–निषेद्धा विन्ध्यस्य वैखानस वृषा	१-२८	९–तदस्मिन्— —वताम् तथा—मय विषय	१-११ ७-१४
१०–स्वनुपुन गवत्र सर्व गुणा	१।३६	१०–धम्मो न वसन्त्येकत्र सर्वे गुणा	१।३३
११–स्फूर्जद्व्याहत	११४१	११–स्फूर्जद्ब्बसहस्त्र	१-५३
१२–कैलासमुद्धनवन तथा—कैलासोद्धारधीरम् एक कैलासमद्रि करतलमकरोत्	११४४ ११४७ २।१५	१२–कैलासोद्धारसाद	२-१६
१३–प्रसमद्दोर्दण्डचण्डाञ्चन	११४६	१३–दोर्दण्डाञ्चितम्	११५४
१४–पृथ्वि स्थिरा भव	११४८	१४–यावत्फणीन्द्रशिरसि	७।२६
१५–वहति भुवनश्रेणीशेष फणाफलक-स्थिता	७-४०	१५–यावत्फणीन्द्रशिरसि	७।२६

बालरामायणम्	महावीरचरितम
१६–माहेश्वर १-५१।५२	१६–माहेश्वर १।९।१०
१७–तेनाम्मुत्सहते ममैष युगपच्चापाय शापाय च १।५२	१७–प्राक्संस्कारवशेन चापमितरः पाणिर्ममान्विष्यति ३।४३
१८–हस्तालम्बितमक्षसूत्रलयम् १।५३	१८–पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयम १।१८
१९–ब्रह्मकतानहृदया १।५६	१९–ब्रह्मैकतान मनसो ३।११
२०–जनकविरम कोपात् १।५७	२०–विरम नरपते कथम् ३।३०
(२)	
१–इत्यपरमप्यपरिमेयं चित्र चरित्रजात माचक्षते २-३।४	१–इत्यपरिमेयमाश्चर्यजातमाश्चर्य –नविद ग्राचक्षते १-१०।११
२–त्रिःसप्तावधि वाधिता २।१३ एकविंशतिमिद वारान्— एप त्रि· सप्तकृत्व· ४।३९	२–त्रि.सप्तवारानविकल २-१७ त्रि सप्तावधि— ३।१३ एकविंशत्यवधि २।४८
३–चिच्छिदे क्रौञ्चमन्यो २।१५	३–क्रौञ्चस्य मैक्षत २।१७
४–तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशिकथा २।१५ यदि चलाश्चले लोचने किमुत्पल कदम्बकम् ६।९	४–मुख यदि किमिन्दुना। सा दृष्टिर्यदि हारितं कुवलयैः २।१७
५–पौलस्त्य प्रणयेन याचत इति २।२०	५–पौलस्त्यो विनयेन याचत इति १।५९
६–काश्यपाय ऋतुविधिगुरवे दक्षिणीकृत्य पृथ्वी— २।२३ दत्वा पृथ्वी जलधिरशनामर्थिने ब्राह्मणाय ४।४१ भूतधात्र्या ऋतुषु गुणवते काश्यपाय प्रदाता ४।३९	६–काश्यपाय मुनये दत्वाश्वमेधे महीम् २।१९
७–कन्दर्पकण्डूलभुजदण्डमण्डलम् २।२४।२५	७–दर्पकण्डूलदोष्ण २।२७
८–कार्तिकेयो विजेय	८–कार्तिकेयोवजेयः २।१९
९–सक्रन्दननन्दन २।४८	९–सक्रन्दननन्दन ५।३९
१०–लोकोत्तर चरितमर्पयति २।५१	१०–लोकोत्तरकर्माणि ५।२३ लोकोत्तराणि रामस्य कर्माणि ५।२३
११–त्वा–स्थित. २।४८	११–कैलासे तुलिते ५।३७
१२–जे कैलासे कलिन्दे— ७।११ मानुषेण रावणपराजय २-३८।३९	१२–भृगुप्रसवात्पराजय ३।३७।३८
१३–विद्युत्पुञ्जरित दृष्टि १।४४।४५	१३–विद्युत्पुञ्जपिञ्जर—नयने २।५८।५९
१४–कालानिरुद्रार्तिर्थि· २।६२	१४–कालरुद्रानलत्व २।२५
१५–पुत्रभाण्डम् २।६३	१५–पुत्रभाण्डम् २।४४, २।२, २।६०-६१

बालरामायणम्	महावीरचरितम्
(३)	
१–भगवान् विश्वस्य मित्र विश्वामित्र· ३।२।३	१–विश्वामित्रात्प्राप्य विश्वम्य मित्रात् १।५०
२–स्त्रीवध विचिकित्सामुद्रः ३।३।४ स्त्रीति किं विचिकित्ससे	२–प्रमाथाय स्त्रैणेन विचिकित्सति ३।३७
३–साक लेभे जृम्भकास्त्रै समन्त्रे ३।७	३–सरहस्य जृम्भक प्रयोगसहार १।४७
४–नमयति धनुरैश यस्तदारोपणेन ३।२७	४–आरोपणेन पणप्रतिकार्यमार्य त्रैयम्बकस्य धनुषे १।२७
५–ओङ्कार· ३।७९	५–एप तावदोङ्कार १।४०।४१
(४)	
१–दोर्दण्डाद्वितयाञ्चितोन्नतधनु ४।२०	१–दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनु १।५४
२–इष्टापूर्तपवित्रमाश्रमपद ४।३४	२–इष्टापूर्त विधे ४।३४
३–महावीरचरितावलोकनपरायते चिते नकिंचित्प्रतिभाति ४।४१।४२	३–वस्तुकिंचित्प्रतिभाति ५।३४।३५ महावीरे सोत्कण्ठमिव मानसम् ५।३६
४–मज्जातिथेयो भव। भार्गवोऽ तिथि भवति– ४।५१।५२	४–त्व न पूज्यतमोऽतिथिर्यदि भवे. मज्जातिथेया वय २।५०
५–द्वाविंशोऽपि भमैप ४।५३	५–पुनर्द्वाविंशोऽपि ३।४१
६–लूनक्षत्रियकण्ठमण्डलगलत्की ४।५८ लालकुल्याभृतः	६–कृत्त क्षत्रियकण्ठकदरमरत्की लालनिर्वापित ३।४८
७–भो विदेहेश्वरशुद्धान्त चारिण ४।५७	७–भो विदेहनगरीगता राजकुल चारिण २।१५।१६
८–विधायधरणीवन्धमराममपलक्षमणम् ४।८३	८–अरामा जानि सीरध्वमदशरथी कृत्यजगतीम् ३।२४
९–किं वीरस्य विकत्थनया ४।८४	९–तत्र का विकत्थना २।४८।४९
(५)	
१–माल्यवान् उन्मुच्यवाचयति ५।३।४ 'स्वस्ति'	१–माल्यवान् गृहीत्वा वाचयति 'स्वस्ति' २।९।१०
२–भुट्यद्दोर्दण्ड ५।७९	२–उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ३।३२ तुण्डप्रोतशिर ५।१९
(६)	
१–वृद्धो दशरथ मोऽयमुपास्ते गृहमेधिताम्। त्वया तु क्षीर कण्ठेन वनवासो निषेव्यते ६।३०	१–पुत्रसक्रान्त लक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम् त्वया तत्क्षीरकण्ठेन प्राप्तमारण्यक व्रतम् ४।५१
२–एषोऽहम् ६।५६	२–एषोऽस्मि ५।१५
(७)	
१–ज्यावद्ध–कार्तवीर्यार्जुन ७।५	१–हैहयमति. ४।१९
२–लङ्घितो गोष्पदवन् समुद्रः ७।१८।१९	२–गोष्पदवद्विलङ्घ्य ६।१७

बालरामायणम्		महावीरचरितम्	
३–धूम्रो विजृम्भण०	७।२२	३–ज्याजिह्वया	३।२९
४–वारां मध्याद्	७।२४	४–ततश्च—उपविष्ट	६।१२।१३
(८)			
१–लंका दुर्गो जलधिपरिखा	८।५	१–दुर्गो य चित्रकूट	६।७
२–सलिले शिलाभिरुन्तीर्यतेऽलाबूभिर्वा निमज्जयते।	८।३१।३२	२–अम्बुनि मज्जन्त्यलाबूनि ग्रावाण प्लवन्ते	१।३९।४०
(९)			
१–तदित्यमभिदधानमपवित्रं वक्त्रम्	९।४६।४७	१–यत्किंश्चद्वादिनो मुख सत्कुर्यात	६।२१।२२
२–यत्पौलस्त्यगृहोषिता	१०।८	२–दशकन्धरगृहनिवास	७।३।४
३–पतिव्रतामय ज्योति.	१०।८।९	३–पतिव्रतामयज्योति पतिव्रतामय ज्योति	७।३।४ ६-६
४–निसर्गतं पवित्रस्य किमन्यत्पावनतव	४।२७	४–शुद्धाया क इवात्र शोधनविधिः	१०।१३
५–युद्धं कचाकचि तलातलि च प्रवृत्तम्	१०।१९	५–मुष्टामुष्टि कचाकचि	६।३१
६–एतत्सुन्दरि देवदारुविपिनं	१०।३१	६–एष ते सुरसिन्धु.	७।२७
७–एह्येहि वत्स रघुनन्दन रामभद्र चुम्बामि तेऽग्रवदनम्	१०।६५	७–एह्येहि वत्स रघुनन्दन रामचन्द्र चुम्बामि तेऽग्रवदनम्	१।६५
८–ओश्वयावतारिणि	१०।७८	८–यत्रामोश्वयावतारिणी	२।४५
९–भरत-शत्रुघ्नाभ्यातिष्ठति	१०।९५।९६	९–भ्रान्तिप्रकृतिर्गर्हितोऽस्येति भरत।	७।३०

अभिज्ञान शाकुन्तल, उत्तररामचरित एवं महावीरचरित आदि दृश्य काव्यों से अनेक भाव ग्रहण करने पर भी *बालरामायण* में कवि की मौलिक प्रतिभा अप्रतिहत ही प्रतीत होती है। बालरामायण के पात्र आदर्श होते हुए भी मानवीय धरातल पर चलते हैं। वे जन मानस के समीप प्रतीत होते है। इसीलिए ६७ पात्रों से युक्त यह नाटक पात्रों का जगल प्रतीत नहीं होता।

बालरामायण का कथावस्तु

सविधान-शिल्प शिल्प की दृष्टि से इस नाटक में एक न्यूनता दिखाई देती है और वह है—नाटक का अत्यधिक विस्तार। इसमें वस्तु-निर्माण में शैथिल्य आ गया है। अनावश्यक विस्तार के कारण नाटक में गति का अभाव लक्षित होता है। प्रायः प्रत्येक अंक में ऐसे गति-प्रवाह-हीन स्थल पाये जाते

हैं। किन्तु दूसरा दृष्टिकोण इस न्यूनता को गुण की संज्ञा भी प्रदान कर सकता है। नाटक श्रव्यकाव्य भी है। उसमें प्रगीतात्मक सौन्दर्य की प्रतिष्ठा होनी ही चाहिए। इससे रंगमंच की अपेक्षित सजावट की कमी की पूर्ति तो होती ही है साहित्यकार को साहित्यिक प्रतिभा के प्रदर्शन का सुन्दर अवसर भी मिलता है। अतः हमारे काव्य नायक ने षड्ऋतु-चक्रवाल, सायंकाल, मध्याह्न, सूर्योदय एवं सूर्यास्त का सरस वर्णन साहित्यिक सृजनात्मकता से अनुप्रेरित होकर किया है।

राजशेखर की वस्तुविन्यास-कला उनकी निजी विशेषता से युक्त है। असंबद्ध प्रतीत होने वाली घटनायें आधिकारिक कथा की परिपोषक हैं। प्रथम अंक में शुनःशेप एवं तापस का संवाद, द्वितीय अंक में भृगिरिटि एवं नारद का कथोपकथन, तृतीय अंक में गृध्रमिथुन-वार्तालाप, चतुर्थ में गुरु-शिष्य (भवभूति) वार्ता, नवम में यम का मृत्युलेखा-वर्णन, एवं दशम में अलका एवं लंका की मर्मवेदनाभिव्यक्ति मूलकथा की परिपोषक प्रमाणित होती है।

कथा नाटक में दो प्रकार की कथा होती है। आधिकारिक एवं प्रासंगिक। बालरामायण में आधिकारिक कथा रावणवध से संबद्ध है। प्रासंगिक अथवा गौण रूप में तीन छोटी बड़ी सहायक उपकथायें निबद्ध हुई हैं। इनमें शुनःशेप तापस-संवाद गृध्रमिथुन एवं गुरु-शिष्य संवाद तथा सीतास्वयंवर संवाद को प्रकरी कहा जा सकता है। ये कथायें आधिकारिक कथावस्तु के विकास में सहायक हुई हैं। अतः जिस अंक में ये प्रदर्शित की गयी हैं उसी अंक के पश्चात् ये सदा के लिए तिरोहित कर दी गयी हैं। सुग्रीव और विभीषण का कथा-प्रसंग "पताका" कहा जा सकता है। क्योंकि कथायें प्रधान वृत्त के साथ दूर तक (सेतुबन्ध से रामराज्याभिषेक तक) समानान्तररूप में चल रही हैं।

प्रासंगिक वृत्तों से शुनःशेप और तापस संवाद को नाटक से हटा दिया जाय तो दर्शकों को रावण की तीव्र उत्कंठा और सीतास्वयंवर में सम्मिलित होने की उसकी अभिलाषा का पता नहीं चल सकता। यह कथा खलनायक की पृष्ठभूमि को ठीक तरह से समझने के लिए सहायक है। दूसरे अंक में भृगिरिटि और नारद का वार्तालाप राम रावण के भावी युद्ध के कारण पर प्रकाश डालता है अन्यथा दोनों के युद्ध का रहस्य प्रकट नहीं हो पाता। गृध्रमिथुन, सुवेग एवं चित्रशिखण्ड के वृत्त प्रासंगिक होते हुए भी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनमें खलनायक के मानसिक संघर्ष की पृष्ठभूमि का पता चलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस नाटक की सम्पूर्ण प्रासंगिक कथा में आधिकारिक वस्तु का निर्दोष गुंफन है।

इस नाटक के प्रथम अंक में जनकमंदिर में तिरस्कृत रावण संकल्प करता है—

ससरम्भम्—शृणुत भो.! शृणुत! निशाचरपते प्रतिज्ञाम्
कुर्वन् मौर्वीनिवेश-क्रम-नमदटनति-स्पष्ट-टङ्कारटङ्क,
शम्भो. कोदण्डदण्डं बधिरितभुवन मूर्भुव स्वस्त्रयोऽपि।
यस्तामेना वरीता रमयति तदसृक् चन्द्रहासो ममासि
कण्ठास्थि-ग्रन्थिशुक्लीकरण-मवरणत्कार-वाचालधार.॥

राक्षसराज की इस प्रतिज्ञा में नाटक का बीज वर्तमान है। "यस्तामेना वरीता रमयति तदसृक् चन्द्रहासो ममासि."

जो सीता का वरण करेगा उसे चन्द्रहास (तलवार) का भी वरण करना होगा। इस कथन में ही नाटक के भावी संघर्ष एव विपत्ति के संकेत गर्भित हैं।

द्वितीय अंक मे रावण-परशुराम का वाक्युद्ध मूल कथा-प्रवाह को कहीं विच्छिन्न न करदे इसलिए सीतास्वयवर नामक गर्भांक का आयोजन और उसमे रावण की क्रोधपूर्ण उक्ति कहलाई गई है। इस दृश्य प्रधान कथा का पूर्ण विच्छेद नही होने पाता और कथानक पुन सुगति धारण कर लेता है। इसे नाटकीय भाषा मे बिन्दु कहा जा सकता है। नाटक का मुख्य लक्ष्य खलनायक की मृत्यु द्वारा स्थायी शान्ति है। सीताहरण के कारण नायक और प्रतिनायक का मानसिक संघर्ष बढ जाता है। इस संघर्ष की परिणति राम रावण युद्ध में होती है। संघर्ष का अन्त रावण वध तथा राम-राज्याभिषेक के द्वारा होता है। यही उसका 'कार्य' समझना चाहिए।

इस नाटक के सातवें अंक मे वैतालिक राम का यशोगान करते हैं। उसी समय प्रतीहार आकर उन्हे ऐसा करने से वर्जित करता हुआ कहता है—"कथम् ननु रामदेवेन निषद्धमात्मोपवर्णनम् अ दशरथस्वर्गारोहणपुने गदशकण्ठवधम्" इस कथन से कार्य की "प्रारम्भ" अवस्था होती है। इसी संदर्भ मे "यत्न" की अवस्था भी प्रारम्भ हो जाता है। फल-प्राप्ति के लिए राम-रावण युद्ध का आयोजन तथा लंका में पहुँचने के लिए सेतुबन्ध का वर्णन कथा को इसी दिशा की ओर प्रवृत्त करता है क्योंकि यत्न में फलप्राप्ति के लिए सत्वर उद्योग लक्षित होता है। यत्न की अवस्था भी क्रमश आठवें अंक तक चलती है। "प्राप्त्याशा" का प्रारम्भ भी इसी बीच होता है। सेतुनिर्माण के समय सीता के कटे मस्तक को देखकर राम लवा-कुशकाशी से भोराकुल हो जाते हैं। अपने प्रयासों पर खिन्न होते हुए उनका यह कहना है कि" धिक् निष्फलं हनुमत प्लवन तदब्धौ, धिक् निष्फल स ममायनः सेतुबन्ध." प्राप्त्याशा की चरम सीमा है।

इसी अंक में कटे हुए मस्तक के कृत्रिम होने का पता चलने पर राम-पक्ष में जो उल्लास उत्पन्न होता है—वह "नियताप्ति" का प्रारम्भ है। द्विगुणित उत्साह से सेना शत्रुपक्ष का विनाश करती हुई आगे बढ़ती है जहाँ राम दशकण्ठ का मस्तक काट देते हैं वहाँ 'नियताप्ति' 'फलागम' के निकट आ जाती है। सीता की प्राप्ति, राम-निर्वासन अवधि की समाप्ति तथा राज्याभिषेक के साथ 'फलागम' हो जाता है।

रावण की सीता के प्रति आमरण शत्रुत्व की भावना तथा राम के द्वारा रावण की मृत्यु तक अपने यशोगान पर पाबन्दी "मुख" सन्धि को सूचित करती है। रावण पक्ष में सीताहरण एवं रामपक्ष में सीता-प्राप्ति के यत्न के स्वरूप सेतु निर्माण तक का कथा भाग 'प्रतिमुख' सन्धि का निर्देश करता है। गर्भ-संधि का आरम्भ एवं निर्वाह राम-रावण के मानसिक संघर्ष द्वारा होता है। रावण द्वारा फेंके गए माया सीता के कटे सिर के कारण राम के मन में जो शोक उत्पन्न हो गया था वह सही तथ्य को जानकर प्रतिशोध की उत्कट भावना में बदल जाता है। अनवरत युद्ध और अंतत. रावण वध 'अवमर्श' सन्धि को प्रकट करता है। सीता-प्राप्ति तथा रामाभिषेक में 'उपसंहृति' संधि की व्याप्ति लक्षित होती है।

विष्कम्भक भूत और भावी अर्थों की सूचना देने वाला विष्कम्भक होता है। इसका विस्तार अंक की अपेक्षा कम होता है। इसके दो प्रकार है प्रथम वह है जिसे शुद्ध विष्कम्भक कहते है, जिसमें मध्यम प्रकृति के पात्र वृत्तवर्तिष्यमाण कथांश की सूचना देते है। मिश्र विष्कम्भक में नीचे और मध्यम प्रकृति के पात्रों द्वारा भूत और भावी अरजक घटनायें सूचित की जा सकती हैं।

बालरामायण में शुद्ध तथा मिश्र दोनों प्रकार के विष्कम्भकों की योजना की गई है। प्रथम अंक में शुन शेप तथा तापस के वार्तालाप में सीतास्वयंवर की तथा विश्वामित्र के राम एवं लक्ष्मण को लाने के लिए जाने की घटना का संकेत मिलता है। दोनों पात्र संस्कृतभाषी हैं। अतः शुद्ध विष्कम्भक के आयोजन में यह कार्य सफल होता है। द्वितीय अंक में राम (परशुराम) तथा रावण के युद्ध की सूचना नारद एवं भृङ्गिरिटि के संवाद में दी गयी है। दोनों संस्कृत का व्यवहार करते है। अतः यहाँ भी शुद्ध विष्कम्भक का प्रयोग उपलब्ध हैं। तृतीय अंक में मिश्र विष्कम्भक प्रस्तुत है क्योंकि सुवेग प्राकृतभाषी है। चतुर्थ अंक में उपाध्याय एवं शिष्य के संवाद में बटु प्राकृत भाषा के माध्यम से व्यवहार करता है। अतः पुनः मिश्र विष्कम्भक की आवृत्ति लक्षित होती है। प्रथम अंक में शुद्ध विष्कम्भक का आविष्करण है। अतः मायामय और माल्यवान् का कथोपकथन संस्कृत में है। षष्ठ अंक में विष्कम्भक शब्द शुद्ध विष्कम्भक का द्योतक है। किन्तु इसमें शूर्पणखा स्त्रीपात्र होने के कारण

प्राकृत का अवलम्बन करती है। सातवें अंक में भावी घटना की सूचना प्रतीहारी एवं कर्पूरखण्ड के वक्तव्य से दी जाती है। यहाँ शुद्ध विष्कम्भक का आयोजन है। आठवें अंक में सुमुख एवं दुर्मुख में दुर्मुख की भाषा प्राकृत है। अतः यहाँ मिश्र-विष्कम्भक प्रयुक्त है। नवें अंक की घटनाओं को जोड़ने का कार्य चित्रगुप्त ने शुद्ध विष्कम्भक द्वारा किया है। दशम अंक के कथोपकथन में शुद्ध का प्रयोग है।

प्रत्येक अंक में विष्कम्भक का विधान सराहनीय प्रतीत नहीं होता क्योंकि जिस वस्तु का ज्ञान चक्षुष् द्वारा सम्भव है उसे श्रवण द्वारा सूचना मात्र के रूप में पाकर दर्शक सन्तुष्ट नहीं हो सकते।

कथानक के अभिनय प्रसंग में स्वगत, आकाश-भाषित एवं नेपथ्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है। राजशेखर के स्वगत भाषण पात्र की अवस्था को प्रकट करते हैं। सम्पूर्ण नाटक में पचास स्थल हैं जहाँ स्वगतोक्ति का प्रयोग किया गया है[1]। राजशेखर के शिल्प विधान की एक विशेषता नेपथ्य-योजना में है। सम्पूर्ण नाटक में सैंतीस[2] बार नेपथ्य का प्रयोग लक्षित होता है जो दर्शकों को निषेध्य दृश्यों से अवगत कराता है। सम्पूर्ण नाटक का आकर्षण उसमें दर्शित गर्भांक के प्रयोग में है। बालरामायण के तृतीय अंक में सीतास्वयम्वर नामक नाटक के विधान को परवर्ती आचार्यों ने सौन्दर्यसाधक गुण माना है। उपर्युक्त विश्लेषण से प्रतीत होता है कि राजशेखर के रूपकों की कथावस्तु में प्रकृति, अवस्था, सन्धि का सुयोजन एवं विष्कम्भक, स्वगत, आकाश-भाषण एवं नेपथ्य का प्रयोग कुशलता-पूर्वक हुआ है। शास्त्रीय मानदण्ड पर सही उतरने वाले उक्त रूपक नाटककार के समर्थ शिल्प-विधान का परिचायक है।

बालभारत

राजशेखर के युग में एक विशेष राजनीतिक सक्रान्ति का आविर्भाव हुआ था। इसकी प्रतिच्छाया उनकी "बालभारत" नामक द्व्यङ्कीय नाट्यकृति में दृष्टिगत होती है। इस अपूर्ण नाटक का कथानक दो राज-परिवारों —कौरव एवं पाण्डवों—

---

१. बालरामायण पृ० १३, १४, १५, २०, २२, २४, ११२, २१, ८३, २२, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ६२, ८०, १०३, ६४, ६५, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७३, ७४, ७५, ७५, ७६, ७७, ८३, १२१, १३६, १४४, १४४, २४४, २४८, १३२, १३९, १४४, २२०, २२९।

२. बालरामायण पृ० १९, २४, २७, २८ ५२, ५८, ५२, ५२, २८, ५९, ८४, ८८, १०४, १२५, १५१, १७८, १७८, १७९, १८०, १८०, १८२, १९२, १९९, २२१, २२५, २२६, २२७, २२८, २३३, २३४, २५२, २५३, २७४, २७९, २८३, २८४, २८५, २८६।

के कलह को लेकर चलता है। महाभारत पर आधारित होने पर भी कथानक नाटककार के समसामयिक युग की समस्या से सम्बन्धित प्रतीत होता है। स्थिति यह थी कि महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्र— महीपाल और भोज द्वितीय—में राज्यारोहण के लिए संघर्ष छिड गया। बालभारत की प्रस्तावना में[1] इस गृह-कलह का अप्रत्यक्ष संकेत है। वस्तुतः कौरव-पाण्डवों के व्याज से महेन्द्रपाल के दोनों पुत्रों के बीच उत्पन्न द्वन्द्व की ओर ही बालभारत में संकेत किया गया है। फिर भी नाटक की अपूर्णता के कारण राजशेखर अपने अभिप्राय का पूरी तरह निर्वाह न कर पाये।

कथानक इस नाटक के राधावेध नामक प्रथम अंक का प्रारम्भ नान्दी से होता है, जिसमें शिव की स्तुति है। तत्पश्चात् सूत्रधार 'बालभारत' अथवा 'प्रचण्डपाण्डव' के विजय का परिचय देता है। यहीं नाटककार का परिचय भी प्राप्त होता है। प्रस्तावना के अन्तर्गत व्यास एवं वाल्मीकि के संवाद से नाटक की पूर्वकथा ज्ञात होती है। प्रमुख दृश्य में युधिष्ठिर भीमसेन आदि ब्राह्मण का वेश धारण कर स्वयंवर के मण्डप में उचित स्थान ग्रहण करते हैं। स्वयंवर मण्डप महर्षियों, ब्राह्मणों एवं राजाओं से भरा है। द्रौपदी स्वयंवरोचित सज्जा करके अपनी सखी के साथ सभामण्डप में आती है। उसके असामान्य सौन्दर्य से पाँचों पाण्डव अत्यन्त प्रभावित हो जाते हैं। सामान्य औपचारिकता के पश्चात् बन्दी घोषित करता है कि जो मत्स्यवेध करेगा, द्रौपदी उसी का वरण करेगी। दुःशासन, शकुनि, जयद्रथ, दुर्योधन, बलभद्र, कामपाल, वासुदेव, सात्यकि, शिशुपाल और जरासन्ध प्रयत्न करने पर भी जब मत्स्यवेध में असमर्थ सिद्ध होते हैं तब एकाएक भीषण कोलाहल से वातावरण गूँज उठता है। ब्राह्मणों की मण्डली से एक युवक कार्मुक पर नजर गडाये हुए आगे बढ़ता दिखाई देता है। वह चारों ओर गर्व से दृष्टिपात करता है और एक ही प्रयास में मत्स्यवेध करके सबको चकित कर देता है। द्रौपदी अत्यधिक प्रसन्न होती है किन्तु लक्ष्यवेधी के कुल और शील की जानकारी न होने के कारण मत्स्यवेध करने के पश्चात् भी द्रौपदी के वरण के संबन्ध में बन्दी चिन्तित हो उठता है। उपस्थित राजगण भी ईर्ष्या के कारण अर्जुन के मत्स्यवेध की सफलता पर शंका प्रकट करते हैं। उसे स्वयंवर के लिए अपात्र घोषित

---

१ बालभारत–१-८१९ "भवदनुचरा पञ्च भ्रातरो वयम् पञ्चभिर्नाम समर्थास्तदभिनये। किं पुनरस्माकं पितृव्यपुत्रा शतं सन्ति भरतपुत्रा। ते च तदभिनेतुमिच्छन्ति न च ते शक्नुवन्ति। तन्निमित्तं च मद्दस्माभिः सह वैरं वर्तते।"

करते हैं; किन्तु अर्जुन राजकुमारों की अवहेलना करते हुए, द्रौपदी को लेकर, राजवृन्दों को चेतावनी देते हुए निकल जाते हैं।

द्वितीय अंक में द्यूतप्रसंग वर्णित है। विदुर और गान्धार के वार्तालाप से द्यूतक्रीडा की पृष्ठभूमि का पता चलता है। बात यह थी कि राजसूय यज्ञ के समय दुर्योधन विशाल-सम्पदा देखकर उसके लिए लालायित हो गया था। फिर द्रौपदी ने उसका उपहास भी किया था। अतः उसमें द्वेष एवं प्रतिशोध की भावना भड़क उठी थी। तब उसने द्यूत द्वारा पाण्डवों को पराजित करने का षड्यन्त्र रचा। धृतराष्ट्र के माध्यम से उसने युधिष्ठिर को द्यूतक्रीडा के लिये आमंत्रित किया। विनयशीलता के कारण अनिच्छा से ही युधिष्ठिर ने आमन्त्रण स्वीकार किया।

प्रमुख दृश्य में द्यूतक्रीडा का प्रदर्शन है। अपना कीमती हार पहली बार में हारने पर युधिष्ठिर क्रीडा से विमुख हो जाते हैं। परन्तु शकुनि "आहूतो न निवर्तेय द्यूताय च रणाय च" का स्मरण दिलाकर उन्हें खेलने के लिए विवश करता है। युधिष्ठिर इस क्रीडा में वारांगना, हाथी, रथ, घोड़े और राज्य को दाँव पर लगाकर खो देते हैं। अन्त में शकुनि के उकसाने पर अपने सहित चारों भाइयों और द्रौपदी को भी दाँव पर लगाकर हार जाते हैं। वे अन्तिम दाँव में पूर्णतः पराजित होकर तेरह वर्ष के लिए अरण्यवास का वरण करते हैं। दुर्योधन की आज्ञा से, दुःशासन द्रौपदी को केश पकड़कर घसीटते हुए भरी सभा में लाता है, जहाँ कौरवों के साथ पाण्डव भी उपस्थित हैं। दुःशासन अभद्र वचनों से उसे अपमानित करता है और अन्त में उसे विवस्त्र करने का दुष्प्रयास भी। किन्तु खींचे हुए स्थान पर नूतन वस्त्र के आविर्भाव के कारण वह थक जाता है। द्रौपदी समस्त गुरुजनों से निर्णय की याचना करती है। उसका कथन है कि जब युधिष्ठिर ने स्वयं को दाँव पर लगा दिया और वे पराजित हो गए हैं, तो उन्हें उसे दाँव पर लगाने का कोई अधिकार नहीं था। उसकी याचना निष्फल हो जाती है। सारी सभा जड़-मूक दिखाई देती है। केवल विकर्ण द्रौपदी की दयनीय दशा से व्यथित होकर कौरव-पक्ष को त्याग देता है। द्रौपदी, दुर्योधन को शाप देती है तथा चेतावनी देती है कि भीम शीघ्र ही इस गर्हणीय कृत्य का भीषण प्रतिशोध लेंगे। भीम भी उत्तेजनापूर्ण शब्दों से सौ कौरवों को मारकर दुःशासन के रुधिर-पान तथा रुधिर-लिप्त हाथों से द्रौपदी की वेणी बाँधने का संकल्प करता है। इस पर शकुनि उन्हें वनगमन का आदेश देता है और अंक समाप्त हो जाता है।

कथानक का स्रोत : इस नाटक के प्रथम अंक में स्वयंवर तथा द्वितीय अंक में द्यूतक्रीडा एवं द्रौपदी-वस्त्रापहरण की कथा है। कथावस्तु का आधार व्यासप्रणीत

महाभारत है। द्रौपदी स्वयबर की घटना ग्रादिपर्व के पाँच ग्रध्यायो मे (१७६ से १८०) है। नाटक के प्रथम ग्रक मे राघावेध का यही ग्राधार है। द्वितीय ग्रक की प्रस्तावना का ग्राधार द्यूतपर्व (ग्र० ४३ से ५२) में मिल जाता है। द्यूतक्रीडा भी महाभारत के द्यूतपर्व में ही है। द्रौपदी-वस्त्रापहरण की कथा ग्रनुद्यूतपर्व मे वर्णित है। इस प्रकार प्रथम ग्रक ग्रादि पर्व तथा द्वितीय ग्रक सभा पर्व पर ग्राधारित है।

बालभारत एव महाभारत की कतिपय उक्तियों मे ग्रत्यधिक समानता है। तुलनात्मक ग्रध्ययन से हमे निम्न समताये दृष्टिगोचर होती हैं —

महाभारत	बालभारत
१ न च विप्रेष्वधिकारो विद्यते करणं प्रति। स्वयवर क्षत्रियाणामितीय प्रार्थना श्रुति। (१-१८०-८०)	१ रे रे! ब्राह्मण मुञ्च विप्लवमु श्रुत्यर्थवीथी स्मर। क्षत्रस्याय ननु स्वयवर विधावेकाधिकार स्थित. (१-८२)
२. ग्राहूतो न निवर्तेय (२-७-१३)	२ ग्राहूतो न निवर्तेय कदाचित् (११-५२-१६)
३. एको भर्ता स्त्रियो देवैर्विहित कुरुनन्दन। इयं, ग्रनेकवशत्वा बन्धकीति विनिश्चिता। (२-६१-३५)	३ पञ्चाना या कलत्रम् (२-३७) हे द्रौपदि, त्वमसि कान्त पतिव्रताना किं दुष्ट पश्चपुरुया वनिता-कलत्रम्
४ महद्धनु कर्षति तालमात्रम् (२-८६)	४ उत्पादितमहाताल (१-१८०-१८)
५. जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम् या राजसूयावभृथे जलेन। महाक्रतौ मन्त्रपूतेन सिक्ता (२-६०-२२ २३)	५ पूता या राजसूयावभृथपरिगमं मन्त्रपूतैं पयोमि —केशेष्वाकृष्य माणाम् (२-३७)
६. सर्वं एवेन्द्रकल्पा गुरुस्थेमान गुरुदेव सर्वे। तेषामग्रे नोत्सहेस्थातुमेव।	६ कथमेकवस्त्रा भूत्वा गुरुनरेन्द्रपुरत. सचरिष्ये (२।३९-४०)
७ ग्राकृष्यमाणे बसने द्रौपद्यास्तु विशाम्पते। तद्रूपमपर वस्त्र प्रादुरासीदनेकश २।६१।४१ यदा तु वाससा राशि सभामध्ये समाचित। ततो दु शासन श्रान्तो व्रीडित समुपाविशत् (२।६१।४८)	७ यावडेक दुरददुहितु कृष्यते वस्त्रमस्यास्तत्स्थानेऽन्यद्भवति पिदधत्तावदङ्ग ततश्च। खिन्न चर्तेन्मम करतल वाससा चैप राशिस्तन्मन्येऽसौ त्रिभुवनमनोमोहिनी वेत्ति विद्याम् (२-४०)
८ भव याज्ञसेनि एकाम्बरा वाप्यथवा विवस्त्रा (२।६०।२७)	८ नन्वपनयाम्येकवस्त्रता कोटवीकरणेन (२।३९।४०)
९. कृष्णा ममेवेत्यभिभाषमाणा नृपासनेभ्य सहसोपतस्थु। (१-१७८-३	९ समन्तत समुत्तरति वृन्द नरेन्द्राणाम् कथमहपूर्विकया सर्वं एव धनुरारोपयितु सरभन्ते। १।३३

महाभारत और बालभारत :

बालभारत के नाटककार ने महाभारत के कथानक में निम्न परिवर्तन किये हैं :—

१—महाभारत में राजपुरोहित निमंत्रित अतिथियों का सत्कार और गुण-गान करता है।[१] जबकि नाटक में धृष्टद्युम्न इस कार्य को सम्पन्न करता है।[२]

२—महाकाव्य में धृष्टद्युम्न सीमित शब्दों में अतिथियों के कुल शील का परिचय देता है। वही घोषणा भी करता है।[३] बालभारत में बन्दी यह कार्य बड़े विस्तार से सम्पन्न करता है।[४]

३—महाभारत में अर्जुन जब लक्ष्यवेध के लिए जाने लगते है तो कुछ राजा-गण उनका विरोध करते है। कुछ उसे धनुर्विद्या में अज्ञ समझते हैं किन्तु अर्जुन नम्रता से बाण ग्रहण करके एक क्षण में लक्ष्यवेध कर देता है। प्रसन्नता से देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं।[५] बालभारत में यह घटना परिष्कृत रूप में उपलब्ध है। अर्जुन गर्व से चारों दिशाओं में दृष्टि डालते हुए आगे बढ़ता है। उसकी चेष्टाओं से लगता है कि उसमें धनुष को चूर-चूर करने की क्षमता है। जैसे ही वह धनुष उठाता है, भीम धरा के विदीर्ण होने के भय से सम्हालते है। अर्जुन यशस्वी होते हैं।[६]

४—महाभारत में द्रौपदी के सौन्दर्य से पाण्डवों के कामग्रस्त होने का वर्णन है।[७] नाटक में वे केवल कामानुभव ही नहीं करते, उसके सौन्दर्य की प्रशंसा भी करते है।[८]

५—महाभारत में युधिष्ठिर द्यूत क्रीडा में अपनी सम्पत्ति हार जाने के पश्चात् क्रमशः नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीम को और फिर स्वयं को तथा अन्त में द्रौपदी को बाजी में लगाते है। लेकिन नाटक में वे सर्वप्रथम स्वयं को और फिर क्रमशः भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और अन्त में द्रौपदी को दाँव पर लगाते हैं।

६—महाभारत में प्रत्येक राजा लक्ष्यवेध के प्रयास में विफल होने पर भूमि पर असहाय होकर गिर पड़ता है। बालभारत में दुःशासन चाप की ओर बढ़ता है,

---

१. महाभारत आदिपर्व. १७६
२. बालभारत १।२५।२६
३. महाभारत आदिपर्व· १७६-७७
४. बालभारत १।३२-३४
५. महाभारत आदिपर्व १७८
६. बालभारत १।७५।७६।७८
७. महाभारत आदिपर्व १७८
८. बालभारत १।२७।२८।२९।३०।३१

किन्तु तीन चार पग चलने पर लज्जित होकर लौट आता है। कुछ नरेन्द्रगण चाप को स्पर्श करने में भी कतराते हैं और कुछ प्रयत्न तो करते हैं किन्तु असफल हो जाते है।

७—महाभारत में कर्ण को चापग्रहण किये देखकर द्रौपदी कहती है कि वह सूत से विवाह नहीं करेगी।[1] परन्तु राजशेखर के नाटक में इस घटना का उल्लेख नहीं है। बन्दी कर्ण की सफलता के प्रति आशंकित होकर द्रौपदी को आगे बढ़ने के लिए कहता है।[2]

८—महाभारत में उक्त पण को मत्स्यवेध[3] कहा है तो नाटक में राधावेध।[4]

९—महाकाव्य में, कृष्ण द्रौपदी के वस्त्रापहरण के समय उसकी सहायता करते है।[5] नाटक में कृष्ण के स्थान पर त्रिभुवन-मोहिनीविद्या उल्लेख है।

दो अंकों के पश्चात् नाटक अधूरा छूट जाता है। यदि वह पूरा हो पाता तो हमारे सम्मुख अनेक नवीन उद्‌भावनायें प्रकट हो पाती।

विद्धशालभंजिका

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नवम शताब्दी के शक्तिशाली राष्ट्रकूट-वंश में गोविन्द चतुर्थ नामक एक कायर एवं विलासप्रिय शासक का नाम भी आता है। इस वंश की प्रतिष्ठा को कायम करने के लिए, मंत्रिपरिषद् ने उसे पदच्युत किया तथा उसके स्थान पर उसी वंश के उत्तराधिकारी अमोघवर्ष तृतीय को राज्यसत्ता थमा दी। अमोघवर्ष तृतीय का कलचुरि वंश से वैवाहिक सम्बन्ध था, क्योंकि उसकी पत्नी कन्दुकदेवी कलचुरिनिलक युवराजदेव की पुत्री थी। इस दम्पति से उत्पन्न कृष्ण तृतीय ने इस सम्बन्ध की ओर दुर्लक्ष्य कर अपने नाना युवराजदेव पर आक्रमण किया, किन्तु स्वल्प पराजय के पश्चात् युवराजदेव ने पुनः अपनी शक्ति दृढ़ बना ली। उनकी यह विजयगाथा वर्षों तक त्रिपुरी के लोगों की जिह्वा पर बनी रही।

राजशेखर इस विजय महोत्सव के अवसर पर त्रिपुरी में ही थे। उनकी विद्धशालभंजिका नाटिका इसी प्रसंग में रंगभूमि पर अवतरित की गई थी। राज्य-परिषद् के सभ्यगणों ने जब अपने राजा को काव्य (दृश्य) नायक के रूप में देखा तो वे गद्‌गद् हो गये। युवराजदेव का मंत्री भागमिश्र स्वयं को भागुरायण की भूमिका

१. महाभारत आदि पर्व १३८
२. बालभारत १-३९
३. महाभारत आदिपर्व १३६
४. बालभारत १-२२।२३।३२।३०
५. सभापर्व ६१-८०

में उपस्थित पाकर निहाल हो गया। सारी परिषद् "खरचुलितिलको वर्तते चक्रवर्ती"[1] इन शब्दों से गूंज उठी।

यह ऐतिहासिक घटना है जो विद्धशालभंजिका नाटिका के वस्तु-संविधान में संलग्न दिखाई दे रही है। नाटककार ने ऐतिहासिक कथावस्तु को शृंगार-प्रधान संविधान में इतनी कुशलता से गुम्फित किया है कि वस्तुतः विपरीत होने पर भी दोनों घटनाओं में तादात्म्य स्थापित करने के कारण वह अन्त तक आकर्षक बनी रह सकी है।

कथावस्तु : सम्राट् विद्याधरमल्ल के सामन्त चन्द्रवर्मा को पुत्रीरत्न की प्राप्ति तो हुई, किन्तु निष्पुत्र होने के कारण उसने दूतों से सम्राट् को पुत्रोत्पत्ति की सूचना भिजवा दी। सम्राट् विद्याधरमल्ल का मन्त्री भागुरायण अतिकुशल व्यक्ति था उसने उस पुत्री को पुत्रवेश में मँगवा लिया। पश्चात् एक विश्वस्त परिचारिका को अपने विश्वास में लेकर यह बतलाया कि यह पुत्री जिसका नाम मृगाकवर्मा है, मृगाङ्कावली नामक स्त्री है। उसके साथ विवाह करने से युवराज चक्रवर्ती हो जायेंगे। अतः वह सर्वप्रथम मृगाङ्कावली की प्रिय सखी बने तथा राजा के इस कार्य को सफल बनाने में सहायता दे। विचक्षणा की स्वीकृति के पश्चात् भागुरायण ने उसे आदेश दिया कि वह मृगाङ्कावली को भवन-भित्ति सचार-गृह में रखे जिससे राजा उसे स्वप्न में देख सके। मृगाङ्कावली ने विचक्षणा के कथन पर विश्वास रखकर राजा के दर्शन होते ही उसे अपना कण्ठस्थित हार पहना कर उसकी अर्चना की, जिसमें अनुरूप फल मिले। विचक्षणा की सम्मति से सूने पर राजा को अपने दर्शन दिये, केलिकैलास नामक वासगृह की स्फटिकमय दीवालों पर अपना चित्र चित्रित कराया। पश्चात् स्फटिक की दीवाल की आड़ में पुनः दर्शन दिये। अपने रूप से सर्वथा मिलती हुई शाल-भंजिका निर्मित करायी। रत्न वली की चौकी पर कन्दुक क्रीडा की। अनेक विलासों का प्रदर्शन करती हुई उस सुन्दरी को देखकर राजा उस पर पूर्ण रूप से आसक्त हो गया, तथा मन्त्री भागुरायण का निन्यानवे प्रतिशत कार्य भी सफल हो गया।

इस नाटिका की कथावस्तु इस षड्यन्त्र के आधार पर चार अंकों में बँधी हुई है।

प्रथम अंक का प्रारम्भ बड़ा ही भव्य है। स्वप्नदृष्ट नायिका का स्मरण करते हुए उत्कण्ठित राजा विदूषक से कहता है "यदि उसका मुख है, तो चन्द्रमा की

---

1 विद्धशालभंजिका ४।२५

आवश्यकता नहीं है। उसके शरीर की कान्ति की तुलना में सुवर्ण निष्फल है। उसकी भौहों के सामने कामदेव का धनुष तुच्छ है। अधिक क्या कहें? इन अनावश्यक वस्तुओं का पुन-निर्माण करने में विधाता का सृष्टिक्रम व्यर्थ सा लगता है। विदूषक राजा की इस अपूर्व भोगावली से विस्मित हो जाता है। राजा पुन नायिका का स्मरण करता है। दोनों गवाक्ष-द्वार से प्रमोदोद्यान में प्रविष्ट होते हैं। राजा को स्फटिक भित्ति की ओर से नायिका का आभास होता है। वह हिंडोले में झूलती हुई, चन्द्र की भ्रान्ति करती हुई दिखाई देती है। दोनों आगे बढ़ते हैं। स्फटिक की दीवालों में साकार नायिका को देखकर राजा अवाक् हो जाता है। वहीं शाल-भंजिका में उत्कीर्ण नायिका को देखकर वह अपना मोतियों का हार नायिका के गले में डाल देता है। शालभंजिका में लिखी पंक्ति "विधत्ते सोऽन्वेषं कतरदिह नाङ्ग तरुणिमा" पढ़ता है। उसी समय पुन उसे नायिका की भ्रान्ति होती है, क्योंकि वह केलिकैलास के पीछे से अस्पष्ट पद-चिह्न छोड़ती हुई निकल जाती है। नेपथ्य में माध्यन्दिनी के सुखकर होने की कामना व्यक्त की जाती है और राजा तथा विदूषक दोनों मध्योपासना के लिए निकल पड़ते हैं।

दूसरे अंक में तरंगिका और कुरंगिका नामक दासियों के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि राजा के मन में (राज्यपरिभ्रष्ट चण्डसेन की दुहिता) कुवलयमाला समाई हुई है। अब मौन के आने की आशंका से रानी उसका विवाह मातुल-पुत्र मृगाङ्कवर्मा से करना चाहती है, जिससे चन्द्रवर्मा की माता का स्नेह भी दर्शित होगा और रानी का लक्ष्य भी पूर्ण होगा। इसी प्रसंग में वह आर्य चारायण का डमरुक (वधू वेश में उपस्थित चेट) से प्रतीक विवाह कराना चाहती है। प्रमुख दृश्य में प्रतीक विवाह दिखाया जाता है। मिथ्या विवाह से कुपित होकर विदूषक निकल जाता है। पुन नायिका को कन्दुक क्रीडा में मग्न दिखाया जाता है। राजा और विदूषक उस नायिका का अनुसरण करते हैं। उन्हें दिलष्ट तालपत्र मिलता है जिसमें यौवन का वर्णन है जो सभी अंगों में निखार पैदा करता है, किन्तु नेत्रों में एक विशेष प्रगल्भता उत्पन्न कर देता है। नेपथ्य में मृगाङ्कावली की सखी उसके परिपक्व प्रणय एवं विरहजन्य व्यथा का वर्णन करती है। राजा को उसकी उन्मादावस्था का बोध होता है। नेपथ्य में सायंकालीन सन्ध्या की सूचना दी जाती है।

तृतीय अंक में विचक्षणा एवं सुलक्षणा के वार्तालाप से मंत्री भागुरायण के रहस्य का उद्घाटन हो जाता है, तथा नायिका की बढ़ती हुई विरह वेदना का भी। इधर मिथ्या विवाह से प्रसन्न चारायण देवी की धात्री की सखी को छलना

होता है कि 'नर्मदा नदी की लहरों से प्रतिध्वनित त्रिपुरी नगरी में केयूरवर्ष महाराज को पश्चिम में गंगाजी के उद्गम से लेकर पूर्व में ताम्रपर्णी तक, पवित्र दक्षिण प्रदेश से पश्चिम समुद्र तक और शंकर जी की जटाओं से गिरी हुई गंगा जी के द्वारा अभिनन्दित क्षीर सागर तक का चक्रवर्ती पद प्राप्त हो गया है।

ब्रह्मा विष्णु और महेश के स्तुतिपरक भरतवाक्य से नाटिका समाप्त होती है।

कथावस्तु की समीक्षा:—विद्याधरमल्ल तथा मृगांकावली की प्रणयकथा इस नाटिका की वस्तु है। उक्त कथा सम्पूर्ण न टक में व्याप्त है और लक्ष्य-प्राप्ति भी इसी से सम्बद्ध है। आर्य चारायण का मिथ्याविवाह, तथा मेखला का जीवन-दान प्रासंगिक कथावस्तु है।

नाटककार ने सुसंगति के लिए नाट्य-शिल्प में विष्कम्भक एवं प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपकों का भी विधान किया है। प्रथम अंक के 'सुपिरस्तम्भसंचार' 'वासगृह की सूचना' विष्कम्भक द्वारा तथा द्वितीय अंक में 'तरंगिका' एवं 'कुरंगिका' के वार्तालाप में अलीक विवाह-प्रसंग का निर्देश, तृतीय अंक में मन्त्री भागुरायण की षड्यन्त्र कथा का उद्घाटन तथा चतुर्थ अंक में मृगांकावली एवं कुवलयमाला के विवाहों की सूचना प्रवेशक द्वारा प्राप्त होती है। नायिका की विरहदशा, सूर्योदय एवं चन्द्रोदय का रंगमंच पर प्रदर्शन न हो सकने के कारण उन्हें नेपथ्य[1] से सूचित किया गया है। प्रसंगानुसार स्वगत[2], प्रकाश[3] एवं अपवारित[4] का भी विन्यास किया गया है। ये समस्त उपकरण नाटिका को अभिनेय बनाते हैं। नाटिका में कार्यावस्थाओं का भी प्रकाशन किया गया है। प्रथम अंक में नायिका के स्वप्न-दर्शन से राजा में अंकुरित प्रणय-भावना "आरम्भ" नामक कार्यावस्था को प्रगट करती है। इसी अंक में नायिका को पहले चित्र में, फिर शालभंजिका में विद्ध, तत्पश्चात् भित्तिगृह की ओट में देखकर राजा का औत्सुक्य उत्तरोत्तर बढ़ता है। द्वितीय अंक में नायिका की प्राप्ति के लिए आर्य चारायण की सहायता से किये गये राजा के सारे प्रयास 'यत्न' नामक कार्यावस्था को सुदृढ़ बनाते हैं। "प्राप्त्याशा" का संकेत तृतीय अंक के नायक-नायिका के मिलन-प्रसंग में दृष्टिगत होता है। चतुर्थ अंक में मृगांकावली सेनायक का विवाह एवं चक्रवर्ती पद

१. विद्धशालभंजिका पृष्ठ २, ५, ३१, ५०, ५१, ५३, ७३, ७४, ९०, ९१, ९७
२-३ वही पृष्ठ २४, ४३, ८९, ११०
४ वही पृष्ठ ११४, ११५

का[1], रत्नावली मे वासवदत्ता सागरिका का[2] और प्रियदर्शिका मे वासवदत्ता प्रियदर्शिका का विवाह नायक के[3] साथ इसलिए करवाती है कि वह चक्रवर्ती पद से गौरवान्वित हो जाय।

२—चारो नाटिकाओ की नायिकाए राजकुलोत्पन्न है। विद्धशालभजिका मे नायिका मृगाकावली लाटप्रदेश के अधिपति चन्द्रवर्मा की एकमात्र पुत्री है[4] मालविका राजकुमारी है, भाई के बन्दी हो जाने पर उसे छिपाकर लाया गया है।[5] रत्नावली नाटिका की नायिका सागरिका सिंहलेश्वर नरेश की पुत्री है।[6] प्रियदर्शिका नरेश दृढवर्मा की पुत्री है। किन्तु नायिकाओ का यह रहस्य अन्त में ही उद्घटित होता है।

३—मालविकाग्निमित्र को अपवाद माना जाये तो शेष तीनो नाटिकाये चार अको की ही है।

४—चारो नाटिकाओ में विदूषक राजा का अभिन्नहृदय मित्र है। विदूषक की सहायता से राजा का प्रणय-व्यापार बाधाओ का अतिक्रमण करता हुआ सफलता की ओर बढता है। नायिका से नायक का मिलन तथा अप्रत्यक्ष रूप में विवाह्-प्रसग विदूषक द्वारा ही सम्पन्न होता है।

विभिन्नताएँ इन समानताओ के अतिरिक्त कतिपय विभिन्नतायें नाटिका में स्पष्ट रूप से लक्षित होती है—जैसे विद्धशालभजिका, रत्नावली एव मालविकाग्निमित्र मे नायिकाओ को भविष्य मे योग्य पति मिलने की घोषणा मिलती है। किन्तु विद्ध-शालभजिका मे घोषणा करने वाला व्यक्ति अन्य तीन नाटिकाओं मे भिन्न दिखाई देता है। लाटाधिपति का दूत विद्याधरमल्ल राजा की सभा में आकर मृगाकावलीके विषय मे कहता है "दैवज्ञोचित चक्रवर्ति गृहिणिभावा मृगाकावली—देया कस्य त्रिदिन्दुसुन्दरयश पूतस्य पृथ्वीपतें।"[7] इसके विषय में दैवज्ञो ने यह बताया है कि चक्रवर्ती की गृहिणी होगी।

---

१ मालविकाग्निमित्र-मज्जउत्तो दाणि इम पडिच्छदु। ५-१८-१९
२. रत्नावली–उज्जउत्त। एत्र रअणावलि पडिच्छ। चतुर्थ अक १९-२०
३ प्रियदर्शिका–राजा हस्त प्रसारयति, वासवदत्ता प्रियदर्शिकाहस्तमर्पयति। चतुर्थ अक १०-११
४ विद्धशालभजिका–लाटेन्द्रश्चन्द्रवर्मा नरपतितिलक तस्य पुत्री। अक १ श्लोक ८
५. मालविकाग्निमित्र–दायादवशगते भर्तृदारके माधवसेने तस्यामात्येनायुष्मतिनाऽस्मादृश ५।१२।१३
६ रत्नावली–परिजनमुज्झित्वा गूढमानीतैषा पचम अक ९।१०
७ विद्धशालभजिका ४।२०

मालविकाग्निमित्र में यह घोषणा सिद्धादेश के द्वारा मिलती है "सिद्धादेशकेन साधुना मत्समक्ष समादिष्टा आसवत्सरमात्रमिय प्रेष्यभावमनुभूय तत सदृशभर्तृगामिनी भविष्यति ।[१] परिव्राजिका मालविका का वृत्त बतलाती हुई कहती है कि सिद्धमहात्मा ने कहा था कि एक वर्ष तक दासी का जीवन बिताने के बाद यह योग्य स्वामी प्राप्त कर सकेगी।

रत्नावली नाटिका में भी सिद्ध पुरुष भविष्य बतलाता है। यौगंधरायण :- "देव ! श्रूयता येय सिंहलेश्वरस्य दुहिता सा सिद्धेनादिष्टा यथा योऽस्याः पाणिग्रहण करिष्यति स सार्वभौमो राजा भविष्यति" । यौगंधरायण प्रस्तावना में ही स्पष्ट कहता है कि इस सिंहलदेश की राजकन्या के विषय में सिद्ध ने आशीर्वाद दिया था कि जो इसके साथ विवाह करेगा वह समग्र भूमण्डल का राजा होगा ।

निष्कर्ष यह है कि मालविकाग्निमित्र और रत्नावली नाटिका में आशीर्वाद देने वाला या भविष्य कथन करने वाला पात्र भी सिद्ध पुरुष है। यह दोनो नाटिकाओं में समानता है। हाँ, विद्धशालभंजिका में दैवज्ञ मृगाङ्कावली के भावी जीवनका स्पष्टीकरण करता है।

विभिन्नतायें : १. विद्धशालभंजिका और रत्नावली में नायिका के विषय में कहा गया है कि वे जिससे विवाह करेंगी वह राजा चक्रवर्ती पद प्राप्त करेगा या समस्त भूमण्डल का राजा होगा किन्तु मालविकाग्निमित्र में चक्रवर्ती पद या सम्राट का उल्लेख नहीं है। केवल नायिका की उचित वर-प्राप्ति का कथन है।

२ इन नाटिकाओं में दूसरी भिन्नता नायिका के प्रथम दर्शन के विषय में है। नायक विद्याधरमल्ल नायिका मृगाङ्कावली को प्रथमत. स्वप्न में देखता है तथा आसक्त हो जाता है।[२]

मालविकाग्निमित्र[३] और रत्नावली[४] नाटिका में नायक अपनी नायिकाओं को

१. मालविकाग्निमित्रम् ५-१२।१३
२. सा क्वाऽपि स्वप्नविधौ दृष्टा वि० भ० १-१५
३ स जनो देव्या. पार्श्वगते-मालविकाग्निमित्र अंक १-३-४ ।
४. लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिक न. ।
मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव । रत्नावली २।७

प्रथमत चित्र मे आलिखित पाते है जिनके सौंदर्य से मुग्ध होकर उन्हें साक्षात् देखने के लिये उत्सुक हो जाते है ।

३. विद्धशालभंजिका मे मेखला जीवन दान प्रसग तृतीय अंक मे आयोजित किया है । यह विदूषक की बुद्धिकुशलता का नमूना है । रानी के द्वारा सम्पन्न मिथ्या विवाह से अप्रसन्न नारायण[1] देवी की धात्री की लडकी से उस अवसर पर बदला लेता है ।

मालविकाग्निमित्र नाटिका मे चतुर्थ अंक मे नायक तथा नायिका समुद्रगृह मे मिलते है । रानी इरावती को यह खबर मिलते ही वह अपनी सखी निपुणिका के साथ वहाँ पहुँचती है । समुद्र के द्वार पर सोये हुए विदूषक को लाठी से जगाती है । वह साँप साँप कहकर चिल्लाता है । यह सुनकर अन्तगृह मे राजा विदूषक को बचाने के लिये निकल पडता है साथ ही राजा को रोकती हुई मालविका । दोनो को देखकर इरावती के क्रोध की सीमा टूट जाती है । राजा भी परेशान है। उसी समय पिंगल वानर अपने पिंजरे से निकलकर गेंद खेलती हुई वसुलक्ष्मी को भयभीत कर देता है। वह बेहोश हो जाती है । जब यह वार्ता रानी सुनती है । वह शीघ्र ही लौट आती है। अत वानर-प्रसग कथानक विकास मे सहायक होता है।

रत्नावली नाटिका मे सागरिका राजा के दर्शन के लिये अत्युत्सुक है किन्तु दर्शन न होने के कारण निराश होकर चित्रपटी पर राजा का चित्र तूलित करती है उसकी सखी सुसगता उस राजा के चित्र के पास ही सागरिका का चित्र खीचती है । चित्र दर्शन मे ही सागरिका अपना मनोविनोदन करती है । उसी समय समीपस्थ कुंज में राजा और विदूषक मनोरजन करते हुए दिखाई देते हैं । सागरिका का राजा के प्रति अनुराग तथा उसे न पाकर जीवन त्याग का विचार जिसे वह सुसगता के सामने शब्दो द्वारा प्रकट कर रही थी पजरस्थ सारिका सुनती है । उन्ही आलापो को राजा के समक्ष दुहरा देती है राजा को सागरिका की विरहव्यथा की अनुभूति होती है । नाटिका मे बीज तथा मूल कथा का आरभ यही से हो जाता है ।

इस प्रकार हम देखते है कि विद्धशालभंजिका को गति मेखला-प्रसग से मिलती है जबकि रत्नावली और मालविकाग्निमित्र मे यही कार्य बन्दर के छूटने से सम्पन्न होता है ।

१. वि० भ० अलीअविवाहविडम्बिदो वडुओ वाराअणो दे पडिकि दिववसिदो-तृतीय अंक ।

४. रत्नावली और मालविकाग्निमित्र की नायिकायें सागरिका और मालविका अज्ञात, राजकुमारी होते हुए भी नायक के अन्तःपुर में दासियों का जीवन व्यतीत करती हैं। विद्धशालभंजिका में स्थिति विपरीत है। इस नाटिका की नायिका मृगांकावली (पुत्र रूप में) पुत्र घोषित करके भिजवाई जाती है और नायक के प्रासाद में सम्मानपूर्वक रहती है। महादेवी के मन में इसके प्रति विशेष ईर्ष्याभाव नहीं है। जबकि अन्य दो नाटिकाओं में महादेवी नायिकाओं से सदा ही रुष्ट रहती है।

५ रत्नावली और मालविकाग्निमित्र नाटिकाओं के नायक नायिकाओं का विवाह राजनैतिक कारण से संबन्धित है। इसे कार्यान्वित करने में मंत्रियों का प्रमुख हाथ है। वे कार्य को सफल बनाने के लिये षड्यन्त्र की रचना करते हैं, और सदा प्रयत्नशील रहते हैं। उनके कार्य की सफलता नायक नायिका के परिणय में होती है। विद्धशालभंजिका में राजनैतिक उलझन नहीं है। रानी मृगांकावली विषयक भविष्य घोषणा को सत्य करने के लिये तथा राजा को अनायास चक्रवर्ती बना देने की लालसा से स्वयं नायक नायिका को प्रणय सूत्र में बांध देती है।

६. दोनों नाटिकाओं में नायिकाओं का परिचय उनके देश से आया हुआ सेवक देता है। भद्रदेवियाँ उन्हें दी गई यातनाओं का स्मरण करती हुई अति-दुःखित होती हैं तथा पुरस्कार रूप में नायिका को राजा के हाथ सौंप देती हैं। विद्धशालभंजिका में नायिका मृगांकावली के देश से दूत आता है। वह पुत्र-जन्म का शुभ समाचार देता हुआ मृगांकावली के लिये उचित वर की याचना करता है। राजा के लिये अतिरिक्त अन्य उचित वर न मिलने के कारण रानी मृगांकावली का विवाह राजा के साथ विधि-पूर्वक सम्पन्न होता है।

तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि नाटककार ने हर्ष की रत्नावली एवं प्रियदर्शिका तथा कालिदास के मालविकाग्निमित्र को समक्ष रखते हुए भी नाटिका को यथाशक्य मौलिकता प्रदान की है।

कर्पूरमंजरी सट्टक : राजशेखर ने कर्पूरमंजरी सट्टक एवं विद्धशालभंजिका नाटिका की गणना उपरूपकों में की है। यह निर्विवाद है कि सट्टक परम्परा की नींव राजशेखर ने ही डाली है। उनके पूर्व सट्टक शब्द 'साटक' या 'शाडिक' इस विकृत रूप में भरहुत के शिलालेख में अंकित है। राजशेखर ने ही इस शब्द को (अर्थ के साथ मञ्जुल सामञ्जस्य स्थापित कर) प्रथम बार रंगमंच पर अवतरित किया।

कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना मे स्थापक कहता है—"कथिद जेव छइल्लेहिं—

"सो सट्टओ त्ति भणइ दूर जो णाडिआइ अणुहरइ ।

किं उण पवेसविक्खम्भकाइ केवल ण दीसन्ति"[१]

विद्वानों का कथन है कि जिस प्रबन्ध में नाटिका का पूर्ण अनुकरण हो, केवल प्रवेशक और विष्कम्भक की योजना न हो उसे सट्टक कहते हैं । उपर्युत उदाहरण मे स्थापक द्वारा प्रयुक्त 'विद्वान्' शब्द हमारे मान्य कवि राजशेखर के लिये है । अत स्पष्ट है कि सट्टक एक प्रकार की नाटिका है । नाटिका के सबन्ध मे भरत-मुनि से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक प्राय आचार्यों ने अपने अपने मन्तव्य प्रकट किये हैं । इनमें धनजय[२] और भरत[३] द्वारा वर्णित नाटिका के लक्षणों को ही विस्तारपूर्वक दिया है और साहित्यदर्पणकार ने पूर्वपरम्परा का अनुसरण करते हुए भरत एव धनजय के शब्दों को दोहरा दिया है । इसलिये नाटिका के विषय मे 'दर्पणकार' का मत देना यहाँ पर्याप्त होगा । उनके अनुसार—

नाटिका कॢप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका ।
प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृप ॥
स्यादन्त. पुरसम्बद्धा सगीत-व्यापृताथवा ।
नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवशजा ॥
सम्प्रवर्तेत नेतास्या देव्यास्त्रासेन शङ्कित ।
देवी भवेत्पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवशजा ॥
पदे पदे मानवती तद्वश संगमो द्वयो ।
वृत्ति. स्यात्कैशिकी स्वल्पविमर्शा सन्धय पुन ॥

अर्थात् नाटिका वह उपरूपक है, जिसका वृत्त कल्पित होता है । उसमे स्त्री-पात्र ही अधिक चित्रित होते हैं । इसका चार अकों मे समाप्त होना आवश्यक है । इसका नायक प्रख्यात राजवश का धीरललित प्रकृति वाला राजा होना चाहिये । नायिका का नायक के अन्त पुर से सबद्ध होना अथवा सगीतकला मे निपुण होना, राजकुलोत्पन्न होना तथा नवानुरागवती कन्या होना अपेक्षित है । नायक नायिका का पारस्परिक रतिभाव देवी अथवा राजमहिषी के भय से युक्त तथा उनका सगम उसके अधीन होना चाहिये । देवी या राजमहिषी, राजकुलोत्पन्ना, प्रगल्भा, पग पग पर मान करती हुई चित्रित की जानी चाहिये । इसमे 'कैशिकी

१ कर्पूरमजरी १–६ ।
२. दशरूपक . धनजय ३ ४३ ४८ ।
३ नाट्यशास्त्र : भरत १८।५७–६१ ।

वृत्ति का प्राधान्य रहना चाहिये। विमर्शसन्धि के अंशमात्र से सन्धि-चतुष्टय की रचना होना चाहिये।

कर्पूरमंजरी की रचना करते समय राजशेखर के मस्तिष्क में नाटिका के उक्त सभी लक्षण विद्यमान थे किन्तु 'नाटिका' को 'सट्टक' का नेपथ्य-परिधान कराने के लिये उन्होंने जिस सामग्री की सहायता ली, वे ही आगे चलकर सट्टक की निजी विशेषतायें बन गयीं। जैसे—

(१) नाटिका में प्रयुक्त 'अंक' के स्थान पर 'जवनिका' शब्द का प्रयोग।
(२) नायिका के नाम पर ही सट्टक का नामकरण।
(३) नृत्य का अनिवार्य रूप से प्रयोग।
(४) सम्पूर्ण पात्रों द्वारा मात्र प्राकृत भाषा का व्यवहार।

. राजशेखर के परवर्ती नाट्यकारों तथा आचार्यों ने उनके द्वारा दी गई 'सट्टक' की परिभाषा का समीक्षण करते हुए अपने अपने ढंग से उसे साहित्य में प्रतिष्ठित किया।

आचार्यों में अभिनवगुप्त, हेमचन्द्र, सगरनन्दी, शारदातनय एवं विश्वनाथ ने सट्टक के विषय में विचार किया है। अभिनवभारतीकार अभिनवगुप्त के मतानुसार[1] सट्टक, कोहल आदि द्वारा लक्षित 'त्रोटक' एवं रासक के समान ही नाटिका का एक भेद है।

"उक्त व्याख्याने तु कोहलादिलक्षितत्रोटक सट्टकरासकादिसङ्ग्रह फलं नाटिकाया उदाहरणत्वादिति। अतएव न दशसंख्याविभागार्थो येन सट्टकादीनां त्यागः स्यात्।

हेमचन्द्र ने केवल प्राकृत में ही लिखी गई विष्कम्भक एवं प्रवेशक-रहित नाटिका को सट्टक माना है—

'सट्टकश्च कैश्चित्। विष्कम्भक-प्रवेश-रहितो यस्त्वेकभाषया भवति अप्रसंस्कृतप्राकृतया सट्टको नाटिका-प्रतिम।[2]

शारदातनय सट्टक-विषयक विकसित विचार प्रणाली के समर्थक हैं। राजा की भाषा के विषय में परवर्ती आचार्यों में मतभेद हो गया था। इसकी प्रतीति शारदातनय के 'नवदेत् प्राकृती भाषा राजेनि कतिचिज्जगु" शब्दों में की जा सकती है।[3] उक्त उद्धरण में शारदातनय ने सट्टक में

१. नाट्यशास्त्र भाग २ पृ. ४०७।
२ काव्यानुशासन हेमचन्द्र पृ० ४३२।
३. भावप्रकाशन शारदातनय नवम प्रकाशन पृ० २६९।

समस्त सन्धियों को बहिष्कृत कर दिया है। सागरनन्दी के विचारों से सट्टक नाटिका का ही प्रतिरूप है। इसमें 'कैशिकी एवं भारती' वृत्ति प्रधान होती है। उसमें रौद्र, वीर, भयानक एवं बीभत्स रस, तथा अवमर्श सन्धि का अभाव होता है।[1] अङ्क के स्थान पर यवनिका शब्द प्रयुक्त किया जाता है। शौरसेनी, प्राच्या और महाराष्ट्री के माध्यम से पात्र वाग्व्यवहार करते हैं। राजा-प्राकृत-भाषी होता है और स्त्री-पात्रों का बाहुल्य होता है।

"सट्टकं नाटिका-भेदो नृत्यभेदात्मकं भवेत्।
कैशिकी भारतीयुक्तहीन-रौद्ररसादिकम् ॥
सर्वसन्धिविहीनस्य नाटिका-प्रतिरूपकम्।
शूरसेनमहाराष्ट्र-प्राच्य-भाषादिकल्पितम्।
अङ्कस्थानीयविच्छेद-चतुर्यवनिकान्तरम् ॥
छादनस्खलनभ्रान्तिनिह्नवादेरसम्भवात्।
न वदेत प्राकृती भाषा राजेति कतिचिज्जगुः ॥
मागध्या शौरसेन्या वा वदेद्राजेति केचन।
नाटिकाप्रतिरूपं यद्विशेषो रूपकस्य तत् ॥
सट्टकं तेन तस्याद्दु भाषा ता प्राकृती परे।
राजशेखर-क्लृप्तं तद् यथा कर्पूरमञ्जरी ॥

अन्तर्यवनिकान्तर यथाङ्के यवनिकयावच्छेदा भवन्ति तथात्रापि। शौरसेनी-प्राच्यामहाराष्ट्रीयुक्तम्। स्त्रीवद्राज्ञोऽपि प्राकृतपाठ यद्यपि बादरायण प्रभृति-भिरुक्तं राज्ञ संस्कृतपाठ। कार्याद् प्राकृतपाठ। तत्र रूपकमिदेदकार्यमिति राज्ञापि प्राकृतपाठ कर्तव्य। सट्टके स्त्रीप्रधानत्वाद्रूपकस्यानुरोधेन नृप स्त्रीवन्नर्देव पाठस्य नियतो विधि ।[2]

विश्वनाथ भट्ट ने संक्षिप्त सारगर्भित शब्दों में सम्पूर्ण सट्टक परम्परा के लक्षणों को उद्घाटित किया है। उनके अनुसार उक्त साहित्यशास्त्रियों के अतिरिक्त घनश्याम, रुद्रदास, नयचन्द्र, विश्वेश्वर और मार्कण्डेय ने भी कर्पूरमञ्जरी के आदर्श पर क्रमशः 'आनन्दसुन्दरी' 'चन्द्रलेखा' 'शृङ्गारमञ्जरी' 'रम्भामञ्जरी' एवं 'विलासवती' की रचना की है।

---

१. नाटक रत्नकोष—सागरनन्दी पृ० १३३–१३४।
२. नाटक रत्नकोष सागरनन्दी, पृ० १३३–१३४।

क्योंकि नायिका से राजा के मिलने का समाचार पाकर रानी उसी ओर आती है । कुब्ज, वामन, किरात, वर्षवर और सौविदल्ल शोर मचाते हैं । नायक-नायिका चले जाते हैं ।

चतुर्थ जवनिका में राजा ग्रीष्म की प्रचण्डता और काम की प्रखरता से व्यथित दिखाई देता है । वह ग्रीष्म ऋतु की सेवनीय वस्तुओं का वर्णन करता है । उसे ज्ञात होता है कि कर्पूरमंजरी को भी कारावास के कठोर नियंत्रण में रखा गया है । और दरवाजों को पत्थरों से नीरन्ध्र करके ढँक दिया गया है । पूर्वदिशा में पाँच चँवर डुलाने वाली, चमकती तलवारों से युक्त, हजार पैदल सिपाहियों के साथ रक्षा के लिये नियुक्त की गई हैं । उसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में क्रमशः पाँच सैरन्ध्रियाँ और हजारों धनुष वाले और ढाल तलवारों से लैस पैदल सिपाहियों समेत नियुक्त की गई है । इन सबका अध्यक्ष पद पाँच कुमारी परिचारिकाओं ने, जो कि हाथ में सोने के डण्डे लिये हुए हैं, सम्हाल रखा है । राजा को रानी की ओर से वटसावित्री महोत्सव देखने का निमन्त्रण मिलता है । केलिविमान पर चढ़कर राजा और विदूषक इस अवसर पर आयोजित चर्चरीनृत्य देखते हैं । पुनः एक बार भैरवानन्द आते हैं । इस समय वे गौरी-प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा कराते हैं । रानी द्वारा दक्षिणा के लिये प्रार्थना करने पर भैरवानन्द दक्षिणा के रूप में घनसारमंजरी का राजा के साथ विवाह माँगते हैं । रानी किसी दूसरी कन्या को घनसारमंजरी समझकर विवाह रचाती है, किन्तु घनसारमंजरी कर्पूरमंजरी ही होती है । अतः रानी भ्रम में पड़ती है । कारागार में जाकर देखती है तो उसे कर्पूरमंजरी बैठी दिखाई देती है । चामुण्डा के मंदिर में भी वही स्थिति है, अन्त में भेद खुल जाता है । राजा और कर्पूरमंजरी का विवाह हो जाता है । उसे चक्रवर्ती पद भी अनायास मिल जाता भरतवाक्य के साथ कथा की समाप्ति होती है ।

कथावस्तु—कर्पूरमंजरी में चण्डपाल एवं कर्पूरमंजरी को प्रणय कथा व मिलन । ये दोनों फलभोक्ता हैं । विचक्षणा एवं विदूषक की वाक्गोष्ठी, जो कि प्रासंगिक कथा के रूप में रखी गई है, प्रथम जवनिका के अन्त तक चलती है । इससे सट्टक का प्रारम्भ आकर्षक बनाने में सहायता मिली है । विदूषक की उक्ति कि ऐसे राजकुल का कल्याण हो जहाँ दासी ब्राह्मण के साथ प्रतिस्पर्धा करती है ।[1] तत्कालीन राजकुलों की स्थिति पर प्रकाश डालती है ।

---

१. कर्पूरमंजरी १-२० "हरिमहल रायउलम्मि जह जोदु जहिं
चेडिआ बह्मणेण सम समीगिघासु दीसहि ।"

आधिकारिक कथावस्तु में पाँचो अर्थप्रकृतियो (बीज, बिंदु, पताका प्रकरी और कार्य) का निर्वाह हुआ है। फलसिद्धि का प्रथम हेतु बीज होता है। भैरवानन्द की अद्भुत सिद्धि द्वारा अद्वितीय सुन्दरी कर्पूरमजरी के अवतरण से राजा चण्डपाल अत्यन्त विस्मित है। 'चित्ते लिहुज्जदण कस्स वि सजमती'[१] (यह नायिका किस पुरुष के हृदय पटल पर चित्रित नही होती)—"जेणं सोसण-मोहणप्पुहदिणो विज्झति म मग्गणा[२] —"। इसे देखकर कामदेव के शोषण और मोहन वाण मुझे व्याकुल कर रहे है—राजा के इन उद्गारो से "बीज" अर्थ-प्रकृति की स्थापना हो गई है। इसके पश्चात् बीज उत्तरोत्तर विकसित होता है। नायक (राजा) नायिका का पारस्परिक पूर्वानुराग, दर्शनाभिलाषा इत्यादि द्वितीय एव तृतीय जवनिका के अन्तिम दृश्य तक अविच्छिन्न बनी रहती है। यहाँ तक कथावस्तु के विन्दु का प्रसार लक्षित होता है। चतुर्थ जवनिका मे नायिका के कारावास से मूल प्रवाह मे बाधा उपस्थित होती है, किन्तु भैरवानन्द के सफल प्रयास से सट्टक का मुख्य लक्ष्य नायिका (कर्पूरमजरी) की प्राप्ति एवं परिणय-सिद्ध हो जाता है।

पाँच कार्यावस्थाओ—आरम्भ यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एव फलागम—से पाँचो अर्थ-प्रकृतियो का सयोग होता है। मुख्य फल की सिद्धि के लिये उत्कठा को "आरम्भ" कहते हैं। प्रथम जवनिका मे बीज अर्थप्रकृति के साथ ही "आरम्भ" की अवस्था भी प्रारभ हो गयी है। द्वितीय जवनिका मे नायिका का प्रणयपत्र कि "अपने से प्रेम करने वाली हसिनी को कुकुमराग से सजाकर पुन भूल मे ही उसे चक्रवाकी समझाने वाला हस उसे छोड देता है। यह मेरे दु खद पापो का ही परिणाम है कि तुम्हारे एक स्थान पर रहने पर भी मैं तुम्हें देख नही पाती हूँ" इस अवस्था को और भी प्रस्फुटित करता है। इसी सदर्भ मे "यत्न" की अवस्था का भी प्रारभ है। नायक के यत्न मे विदूषक एव नायिका के यत्न मे विचक्षणा फलागम के लिये प्रयत्नशील है। तृतीय जवनिका मे विचक्षणा एव विदूषक के प्रयास द्वारा नायक एव नायिका के मिलन के 'यत्न' की अवस्था फलागम की सीमा को स्पष्ट करती प्रतीत होती है। इसी समय रानी को वस्तु स्थिति का ज्ञान हो जाता है। वह नायिका को कठोर नियत्रण मे रखती है। प्राप्त्याशा का यह सही रूप है। फल प्राप्ति की सभावना धूमिल धूसरित होती है। किन्तु भैरवानन्द द्वारा माँगी हुई गुरुदक्षिणा 'नियताप्ति' की दशा का आरम्भ सूचित करती है।

१ कर्पूरमजरी १–२७।
२. वही १–३२।

नियताप्ति गूढ है । 'जब तक दर्शक कर्पूरमंजरी को रंगमंच पर नहीं देख लेते, घनसारमंजरी उनके लिये पहेली बनी रहती है । विदूषक की यह उक्ति कि—"प्रिय मित्र मैं दुपट्टे में गाँठ लगाता हूँ, तब तक अपने हाथ से कर्पूरमंजरी का हाथ पकड़ो" नियताप्ति को स्पष्ट कर देती है । चतुर्थ जवनिका का अवसान फलागम से होता है । राजा को कर्पूरमंजरी तथा चक्रवर्ती पद की प्राप्ति रूप फलागम सुख से सम्पन्न हो जाता है ।

उपर्युक्त पाँच अर्थ प्रकृतियों एवं पाँच कार्यावस्थाओं का क्रमिक संयोग पंचसन्धियों को उद्भूत करता है ।

कर्पूरमंजरी की प्रथम जवनिका में नायिका के दर्शन से लेकर नायिका के प्रणयपत्र द्वारा प्रणयनिवेदन पर्यन्त 'मुखसन्धि' का विस्तार माना जा सकता है । द्वितीय जवनिका से तृतीय जवनिका तक 'प्रतिमुख' सन्धि का निर्देशन है क्योंकि नायक और नायिका परस्पर मिलन के लिये प्रयत्नशील हैं । चतुर्थ जवनिका के प्रथम दृश्य में नायिका के बन्दी होने का वर्णन है । यह 'गर्भसन्धि' है । भैरवानन्द द्वारा नायिका को बन्धनमुक्त कर विवाहपीठिका पर आसीन करने के प्रयास-पर्यन्त 'अवमर्शसन्धि' तथा वहाँ से नायक नायिका के विवाह तक निर्वहण सन्धि की व्याप्ति मानी जा सकती है। कथानक का कार्यावस्था, अर्थ-प्रकृति एवं सन्धियों में उचित गुम्फन राजशेखर के शिल्प कौशल का प्रमाण है।

निष्कर्ष : केवल बालरामायण के कथानक में अनावश्यक विस्तार मिलता है जो वस्तु सविधान में शैथिल्य उत्पन्न कर देता है । इस त्रुटि की उपेक्षा की जाय तो राजशेखर का वस्तु-संविधान सभी कृतियों में अच्छा हुआ है । शास्त्रीय पद्धति पर होने के कारण उसमें तत्सबंधी सभी विशेषतायें यथास्थान मिल जाती हैं ।

राजशेखर के रूपकों में चरित्र-चित्रण:—कथानक पात्रों की सहायता से अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है । अत रूपक का दूसरा तत्व चरित्र-चित्रण भी अवलोकनीय है ।

अन्तःपुर की प्रणयलीलाओं का उद्घाटन करने वाली राजशेखर की दो कृतियों कर्पूरमंजरी एवं विद्धशालभंजिका के पात्रों की संख्या एवं उनके कार्य भी भिन्न नियत हैं । राजा, राजा का सहचर विदूषक, राज्य शासन के कर्मचारी मंत्री, संदेशवाहक दूत, तथा स्त्री पात्रों में महादेवी एवं दूती, प्रतीहारी, परिचारिका ने ही घटनाचक्र को आगे बढ़ाया है ।

बालरामायण : राम-कथाश्रित नाटक होने के कारण राम के जीवन से सम्बन्धित मर्त्य लोक में स्वर्ग्य पात्रों की सृष्टि दिखाई गई है । बालरामायण के

पात्र आदर्श होते हुए भी मानवीय धरातल पर चलते हैं । वे जन मानस के समीप प्रतीत होते हैं । इसीलिये ६७ पात्रो से युक्त यह नाटक 'पात्रो का जंगल' प्रतीत नही होता । चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रधान पात्र राम, रावण तथा सीता हैं । इनका व्यक्तित्व सम्पूर्ण नाटक मे बिखरा हुआ है । पात्रों का बहुल्य इस नाटक की विशेषता है । इन तीन पात्रो को छोडकर शेष पात्र सहायको की कोटि मे रखे जा सकते हैं । नाटक के समस्त पात्रों का वर्गीकरण मानुष एव दिव्य श्रेणी मे किया जा सकता है । दिव्य पात्र यदि मर्त्य लोक मे अवतरित होता है तो उसे दिव्यमर्त्य कहा जा सकता है तथा यदि मर्त्य मृत्यु के पश्चात् या कारणवश दिव्य लोक में जाता है तो उसे मर्त्यदिव्य । इस आधार को ध्यान मे रखकर पात्रो का विभाजन निम्नानुसार किया गया है ।

पात्र

द्विज	स्त्री	पुरुष	दिव्य	मर्त्यदिव्य	दिव्य मर्त्य
जटायु			पुरन्दर	दशरथ	
सुवेग	सीता	शुन शेप	चित्रगुप्त	कैकेयी	नारद
चित्र-	प्रतीहारी	मायामय	यमपुरुष		
शिखड	हेमप्रभा	रावण			
	सौदामिनी	प्रहस्त			
	प्रभजनिका	जनक			
	सिन्दूरिका	शतानन्द			
	शूर्पणखा	मृगिरीटि	पुरुष	पुरुष	
	कैकेयी	जामदग्न्य			
	सुमित्रा	माठर	सुग्रीव	बन्दी	
	कौशल्या	ऋचीक	विभीषण	करकक	
	गगा	पुलस्त्य	अगस्ति	ककालक	
	यमुना	विश्वामित्र	सिहनाद	कुम्भकर्ण	
	त्रिजटा	राम	वशिष्ठ	चारणमिथुन	
	लका	लक्ष्मण	भरत	कपित्थ	
	अलका	माल्यवान्	शत्रुघ्न	दधित्थ	
	लोपामुद्रा	मातलि	सुमुख	हनुमान्	
		सुमन्त्र	दुर्मुख		
		वामदेव	समुद्र		
		कर्पूरचण्ड	उपाध्याय		
		चन्दनचण्ड	भवभूति		
		प्रतीहारी	कोहल		

नायक : इस नाटक के नायक राम हैं । नायक के समस्त गुण उनमे विद्यमान हैं । वे आत्मश्लाघा की भावना से रहित है । क्षमाशील अत्यन्त गभीर, दुःख सुख मे प्रकृतिस्थ, स्वाभिमानी किन्तु विनीत हैं । उनका हृदय कोमल है । वे मृत्यु आदि के अवसरो पर अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं । ऐसे अवसरो पर कोई उनकी स्तुति करे यह उन्हें सहन नहीं व्यक्ति की स्तुति तो तभी उचित है जब कोई अपना पराक्रम दिखाये । अत. वे रावण-वध तक अपनी स्तुति पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं ।[1] आत्मश्लाघा के प्रति उनकी विरक्ति इस प्रसग मे दृष्टिगत होती है । नम्रता तो उनके रोम रोम में विद्यमान है । समर्थ होते हुए भी वे समुद्र से मार्ग देने की अभ्यर्थना करते हैं । परन्तु जब वह मार्ग न देने की धृष्टता कर, उनकी नम्रता को अवहेलित करता है तब विवश होकर उन्हें शस्त्र ग्रहण करना पडता है ।[2] परन्तु समुद्र की क्षमा याचना पर वे उसे क्षमादान ही नहीं करते, अपनी ओर से भी उससे क्षमा माँगते हैं ।[3] इस प्रसग मे उनकी विनम्रता, स्वाभिमान, और क्षमाशीलता की चरम सीमा दीख पडती है । राम गुरुजनो के प्रति श्रद्धा रखते हैं । यही कारण है कि परशुराम से अधिक शक्तिशाली होने पर भी वे उनके क्रोध के सम्मुख नतमस्तक होकर क्षमा याचना करते हैं ।[4] फिर भी जब परशुराम अहमन्यता नहीं छोडते तो वे द्वद्वयुद्ध के लिये परशुराम को ललकारते भी हैं । इस प्रकार राम मे कोमलता एव कठोरता का उचित मिश्रण है । रामायण के नायक राम की पितृभक्ति की तुलना मे बालरामायण के नायक राम की भक्ति कहीं अधिक है । दशरथ का वेश धारण किये यक्ष को भी वे अवहेलना नहीं करते और चल पडते हैं । यह पितृ-भक्ति की पराकाष्ठा है ।

राम मे समस्त गुणो की विद्यमानता देकर राजशेखर ने उनके नायकत्व एव आदर्श चरित्र को पुष्ट किया है किन्तु राम का परिचय नाटक मे अत्यन्त विलम्ब से दिया गया है । दर्शक उनके गुणो का श्रवण प्रथम अक मे के आरभ से करते हैं किन्तु उनका प्रत्यक्ष दर्शन चतुर्थ अक मे ही हो पाता है ।

खलनायक : रावण का चित्रण खलनायक के रूप मे किया गया है ।

---

१. बालरामायण अध्याय ७।१८३—ननु रामदेवेन निषिद्धमात्मोपवर्णनमादशरथ स्वर्गारोहणश्रुते रादशकण्ठवधम् ।

२ वही अध्याय ७ पृ० १८४—स्मृत्वा तदेहि सगर च भगीरथ च,
दृष्ट्वा्य वा गम धनुश्च शिलीमुखाश्च ।

३. वही अध्याय ७ पृ० १८९—भगीरथ भगवान् रत्नाकर नमस्ते नन्वह प्रशास्यं भगवत. सागरस्य तदेकवारमविनयो नयो वा क्षम्यता रामस्य ।

नायिका सीता के प्रति अनुराग और उसके भावी पति अर्थात् नायक से स्थायी शत्रुता रावण के खलनायकत्व का प्रमाण है। इसका सारा व्यापार सीतानुराग पर आधारित है। द्वितीय अङ्क में सीता का स्मरण तृतीय अंक के सीता स्वयंवर गर्भाङ्क में सीता के प्रति उत्सुकता एवं वरण करने वाले के प्रति विद्वेष उसकी इसी भावना को पुष्ट करता है। प्रतिद्वंद्वी राम को देखकर उसका खून खौल उठता है। सीता के लिये वह घोर अपमान भी सह सकता है।[1] यह बात वह स्वयं अपने मुख से कहता है।

सीता के विरह में वह पागलों की तरह प्रलाप करता है। प्रकृति की रमणीयता उसे सीता के सौंदर्य का आभास दिलाती है। यन्त्र-जानकी को वास्तविक समझकर वह उससे प्रणयनिवेदन करता है। यन्त्र-जानकी का रहस्य उद्घाटित होने पर वह मनोविनोदन के लिये षड्ऋतुओं का आश्रय लेता है किन्तु उसकी विरहवेदना द्विगुणित होती जाती है। सीता हरण के विचार सदा उसके मस्तिष्क में घूमते रहते हैं। राम के अवरोध को सदा के लिये नष्ट करने की भावना भी उसके मन में स्थायी रूप से बनी रहती है। सेतुबन्ध में सीता के छद्म मस्तक को फेंकने का उद्देश्य भी यही है। रावण अत्यन्त वीर है। वह वर्णाश्रमों का अधिष्ठाता है। उसे अपने पराक्रम एवं प्रभुता का अभिमान है।

अन्य जनों को वह तुच्छ समझता है। "अविमृश्यकारिता हि पुन परं परिभवस्थानम्।"[2] यह उसका आदर्श वाक्य है। क्रूरता उसकी सामान्य प्रवृत्ति है। अपने स्वार्थ के लिये अपने ही परिवार की बलि देने पर भी वह केवल रोकर ही सन्तोष कर लेता है। वह खलनायकत्व की कसौटी पर खरा सिद्ध होता है।

सीता : नायिका सीता नाटक के पहले पाँचवें और फिर दसवें अङ्क में रंगमंच पर दिखाई देती है। वह भी अद्वितीय सुन्दरी है। ब्रह्मा ने मानो सारे संसार के सौन्दर्य को निचोड़कर सीता में उंडेल दिया है।

"संसारसारनिष्यन्देन विधाय वेधा"[3]

रावण उसके अपूर्व सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाता है। सीता को देखकर उसकी

---

१ बालरामायण अध्याय १ पृ० २६—यद्वा सीता स्नेहो मामन्तेर्वा प्रतापवान् दशकण्ठ ईदृशानां भवता सोढा।

२. बालरामायण अध्याय १ पृ० २१—अनुचित राजन्यरावण इत्यतो गुणनिधाय

३. बालरामायण अध्याय १ पृ० २३।

४. बालरामायण अध्याय २ पृ० ४३।

वाणी मुखरित हो उठती है । इनकी निरुपम रूप-सम्पदा नाटकीय संघर्ष के मूल में है । प्रथम अंक में स्वयंवर के समय चक्रवर्ती राक्षसराज को देखकर वे भय से काँप जाती हैं । शिवधनुष की ओर रावण को बढ़ते हुए देखकर पृथ्वी से प्रार्थना करती हैं कि इससे पहले कि रावण धनुष चढ़ाये, वह उसे अपने भीतर समा ले । स्त्रीसुलभ स्नेह से सीता परिपूर्ण है । विदाई के समय वह रो पड़ती है, तथा पिता से माण्डवी श्रुतकीर्ति आदि को भी साथ भेजने का अनुरोध करती है । वनगमन प्रसंग में उसके गृहस्थ जीवन का प्रारंभ होता है । पथिक वधुएँ उसे शिक्षा देती हैं ।[1] फलों का भोजन, घने जंगल में निवास, मृग-चर्म की शय्या पर शयन उनकी दैनन्दिनी चर्या है ।

त्वक्तारवी निवसन मृगचर्म शय्या
गेह [गुहा विपुलपत्रपुटा घनाश्च ।
मूल दल च कुसुम च फल च भोज्य ॥[2]
पुत्रस्य जातमटवी गृह मेधिनस्ते

वे पति परायणा एव गुरुजनों के प्रति श्रद्धालु हैं । रावण-वध के पश्चात् अग्नि-परीक्षा में निष्कलुष सिद्ध होने के पश्चात् अयोध्यागमन के समय उन्होंने भिन्न भिन्न देशों के दर्शन किये किन्तु स्वयंवर प्रसंग में उन्होंने भिन्न-देशीय राजाओं की जो विशेषतायें बतलाई हैं वे न केवल उनके राजनीतिक ज्ञान का दर्शन कराती हैं, अपितु सम्पूर्ण देश के जन-जीवन एव उसकी राजनीतिक हलचलों से उसका सुपरिचय व्यक्त करती है ।

जामदग्न्य : परशुराम की अवतारणा द्वारा राजशेखर के नाटक को वीर रस पूर्ण बना दिया है। पहली बार परशुराम का रावण के साथ तीव्र संघर्ष होता है। और दूसरी बार वे राम के साथ संघर्षरत दीख पड़ते हैं। रामायण में वर्णित परशुराम के गुण नाटकीय परशुराम में भी विद्यमान हैं। प्रसंगानुसार इनकी जीवन घटनाओं यथा—पिता की आज्ञा से माता का शिरश्छेद,[3] इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करना[4], कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन का वध[5] आदि का उद्घाटन किया गया है। वे आजन्म वैखानस हैं।[6] वे 'श्रुत्यर्थवीथीगुरु'[7] उपाधि से विभूषित हैं।

१. बालरामायण अध्याय ५।३६ २ बालरामायण ६–४० ।
३ वर्त्ता मातृवधेनस वालरामायण। २।१३–पृ० ३२ ४. वही २।१३–पृ० ३२
५. त्रिसप्तावधि वाधिता क्षितिभुजा २।१३–पृ० ३२
६. क्षितिभुजामाजन्म वैखानस म सकलश्रुत्यर्थ वीथीगुरु २।१३–पृ० ३२ ।
७. " वही " २।१३ पृ० ३२
८. स खल महर्षिर्भूत्वा समरसमारम्भ-महाग्रहगृहीत. । ४।०-१

वे नित्य धनुर्धारी हैं। धनुर्दशविद्याओं के अध्येता एवं अध्यापक हैं, किन्तु राम द्वारा शिवधनुष के भग होने की वार्ता सुनते ही वे समस्त अध्यापन कार्य स्थगित कर देते हैं और युद्ध की तैयारी करते हैं।

दशरथ : वे यशस्वी सम्राट् हैं जो इस जीवन ही में स्वर्ग-लोक की यात्रायें करते हैं, तथा मरणोपरान्त स्वर्ग में रहकर भी मर्त्यलोक की सम्पूर्ण गतिविधियों से सपर्क बनाये रखते हैं।

दशरथ को सर्वप्रथम चतुर्थ अंक में राम-सीता-विवाह के पश्चात् मिथिला में दिखाया गया है। षष्ठ अंक मे दिखाया गया है कि उनकी स्वर्ग यात्रा के समय नकली दशरथ राम को निर्वासित कर देते हैं। अत वे इस महान् दुष्कर्म मे कलकित नहीं हैं। राम वनगमन का समाचार सुनकर भी वे जीवित हैं परन्तु सीताहरण का समाचार सुनकर वे सगम मे जाकर प्राण त्याग कर देते हैं। परम वीर दशरथ की जीवितावस्था मे ही सीता-हरण जैसी दुखदायी घटना हो गई और उनमें क्षत्रियोचित वीरत्व के स्थान पर असह्य उत्पीडन क्यो जागा ? 'धनु. धनु' कहकर वे चुप क्यो बैठ गये ? लगता है कि नाटककार तत्कालीन पुरुषत्वहीन, अकर्मण्य चरित्रो को दशरथ के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहते थे, किन्तु यदि यही कारण है तो क्या वे उसे अन्य उचित व्यक्ति के द्वारा अभिव्यक्त नही करा सकते थे ? रामायण में दशरथ का स्थान गौरवास्पद है। नाटक में ऐसे पात्रों को इतना गर्हणीय दिखाना सगत प्रतीत नहीं होता। सातवें अक मे दशरथ की मृत्यु का उल्लेख है। नवम अक मे वे दिव्य रूप मे राम-रावण-युद्ध का दर्शन करते हैं।

जनक : नाटक मे जनक की भूमिका अत्यल्प है। सीता स्वयवर एव सीता विवाह प्रसग मे ही वे दिखाई देते हैं। शान्त, दान्त एव विरक्त होने पर भी वे रावण द्वारा की गई शिवधनुष की अवज्ञा से क्रुद्ध होकर शस्त्रग्रहण करने एव उसका निवारण करने के लिए शाप देने तक को तैयार हो जाते हैं। इसका कारण है शिव के प्रति अगाध श्रद्धा और सीता के प्रति अपार स्नेह। सीता की बिदाई के समय वे रो पडते हैं।

शतानन्द : शतानन्द और जनक एक-दूसरे पर आश्रित हैं। नाटक मे दोनो एक साथ आते और जाते दिखाये गये हैं। सीता स्वयवर एव सीता विवाह में जनक के कार्य भार को हलका करने की प्रवृत्ति शतानन्द के व्यवहार से प्रकट होती है।

वशिष्ठ : कुलगुरु वशिष्ठ को केवल प्रथम और अंतिम बार राज्याभिषेक के समय दिखाया गया है।

नाटक मे रामायण युद्ध प्रसग से संबन्धित जिन पात्रों की गणना की जा सकती है, वे हैं—हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण, दधित्थ, कपित्थ, सुमुख, दुर्मुख, सिंहनाद, कुम्भकर्ण, कंकालक एवं करक।

हनुमान् के चरित्र में राम के प्रति भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति है। सेतु-निर्माण तथा सेनासगठन के प्रति वे अत्यन्त उद्योगशील हैं। सेनापतियों को आदेश देते हैं कि वे पर्वत उठाकर लायें। इनका युद्धों के सचालन मे विशेष योगदान है।

सुग्रीव एवं विभीषण भी राम के सहायक रूप में दृष्टिगत होते हैं। दधित्थ एवं कपित्थ दो वानर हैं। जिनका सेतु-निर्माण मे विशेष महत्व है। सुमुख एवं दुर्मुख राक्षस-पक्ष के दूत हैं, जो त्रिजटा को युद्ध का समाचार देते रहते हैं। करक और कंकालकइसी कार्य के लिये नियुक्त हैं। वे राक्षसराज को युद्धवार्ता से परिचित रखते हैं।

सिंहनाद और कुम्भकर्ण राक्षसपरिवार के प्रमुख सदस्य हैं। सिंहनाद रावण का पुत्र है। वह राम तथा लक्ष्मण को ललकारता है। किन्तु शीघ्र ही इसके दर्प का दलन हो जाता है। वह राम के द्वारा मारा जाता है। इसी प्रकार कुम्भकर्ण और मेघनाद की मृत्यु क्रमश राम और लक्ष्मण द्वारा बतलाई गई है।

कतिपय पात्र घटना-निर्देश के रूप में दिखाये गए हैं। प्रथम अंक मे शुन शैप एवं तापस की अवतारणा, द्वितीय अंक में भृंगिरिटि तथा नारद का प्रवेश, तृतीय अंक में गृध्रमिथुन सुवेग तथा चित्रशिखण्ड का प्रदर्शन, चतुर्थ अंक में उपाध्याय शिष्य का दिग्दर्शन, पचम अंक में मायामय की योजना, छठे अंक मे वामदेव, सुमन्त्र एवं रत्नशिखण्ड का प्रवेश, आठवें अंक मे सुमुख, दुर्मुख की अवतारणा, नवम अंक मे यमपुरुष का अवतरण, तथा दसवें अंक में अलका एवं लंका का मानवीय चित्रण कथानक में समन्वय या सगति की दृष्टि से किया गया है।

परिचारक वर्ग के अन्तर्गत प्रहरत, प्रतीहार आदि आ सकते हैं। कर्पूरचण्ड तथा चन्दनचण्ड वैतालिक हैं जो प्रहरों की सूचना आश्रयदाता के यशोगान के साथ देते हैं। बन्दी-माध्यन्दिन सन्ध्या एवं प्रभात की सूचना देता है। माठर ऋचीक एवं पुलस्त्य, विद्यास्नातक हैं।

इस नाटक में स्त्री पात्रों का बाहुल्य है। सीता की दो नामरहित सखियाँ, उनके साथ रहती हैं। हेमप्रभा भी उनकी अभिन्नहृदया है। सौदामिनी चामर-धारिणी है। सिन्दूरिका यन्त्र-जानकी की सहेली है। प्रभंजनिका रावण की परिचारिका है।

राजशेखर ने गंगा और यमुना का तथा लंका के मानवीकरण द्वारा क्रमश. उन्हें समुद्रपत्नियों एवं दशकण्ठपत्नी के रूप में दिखाया गया है। लका दशकण्ठ की मृत्यु पर शोक प्रदर्शित करती हुई आत्महत्या के लिए उद्यत होती है किन्तु अलका उसे सान्त्वना देती है।

कैकयी—कैकयी के चरित्र की विशेषता उसके निर्दोष चित्रण करने में है। राम वन गमन से वह अतिदु खी है। अपने को कोसती रहती है। राम की माता के रूप में सुमित्रा और कौशल्या का भी चित्रण किया गया है।

त्रिजटा—राक्षसी होते हुए भी त्रिजटा सीता के प्रति सद्भाव रखती है। वह सदा सीता का हित चाहती है। वह सुमुख तथा दुर्मुख की सहायता से नरांतक वध, कुम्भकर्ण-जागरण आदि के समाचार सीता को पहुँचाती है। रावण वध के पश्चात् त्रिजटा सीता के साथ पुष्पक पर चढकर अयोध्या की यात्रा करती है।

शूर्पणखा—रावण की बहिन है। वह राजकार्य की सपादयित्री भी है। सीताहरण के लिए वह भूमिका बनाती है। कैकयी के वेश में वह सफलतापूर्वक राम-निष्कासन की योजना का क्रियान्वयन करती है। इस नाटक में शूर्पणखा की सक्रिय भूमिका है।

लोपामुद्रा—राम अगस्त्य एव लोपामुद्रा के आश्रम में दो मिनट के लिए जाते है। आशीर्वाद लेकर पुन लौट आते है। लोपामुद्रा साध्वी है तथा सौजन्य की मूर्ति बतलाई गई है।

राजशेखर ने 'बालरामायण' के पात्रों की विशेषतायें अनेक पूर्ववर्ती राम-काव्यों से चुनी हैं। नवीनता को उद्भूत करने के लिए उन्होंने कतिपय पात्रों में एक विशेषता बतलाई है जैसे रावण के चरित्र में शृंगारिक भावनाओं का प्राधान्य, दशरथ में अपौरुष, कैकयी का निर्दोषत्व, आदि।

विद्धशालभंजिका :

नेता—प्रमुख पुरुष पात्र राजा विद्याधरमल्ल है। यह धीरललित नायक[1] है। धीरललित नायक निश्चिन्त होता है। कलाओं में उसकी आसक्ति रहती है।

१ निश्चिन्तो मृदुरनिश कलापरो धीरललित. स्यात्। साहित्यदर्पण परिच्छेद ३-३३।३४

वह सुखी तथा मृदु स्वभाव का होता है। राजा विद्याधरमल्ल, राज्य की चिन्ता से मुक्त है। राज्य का सारा भार उसने अपने योग्य मन्त्री भागुरायण को सौंप दिया है। निश्चिन्त होकर वह अपना अधिकांश समय प्रमोदोद्यान में वसन्तग्रीष्मादि ऋतुओं की चर्चा करता हुआ, विविध क्रीडाओं में रुचि लेता हुआ व्यतीत करता है। वह नायिका मृगांकावली के सौन्दर्य का रातदिन स्मरण करता है, किन्तु अपनी रानी को भी दुःखी नहीं देख सकता। वह उसे भी यथाशक्ति प्रसन्न रखने का प्रयास करता है। विद्याधरमल्ल कलाप्रेमी है, अट्ठारह लिपियों का ज्ञाता है। "काव्य में गाम्भीर्य, एवं छन्दो-रीति-गुणों का विन्यास" उसे शीघ्र ही प्रभावित करता है।

दशरूपककार ने मृदु का अर्थ—शृंगार-प्रधान एवं सुकुमार सत्त्वाचार बतलाया है—"शृंगारप्रधानत्वाच्च सुकुमारसत्वाचारो मृदुरिति ललित।"[1] राजा विद्याधरमल्ल अत्यधिक शृंगारी है—उसके अन्तःपुर में हजारों रानियाँ हैं तथापि स्वप्न-दृष्टा नायिका के लिए वह दुःखी है।

"अन्तेउरवासहस्सपरिवारस्स महाराग्रस्स किं तीए विणा विसूरदिति।[2]"

चण्डमहासेन नामक कुन्तलनरेश की कन्या कुवलयमाला स्नान करके निकली ही थी कि राजा ने उसे देखा और उस पर मुग्ध हो गया।

"चण्डमहासेणो णाम राम्रा—–तस्स दुहिम्रा कुमलयमाला णाम णम्मदा-मज्जणुत्तिण्णा देवदिट्ठा हिम्रम्र च मे पविट्ठा।"

नाटिका के विषय में धनंजय एवं विश्वनाथ का कथन है 'अन्तःपुर में नायिका को देखने सुनने से आकृष्ट हुआ नायक नायिका से छिपकर डरता-डरता प्रेम करता है"—विद्याधरमल्ल के विषय में यह बात बिल्कुल सत्य है। वह नायिका का रातदिन चिन्तन करता है किन्तु नायिका जैसे ही उससे मिलने आती है और उसे महारानी के आने की सूचना मिलते ही, वह तुरन्त वहाँ से चल देता है।

विभ्रमलेखा विद्याधरमल्ल की प्रधान महिषी है। वह ज्येष्ठा प्रगल्भा तथा नृपवंशजा है। राजा के शृंगारी स्वभाव को जानकर वह कुवलयमाला का विवाह राजा से कर देती है। परन्तु वह मानवती भी है। राजा के मुख से अस्वाभाविक और अत्यानुरक्ति विषयक संबोधन सुनकर अन्तःपुर को चल देती है।[2] स्नेह पात्र सखियों के सम्मान का भी वह ध्यान रखती है। विदूषक द्वारा मेखला का मजाक उड़ाये जाने पर क्रुद्ध हो जाती है।[3]

---

१ दशरूपक प्रकाश—१-२।३ २ विद्धशालभंजिका—१-१८।१९
३ विद्धशालभंजिका अंक १-२

बात जानने का प्रयत्न करता है। राजा भी उसे अपना रहस्य प्रकट कर मन हल्का कर देता है।

विदूषक !—अहो अस्स हिअअक्खेवो ता कि णु खु एदं—

ता जधापत्तुंयुय प्रापक्व—तो वज्जरहस्सेण ममावेदु म पिअवअस्सो।'
राजा—अये चारायण ! सखे। कथं न कथयामि, लघूभवन्मुहूर्तमवारितरहस्य हि चेत सविभक्तचिन्ताभारमिव भविष्यति।[१]

वह भी राजा को सदा निष्पक्ष सलाह देता है। राजा के अनागरिकत्व से पीडित रानी अप्रसन्न होकर चली जाती है। राजा उसकी स्थिति पर ध्यान नहीं देता तब विदूषक स्पष्ट शब्दों में उसकी भर्त्सना करता है। रानी के प्रति उसके मन में आदर है किन्तु जब रानी पक्षपात करती है तब वह उसके क्रोधित होने की या रोने की भी पर्वाह नहीं करता।

चारायण जाति का ब्राह्मण है। वह सदा यज्ञोपवीत और हाथ में वक्रदण्ड धारण किये रहता है।

एक दासी विदूषक को दुर्वासा कहती है जिससे उसके क्रोधी होने का तथा मलिन वस्त्र धारण करने का सकेत मिलता है। सभवत चारायण विरूप होगा। राजा और विदूषक के कथन से इसकी पुष्टि होती है—

राजा—सखे। त्वमपोऽभिलिखित।

विदूषक—पाह जाणिदो आलिहि दुं। ब्रह्मणी जाणादि जविदमोह, सा मा भणदि तुमं पच्चक्खो कामदेवात्ति।

राजा—अए रिमुखने शुको वदति ?

विदूषक—*किं विय ?*

राजा—अस्ति भवान् देव. किं पुनर्भृंगिरिटि।

विदूषक—को दुग्गणनग्गाण कण्ण देइ।

वह भीरु एव भोजनभट्ट है। मोदक उसे अधिक प्रिय है—एसो सिविण अरद्धाहि मोदएहि गाम उपगिमतमि[२] —। वह उपमायें भी भोज्य पदार्थों की देता है। सिन्दुवार पुष्प उसे भात, अशोक के गुच्छ नव-निर्मित घृत, वासन्ती पुष्प मयूर तथा नवमल्लिका दधि के समान दिखती हैं। "संबन्धि जणणुरुप भुज्ज विपि दिद"।[३]

१ विद्धशालभंजिका–१-१८।१५
२ कर्पूरमजरी १-२६, २७, २९, ३२, ३३

वह भीरुता की व्याधि से भी ग्रस्त है। उसे सन्ध्या के समय निर्जन चौकी के पास ब्रह्मराक्षसों की बोली सुनाई देती है। सन्ध्या भूत-पिशाचों का आवास स्थान है। इस धारणा से वह अत्यधिक परेशान दिखाई देता है।

इस नाटिका से भागुरायण नामक मन्त्री को निकाल दिया जाय तो इस नाटिका का [आरम्भ और अवसान प्रस्तावना के साथ ही साथ हो जायगा। मृगांकावली तथा राजा के पारस्परिक अनुराग के लिए उचित वातावरण का निर्माण भागुरायण ही के माध्यम से होता है। वस्तुतः इस प्रकार वह राजसचिव का दायित्व निभाता है क्योंकि उसे ज्ञात हो जाता है कि मृगांकावली से विवाह करते ही राजा अनायास चक्रवर्ती बन जायगा। अन्त में वह इस कार्य में सफल होता है। वह बुद्धिमान और नीतिज्ञ है। उसकी नीतिमत्ता से ही पश्चिम में गंगा के उद्गम से लेकर पूर्व में ताम्रपर्णी तक का साम्राज्य कलचुरितिलक केयूरवर्ष के अधीन हो गया।

चेटीवृन्द--नायक नायिका एवं देवी की परिचर्या का कार्य चेटीवृन्द करता था। मृगांकावली की सहायिका विलक्षणा है। रानी की परिचारिका का कार्य मेखला करती है। कुरंगिका, तरंगिका और सुलक्षणा सन्देश-वहन में निपुण है। नाटिका में विलक्षणा की भूमिका महत्वपूर्ण है।

अन्य पात्र--सन्देशवाहक प्रतीहारी, लेखवाहक कुरंगक, विदूषक पत्नी ब्राह्मणी एवं कुवलयमाला कुछ समय के लिए रंगमंच पर दिखाई देते हैं।

कुवलयमाला कुन्तलराज चण्डमहासेन की पुत्री है। राजा उस पर आसक्त है, किन्तु कुवलयमाला को हम केवल विवाह के अवसर पर ही रंगभूमि में देखते हैं।

कर्पूरमंजरी :

दृश्य काव्य में कथानक का सौन्दर्य पात्रों के चरित्र-चित्रण में निखरता है। इस नाटक में एक भी पात्र अनुपयुक्त या अनावश्यक नहीं है। राजा चण्डपाल, रानी विभ्रमलेखा, नायिका कर्पूरमंजरी, विदूषक कपिंजल, भैरवानन्द, विचक्षणा, आदि की गणना प्रमुख पात्रों में की जा सकती है एवं सुलक्षणा प्रतीहारी को गौण पात्रों में।

नायक : चम्पा नगर का स्वामी चन्द्रपाल इस सट्टक का नायक है। धीर ललित नायक के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। वह सौन्दर्य प्रेमी है। वसन्त का

प्राकृतिक सौन्दर्य उसमे नूतन उत्साह का सचार करता है। वसन्त-विषयक उसके उद्गार देखिए —

> पिए विब्भम लेहए–एक्को ग्रहं बड्ढावग्रो तुज्झ। विब्भमगव्वप्पग्रट्टाविग्रं तरुणीणं, वहावग्र मलग्रमारुदं दोलिदाणच्चणीण, चारुप्पपचिद पचम, कलग्रठि कठकंदलेसु कदलिग्रकदप्पककोग्रड दइखडिद चडिमं, सिणिद्धवधुं वसुधरा पुरधीरविसारिग्रप्पसिदिप्पमाणे ग्रच्छिणी महुच्छव ग्रहिच्छ पेक्खदु।

प्रिय विभ्रमलेख। वसन्त वर्णन से मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूँ।

तरुणियों में विलास और गर्व को उत्पन्न करने वाला, मलयाचल की हवाओं में लहराती हुई लतारूपी नर्तकियों को नचानेवाला, कोकिलों के कण्ठ समूह में पचम स्वर प्रेरित करने वाला, नव प्रादुर्भूत कामदेव के धनुष के दण्ड से प्रेमिकाओं के प्रिय-सबधी कोप को दूर करने वाला, बन्धु-बान्धवों में प्रेम उत्पन्न करने वाला, वसुन्धरा रूपी रमणी का यह वसन्तोत्सव अपनी आखों को हथेली बराबर फैलाकर इच्छानुसार देखो।

वह सुन्दरी नायिका के प्रथम दर्शन मे ही उस पर अनुरक्त हो जाता है और "ग्रहह ग्रच्चरिग्र ग्रच्चरिग्र" कहकर प्रशसात्मक विस्मय प्रकट करता है।

वह कला का भी पारखी है। मित्र विदूषक और विलक्षणा के कवित्व की रसानुकूल सराहना तथा अवसर आने पर त्रुटियों का सकेत उसकी मर्मज्ञता को प्रकट करता है। शृगारिक वर्णनों मे[1] उसने जिन छन्दो का प्रयोग किया है, तथा जिस शैली को अपनाया है वह उसकी विद्वत्ता की द्योतक है। वह विनोदी एव विलासी है। प्रारम्भ से अन्त तक हम उसे प्रमोदवनो, लताकुजो, या रत्न-चतुरिका मे पाते हैं। नायिका के दर्शन न होने मे विरह वेदना की अनुभूति करने वाला यह नायक वास्तव मे शृगारी है।

विभ्रमलेखा : विभ्रमलेखा प्रधान महिषी या पट्टरानी है। स्वकीया मध्या नायिका के सारे गुण इसमे विद्यमान हैं। मध्या नायिका विचित्र रति-लीलाओं में निपुण होती है। उसकी काम पिपासा बढ़ी हुई दिखाई देती है। उसका यौवन विकसित रहता है। प्रणयालाप में उसे विशेष रुचि नहीं होती और न उसे रति मे अधिक लज्जा का अनुभव होता है। वसन्त के प्रति उसके उद्गारो मे प्रतीत होता है कि वह काम की क्षुधा से पीड़ित है। वह कहती है—

१. साहित्य दर्पण ३।५९

कराने में उसका प्रमुख हाथ है। वह तीखे व्यंग्यों से शीघ्र ही उत्तेजित हो जाता है। राजा-रानी को कटु शब्द सुनाने में भी कसर नहीं रखता किन्तु अवसर आने पर उस विषमता को भूलकर मित्रता स्थापित कर लेता है।

विदूषक —ईरिस राग्रउल दूरे वज्जीग्रदि, ग्रहि दासी वम्हणेण मम पडिप्पद्धा करेदि।——गुण ग्रागमिस्स ग्रण्णे को वि सिग्रग्रस्सो ग्रप्पेसीग्रदु—

इन वचनों के उपरान्त विदूषक चला जाता है। किन्तु भैरवानन्द के आगमन पर सारा क्रोध भूलकर फिर लौट आता है। क्रोध मे वह ऐसे अपशब्दों का प्रयोग करता है, जो ग्राम्य से प्रतीत होते है, किन्तु वह उच्चस्तरीय सवाद मे भी दक्ष है। यह बात राजा के साथ प्रेमविषयक चर्चा के प्रसग एव निदाघ मे उपयुक्त सामग्री के महत्व प्रसग में दिखाई देती है।

ब्राह्मण होने के कारण वह राजपुरोहित का काम सम्हालता है। उसकी उक्तियाँ सट्टक मे हास्यरस उत्पन्न करने वाले तत्वों मे प्रमुख है।

भैरवानन्द : यह पाखण्डी चरित्र सट्टक मे सोद्देश्य अवतरित किया गया है। सट्टक के प्राण इसी के हाथों में है। अभिसंधि-प्रवीण भैरवानन्द नायिका को लाता है और नायक से विवाह करवाता है। वह दम्भी, आत्मवचक और एक प्रकार से नास्तिक है। उसके सिद्धान्त जनगण के लिए घातक है—

रंडा चण्डा दिक्खिदा धम्मदारा
मज्जं मस पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्ज चम्मखंड च सेज्जा
कोलो धम्मो कस्स णो भादि रम्मो॥

रण्डा, चण्डा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियों को पत्नी रूप मे ग्रहण करने की शिक्षा देने वाले एव मद्यपान को प्रोत्साहन देने वाले सम्प्रदाय का वह अनुयायी है। तथापि इस सट्टक की कुंजी भी वही है। यदि भैरवानन्द न होता तो नायिका का कहीं पता ही न चलता। वस्तुत नायक नायिका का प्रणय ही इस सट्टक की केन्द्रीय वस्तु है। इस दृष्टि मे पाखण्डी एव दम्भी होते हुए भी भैरवानन्द नाटक के लिए अत्यन्त उपादेय पात्र है।

अन्य गौण पात्रों मे विचक्षणा, सुलक्षणा, सारंगिका की गणना की जा सकती है। विचक्षणा एव सारंगिका रानी की सखियाँ हैं। विचक्षणा राजा एवं कर्पूरमंजरी की भी सहायिका है। कर्पूरमंजरी के प्रत्येक कार्य मे वह सहायता करती है।

कर्पूरचण्ड और रत्नचण्ड वन्दी है, जो समय समय पर सन्ध्या, माध्यन्दिन एव चन्द्रोदय आदि की सूचना देते हैं।

इस सट्टक के सभी पात्र अपना अपना चारित्रिक वैशिष्ट्य लिये हुए हैं। इन पात्रों की सहायता से कथानक चक्र अपने लक्ष्य को प्राप्त करता दिखाई देता है। राजशेखर की चरित्र-सृष्टि के क्रम पर दृष्टिपात करने पर हम देख सकते हैं कि उनके पात्र या तो परिस्थितियों को बनाते है या परिस्थितियां उन्हें गढ़ती हैं। इनमे विद्धशालभजिका का मन्त्री भागुरायण एव कर्पूरमजरी का भैरवानन्द प्रथम श्रेणी मे आते हैं। उक्त कृतियो के नायक नायिका द्वितीय श्रेणी में। यद्यपि इन कृतियों के विदूषक एव महादेवियाँ ऐसे पात्र है जो बने बनाये चौखटे मे ठीक बैठ जाते हैं तथापि राजशेखर की प्रचुर पात्र-सृष्टि सरस और सन्तुलित है।

राजशेखर के रूपकों में रस-परिपाक :

राजशेखर की कृतियो मे नवरसो की अभिव्यजना मिलती है। 'बालरामायण' की प्रस्तावना में उन्होंने "वीराद्भुतप्रायरसप्रबन्धे" कहकर उक्त प्रबन्ध मे वीर और अद्भुत रस को प्राथमिकता दी है तथापि उसमे अन्य रसो का भी परिपाक दिखाई देता है। उनकी अन्य दो कृतियाँ 'कर्पूरमजरी' एव 'विद्धशालभजिका' शृगार रस मे परिपूर्ण हैं। अत हम कह सकते हैं कि इनकी कृतियो में प्रमुख रूप से जिन रसो की अभिव्यजना है—वे हैं शृगार वीर और अद्भुत। इसके अतिरिक्त प्रसगानुसार करुण, वीभत्स, भयानक, रौद्र, हास्य और शान्त रस की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

शृगार . शृगार के दो पक्ष होते है—सयोग और वियोग। सयोग मे नायक-नायिका का मिलन सुखात्मक अनुभूति प्रदान करता है। वियोग मे प्रिय के अभाव मे हृदय तीव्र वेदना से सन्तप्त रहता है।

बालरामायण नाटक मे खलनायक रावण आरम्भ से अन्त तक सीता के विरह से व्याकुल है। अत उसकी वेदना एव विचार विप्रलम्भ की अभिव्यक्ति करते हैं। सीता के प्रथम दर्शन मे ही वह कामपीडित हो उठता है। फलत उसके अभाव में प्रकृति के वे उपादान जिनमे सीता के अगो का साम्य उसे दिखता है, उसे सीता जैसे ही प्रतीत होते है।

कराने में उसका प्रमुख हाथ है। वह तीखे व्यग्यो से शीघ्र ही उत्तेजित हो जाता है। राजा-रानी को कटु शब्द सुनाने मे भी कसर नही रखता किन्तु अवसर आने पर उस विषमता को भूलकर मित्रता स्थापित कर लेता है।

विदूषक—ईरिस राग्रउल दूरे वज्जीग्रदि, ग्रहि दामी वम्हणेण मम पडिप्पद्धा करेदि।—गुण ग्रागमिस्स ग्रण्णे को वि पिग्रवग्रस्सो ग्रप्पेसीग्रदु—

इन वचनो के उपरान्त विदूषक चला जाता है। किन्तु भैरवानन्द के आगमन पर सारा क्रोध भूलकर फिर लौट आता है। क्रोध मे वह ऐसे अपशब्दो का प्रयोग करता है, जो ग्राम्य मे प्रतीत होते है, किन्तु वह उच्चस्तरीय सवाद मे भी दक्ष है। यह बात राजा के साथ प्रेमविषयक चर्चा के प्रसग एव निदाघ मे उपयुक्त सामग्री के महत्व प्रसग मे दिखाई देती है।

ब्राह्मण होने के कारण वह राजपुरोहित का काम सम्हालता है। उसकी उक्तियाँ सट्टक मे हास्यरस उत्पन्न करने वाले तत्वो मे प्रमुख है।

भैरवानन्द. यह पाखण्डी चरित्र सट्टक मे सोद्देश्य अवतरित किया गया है। सट्टक के प्राण इसी के हाथो में है। अभिसधि-प्रवीण भैरवानन्द नायिका को लाता है और नायक से विवाह करवाना है। वह दम्भी, आत्मवचक और एक प्रकार से नास्तिक है। उसके सिद्धान्त जनगण के लिए घातक हैं—

रडा चण्डा दिक्खिदा धम्मदारा
मज्जं मम पिज्जए खज्जए ग्र।
भिक्खा भोज्जं चम्मखड च सेज्जा
कोलो धम्मो कस्स णो भादि रम्मो॥

रण्डा, चण्डा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियों को पत्नी रूप मे ग्रहण करने की शिक्षा देने वाले एव मद्यपान को प्रोत्साहन देने वाले सम्प्रदाय का वह अनुयायी है। तथापि इस सट्टक की कुजी भी वही है। यदि भैरवानन्द न होता तो नायिका का वही पता ही न चलता। वस्तुत नायक नायिका का प्रणय ही इस सट्टक की केन्द्रीय वस्तु है। इस दृष्टि से पाखण्डी एव दम्भी होन हुए भी भैरवानन्द नाटक के लिए अत्यन्त उपादेय पात्र है।

अन्य गौण पात्रो मे विचक्षणा, सुलक्षणा, सारगिका की गणना की जा सकती है। विचक्षणा एव सारगिका रानी की सखियाँ हैं। विचक्षणा राजा एव कर्पूरमजरी की भी सहायिका है। कर्पूरमजरी के प्रत्येक कार्य मे वह सहायता करती है।

यथा—

इय भृगश्रेणी न पुनरलकानां विरचना ।
इद हेमाम्भोज विकसति न सीता मुखमिदम् ॥[1]

अर्थात् यह भ्रमरपंक्ति है सीता की अलकरचना नहीं। यह सुवर्णकमल खिला है, सीता का मुख नहीं—

सारग-दृष्टिलसिते कलभाषिते च ।
पुस्कोकिल-स्मितसरोरुहसौरभे च ॥[2]

मृगनयनों में दृष्टि की कान्ति, कोकिलकण्ठ मे कलभाषित एव सरोरुह के सौरभ मे स्मित की छटा देखकर उसे यत्किंचित सतोष मिलता है, लेकिन—

इयं लता कापि निरन्तरच्छदा ।
प्रसूनगन्धाहृतषट्पदावलिः ।
अहो दधाना हरित नवाशुकम्
न मैथिली नीलदुकूलगुण्ठना ॥[3]

नील-परिधान पहनने वाली मैथिली कहाँ? यह तो भृगो से आवृत लता है। *हृदय को धीरज दिलाने वाली भ्रान्ति नष्ट हो गई, विरस और तीव्र हो रहा है।* इस प्रकार रावण की सारी उन्मादावस्था एव प्रलाप विप्रलम्भ शृंगार की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

बालरामायण के नायक रावण, कर्पूरमजरी के नायक चण्डपाल और नायिका कर्पूरमजरी तथा विद्धशालभजिका के नायक विद्याधरमल्ल और नायिका मृगांकावली को विरह की समस्त दशाओं मे गुजरना पडता है। देखिए, स्मृति की दशा—

न स्थानात्तिलान्तरमपि चलिता स्वस्था नितम्बस्थली
स्तोकोद्वेल्लवली-तरगमुदरं कण्ठस्तिर्यक् स्थित. ।
वेण्या पुनराननेतन्दुभ्रमणे लब्ध स्तनालिगनम् ॥
जातास्तस्या श्चतुर्विधा तनुलता निध्याययन्त्या माम् ॥[4]

उन्माद की अवस्था भी दर्शनीय है—

आस्थानीजनलोचनाना बहला लावण्यकल्लोलिनी—
लीलाविभ्रमहासवासनगरी सौभाग्यपारस्थिता

१. बा० रा० ५।६४ २. बा० रा० ५।६५
३. बा० रा० ५।७२ ४. क० म० २।१

नेत्रेन्दीवरदीर्घिका मम पुनः शृंगारसञ्जीवनी
संजाताय मन्मथेन धनुषि तीक्ष्णः शरः पुङ्खितः ॥[1]

व्याधि का चित्र द्रष्टव्य है—

ताराम्भः प्रसृतिम्पचः प्रचयवान् बाष्पः प्रणालोचितः
श्वासाः प्रेङ्खितहारयष्टिलतिकाः पाण्डिम्नि मग्नं वपुः ।
किं चान्यत् कथयामि रात्रिमखिलां त्वन्मार्गवातायने
हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुमहसस्तस्याः स्थितिर्वर्तते ॥[2]

विरह में शीतल चन्द्रमा अग्नि-सा दाहक प्रतीत होता है। देखिए नायिका मृगांकावली की दशा—

'सौधादुद्विजते त्यजत्युपवनं द्वेष्टि प्रभामैन्दवीं ।
द्वारात् त्रस्यति चित्रकेलिसदसो वेषं विषं मन्यते
आस्ते केवलमब्जिनीकिसलयप्रस्तारशय्यातले
संकल्पोपनतत्वदाकृतिरसायत्तेन चित्तेन सा ॥[3]

मृगांकावली महल में रहने से उद्विग्न होती है। उपवन को छोड़ देती है। चित्रकेलि नामक रागगृह में भी वह बहुत दुःखी है। वस्त्राभूषण को भी विष समझती है। नायक की कल्पना में खोयी हुई वह कमलिनी के पत्तों पर पड़ी रहती है।

वह चन्द्र को कोसते हुए कहती है कि हे अधम चन्द्र ! प्रिय की विरहाग्नि से तप्त मेरे शरीर का स्पर्श विनोदार्थ भी मत कर।

प्रियविरहमहोष्मा मर्मगमङ्गारेणा
मयि हतक हिमांशो । मा स्पृश क्रीडयापि
इह हि तव सुधा प्लोषपीडा भजन्ते
दवजरठमृणालीनालमुग्धा मयूखाः ॥[4]

विरहव्यथा से व्याकुल होने पर वह रोने लगती है। नायिका का यह रुदन विप्रलम्भ शृंगार को पुष्ट करता है।

नायिका कर्पूरमंजरी की अत्यधिक चिन्तनीय दशा यहाँ दीख पड़ती है—

सद् [illegible] दीसइ [illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥[5]

१ क० म० २।३ २ वि० भ० २।२१ ३ वि० भ० ३।८
४ वि० भ० ३।२३ ५ क० म० २।९

अर्थात् विरह में दिन और रात जितने लम्बे हो गए हैं वह उतनी ही लम्बी-लम्बी सांसें छोड़ रही है। कृशता इतनी अधिक बढ़ गई है कि पतन करने वाले आंसुओं के साथ मणिकंकण भी गिर रहे हैं। और क्या कहें, शरीर की बढ़ती हुई दुर्बलता के साथ उसकी जीविताशा भी घटती जा रही है।

विप्रलम्भ शृंगार का कितना मधुर परिपाक है? विरह की अन्तिम दशा मृत्यु को स्पर्श करने की ओर अग्रसर हो रही है।

करुण-रस : राजशेखर करुण रस के आविष्करण में भी सिद्धहस्त हैं। करुण रस के अनुभावों का चित्रण निम्न पद्य में कितना मार्मिक एवं हृदय स्पर्शी है।

राजप्रासादों में पली हुई कोमलांगी सीता अयोध्या से बाहर तीन चार पग ही चलती है कि थककर राम से पूछती है कि 'अभी और कितना चलना है।' फलतः राम का हृदय द्रवित हो जाता है। आंखों से आंसुओं की झड़ी लग जाती है। कितना दारुण प्रसंग है—

'सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी।
गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता॥
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा।
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्॥'[1]

महाकवि तुलसीदास ने इस पद्य का छायानुवाद इस प्रकार किया है—

पुरते निकसी रघुवीरवधू धरि धीर दये मग में डग द्वै,
झलकी भरि भालकनी जलकी पट सूख गये अधराधर वै
फिरि बूझति है चलनो अब केतक पर्णकुटी करिहौं कित ह्वै
सिय की लखि आतुरता पिय की अँखियां अति चारु चलीं जल च्वै।

सीता की विदाई के अवसर पर सासारिक विषयों से विमुख विश्वामित्र की भी दशा आकुल हो जाती है। आंखों से अश्रु की अविरलधारा बह चलती है—

सासारिक वचोभिरते सीताविश्लेषजन्मभिः।
द्रवतीव मनो बाष्पैर्विश्वामित्रमुनेरपि॥[2]

रावण के हृदय में भी शोक की अनुभूति द्वारा कवि ने करुण रस की चमत्कारी व्यंजना की है।

समस्त परिवार के विनाश से रावण को असह्य दुःख होता है। वह बारबार मूर्छित हो जाता है और चेतना आने पर साधारण व्यक्ति की तरह क्रन्दन करने लगता है।

१ बा० रा० ६।३४ २ बा० रा० ४।४६

रावण—साश्रम—

> मूर्च्छानिमग्नवरपुङ्गवरक्तमिश्रः
> स्वर्दन्तिदन्तवलयैः कृतकङ्कणश्रीः ।
> आमूलतो मदनुजस्य भुजो भुजगः
> भीमाकृतिर्झटिति हा नृवरेण लूनः ।[1]

इति मूर्च्छति—

रावण—हा वत्स ! का दशां दशकण्ठेन नीतोऽसि ।

इति रोदिति—

मूर्च्छा, चेतना एवं क्रन्दन का यह क्रम किस कठोर हृदय को द्रवित नहीं करता ?

सीता को अग्नि में प्रवेश करते देख रावण-पत्नियों के हृदय दलित हो गए। रावण की मृत्यु के पश्चात् शोकाभिभूता लङ्का का प्रलाप करुण रस की चरम सीमा उपस्थित करता है।

वीररस—राजशेखर ने वीररस का सजीव वर्णन किया है। वीरों का गर्वोक्ति-गर्जन, अस्त्रों का झंकार, स्यन्दनों की खनखनाहट और बाणों की सनसनाहट ये सब हमारे सामने युद्धभूमि का सच्चा चित्र उपस्थित करते हैं।

युद्ध से पूर्व राम लङ्केश्वर को अन्तिम बार चेतावनी दे रहे हैं—

> 'भो लङ्केश्वर दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते
> कोऽयं ते मतिविभ्रमः स्मर नयं नाद्यापि किंचिद्गतम् ।
> नैवं चेत् खरदूषणत्रिशिरसां कण्ठासृजा पङ्किलः
> पत्री नैष सहिष्यते मम धनुर्ज्याबन्धबन्धूकृतः ॥[2]

अर्थात् अरे लङ्केश्वर ! सीता को दे दो। यह राम तुमसे स्वयं याचना कर रहा है। तुम्हें यह कैसा भ्रम हो गया है। नीति मार्ग का अनुसरण करो। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। अन्यथा खर-दूषण और त्रिशिरा के रुधिर से लिप्त धनुष की ज्या पर चढ़ा हुआ बाण इसे सहन नहीं कर सकेगा। राम की लङ्केश्वर के प्रति कही गई यह उक्ति वीररस के परिपाक का सुन्दर उदाहरण है।

---

१ बा० रा० ८।८८   २ बा० रा० ९।११

इसी प्रकार सिंहनाद और राम, राम और परशुराम तथा रावण और परशु-राम के संवाद वीररस से पूर्ण हैं।

हास्य : राजशेखर ने अपनी नाटिकाओं में अनेक स्थानों पर हास्य रस का पुट दिया है। इनके हास्योत्पादक पात्र विदूषक चारायण और कपिंजल है। दोनों ब्राह्मण जाति के होते हुए भी निरक्षर भट्टाचार्य हैं। दोनों की विपत्ता हास्य का कारण बन जाती है।

अद्भुत : योगी भैरवानन्द द्वारा नायिका का अवतारण, सीता के मायावी मस्तक का क्षेपण एवं विविध अस्त्रों का प्रयोग अद्भुत रस की व्यंजना करता है।

बीभत्स : ताडकावध प्रसग वीभत्स रस को पुष्ट करता है।

युद्ध की विभीषिकाएँ, भयानक, रस, परशुराम एवं राम का वार्तालाप रौद्र रस को तथा आश्रम का पावन वातावरण शान्त रस को पुष्ट करता है। इस प्रकार राजशेखर की रचनाओं में रस का यथावसर प्रसगानुकूल परिपाक दृष्टिगत होता है।

राजशेखर का प्रकृति-चित्रण :

राजशेखर की नाटिका एवं सट्टक में अन्त: पुर की प्रणयलीला का चित्रण है। इसलिये सामान्यत उसका वातावरण प्रकृति के उन्मुक्त क्षेत्र से भिन्न है। प्रकृति के केवल उसी रूप का दर्शन हमे मिलता है जिस मे उसे स्वच्छन्द विकास का अवसर नही और जो मालियो द्वारा नियंत्रित होकर राजोद्यान तक ही सीमित है। यह प्रकृति राजा के प्रेम-व्यापारो की उद्दीपिका एवं प्रेम की क्रीडास्थली है।

राजशेखर कुशल शिल्पी हैं। उनकी कुशलता का परिचय निम्न सूर्यास्त-वर्णन देखिये—

लोग्राण लोग्रणेहिं सह कमलवण ग्रद्धणिद्द कुणतो
मुचतो तिव्वभावो सहस्र महरिस माणिणीमाणसेहिं
मंजिट्ठा रत्तसुत्तच्छविकिरणचयो चक्कवाएक्कमित्तो
जादो ग्रत्थाचलत्थो उवह दिणमणी पक्कणारंगिणो ॥[१]

अर्थात् मजिष्ठा राग से रंजित सूत्रो की तरह कान्तिमान, किरणो को धारण करने वाला, चक्रवाक पक्षियो का परममित्र, तथा पकी हुई नारंगी के समान लाल और

---

१ कर्पूरमंजरी २।५०

पीला सूर्य लोगों की आँखों के साथ साथ कमलवन को निमीलित सा करता हुआ मानिनियों के मान के साथ साथ अपने तेज को घटाता हुआ एकदम अस्ताचल की ओर आ रहा है ।

प्रकृति के प्रसार और सौंदर्य का स्वाभाविक चित्रण उक्त श्लोक में हुआ है तथा प्रकृति के माध्यम से चण्डपाल एवं कर्पूरमंजरी के वियोग का वर्णन भी ।

राजशेखर की लेखनी तूलिका की भाँति उद्देश्यों के सजीव चित्र आँकने में समर्थ है । वनप्रदेश का वर्णन देखिये—

ताम्बूलीनद्धमुग्धक्रमुक-तरुतलप्रस्तरे सानुगाभिः
पायं पायं कलाचीकृतकदलदलं नारिकेलीफलाम्भः ।
सेव्यन्तां व्योमयात्राश्रमजलजयिनः सैन्यसीमन्तिनीभिः ।
दात्यूह-व्यूहकेली-कलित-कुहकुहारावकान्ता वनान्ता ॥[1]

अर्थात् पान की बेलों से घिरे हुए सुपारी के वृक्षों के नीचे पड़े हुए पत्थरों के ऊपर बैठकर केले के पत्तों के दोने बनाकर नारियल के फलों का पानी पी पीकर लंका से मिथिला तक आकाश मार्ग से की गई यात्रा के कारण उत्पन्न पसीने को सुखा देने वाले और कौओं की क्रीड़ा के काँव काँव से गूँजते हुए सुन्दर वन प्रदेशों का उपभोग हमारी सेना की महिलायें अपने सहचरों के साथ करें ।

यहाँ वन प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा अत्यन्त मादक है अतः प्रणयक्रीड़ा का उद्दीपन कर रही है ।

राजशेखर द्वारा प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का चित्र चन्द्रोदय के एक वर्णन में लीजिये—

अन्धकार के लगातार बढ़ने से भूमण्डल मलिन और वृक्ष की तरह नीला दिखाई देता है । तथ पूर्व दिशा चाँदनी के कारण नये भोजपत्र के समान पीली पड़ गई है । मुचुकुन्द फूल की केसर के समान शोभा वाली किरणों को बरसाता हुआ चन्द्रमा धीरे धीरे अपनी कलाओं से पूर्ण हो गया है ।[2]

भूगोले तिमिराणुबन्धमलिणे भूमीरुहे व्व ट्ठिदे ।
एणोदा णवभुज्जपिंजरमुही जोण्हाइ पुव्वा दिसा ॥
मुचंतो मुचुकुंदकेसरसिहासोहाणुकारे करे ।
चंदो एक्ककलाक्कमेण अ गदो सपुण्णबिंबत्तण ॥

१. बालरामायण १।६३ २. कर्पूरमंजरी ३–२५

कुकुम से रहित, चन्दनविहीन दशो दिशाओं को सजाने वाली, कंकणरहित, बिना कुण्डल की, ससार की शोभा लोगों को तृप्त एव मुग्ध करने वाली कामदेव की अस्त्रभूत चन्द्ररश्मियाँ आकाश मे इकट्ठी हो रही हैं ।

अकुंकुमचन्दणं दस दिसा वहूमडणम् ।
अकंकणमकुंडल भुवनमंडलीभूसणम् ॥
अमोसणममोहण मअरलछणस्साउह ।
मिअंककिरणावली णहअलम्मि पुंजिज्जदि ॥[1]

मेघों से बरसती, उन्मुक्त धाराओं की भाँति चन्द्रमा की किरणें दिशारूपी सुन्दरियों के मुख पर कपूर के चूर्ण का लेप करती हुई सी दिखाई देती हैं । सारे ससार के मन को प्रसन्न करने वाली चन्दन की तरह स्वच्छ और चिक्कण चाँदनी फैल रही है । ये चन्द्रकिरणें तीनों लोकों मे काम का उद्दीपन कर रही हैं ।

दिसअवअसो नहसरहंसो ।
णिहुअणकंदो वट्टइचन्दो ।[2]
मडले समहरस्स गोरए दतपजरविलासचोरए ।
भादि लाछणमओ फुरतओ केलि कोइलतुलं धरतओ ॥[3]

चन्द्रमा की रश्मियों ने आलोकित पूर्व दिशा के लिये भोजरत्न के समान पीत होने का आरोप, दिशाओं के लिये सुन्दरी का उपमान, आकाश मे सरोवर एव चन्द्र पर लाञ्छन मृग एव केलि कोयल का अध्यारोप कवि की व्यापक कल्पनाशक्ति को व्यक्त कर रहा है ।

विविध ऋतुओं का भी अत्यन्त चित्रात्मक, रम्य और कल्पनात्मक वर्णन राजशेखर ने किया है । स्थानाभाव के कारण हम केवल यहाँ उनके द्वारा वर्णित वसत ऋतु के कतिपय प्रसगों को उद्धृत करना ही पर्याप्त समझते हैं क्योंकि वसन्त का वर्णन शृगारी कवि की रुचि और रागात्मकता के साथ ही उसके सूक्ष्म निरीक्षण को भी व्यक्त करता है ।

तरुणियों मे विलास और गर्व को उत्पन्न करने वाला, मलयाचल की हवाओं से लहराती हुई लतारूपी नर्तकियों को नचाने वाला, कोकिलों के वृन्दसमूह मे पचम स्वर को प्रेरित करने वाला, भय जाग्रत कामदेव के धनुष दण्ड से प्रेमिकाओं के प्रियसबन्धी कोप को दूर करने वाला, बन्धुबान्धवों मे प्रेम उत्पन्न करने वाला,

१ कर्पूरमजरी ३–२६ २. कर्पूरमजरी ३–२९ ।
३ कर्पूरमजरी ३।३१

वसुन्धरारूपी रमणी का यह वसन्तोत्सव शाखों को हथेली के बराबर फैला-फैलाकर देखने योग्य है ।

इस ऋतु में कुंकुम राग लगे हुए महाराष्ट्र की स्त्रियों के कपोलों की तरह चम्पा फूल पीला और लाल हो गया है । किंचित् बिलोये हुए दुग्ध की तरह सुन्दर मल्लिका भी खिल उठी है । मूल भाग में कालेवर्ण का तथा अग्रभाग में भौंरो से युक्त पलाश कुसुम ऐसा लगता है जैसे कि इसके दोनों ओर दो भौंरे बैठे हो और इसका रसपान कर रहे हों ।

वसन्त ऋतु में पाण्ड्य देश की रमणियों के कपोलों को रोमांचित करने वाली, काञ्ची देश की कामिनियों के प्रिय सबन्धी प्रणयकोप को साथ प्रातः भंग करने वाली, चोल देश की धवल नारियों को सम्भोग के लिये प्रेरित करने वाली, कर्णाट देश की स्त्रियों के केशपाश को शिथिल बनाती हुई, कुन्तल देश की स्त्रियों को अपने आलिंगन पाश में बांधती हुई मलयाचल की ठन्डी हवायें चल रही है ।

बसन्त में मलयाचल की हवायें लंका नगरी के बहिर्द्वार पर स्थित माताओं को हिलाती हुई, अगस्त्य ऋषि के आश्रम में अर्थात् दक्षिण दिशा में मन्द मन्द हिलती हुई, चन्दन और कर्पूर की लताओं के सौरभ से युक्त कंकोली लताओं को कँपाती हुई, ताम्बूलवल्लियों को मन्द मन्द नचाती हुई और ताम्रपर्णी नदी के जल का स्पर्श करती हुई हवा बह रही है ।

यह वर्णन जितना सजीव है उतना ही यथार्थ और उतना ही दूरगामी एवं सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक भी ।

प्रकृति का मानवीकरण

राजशेखर ने प्रकृति में भी मानवीय भावनाओं का आरोपण किया है । रावण सीता के विरह में दुःखी है । इस शोक में उसने अपने चारों ओर की विशाल प्रकृति को भी सम्मिलित कर लिया है । उसने प्रत्येक पशु-पक्षी तथा वृक्ष-लता को मानवीय समझकर उससे चर्चा की है ।

राम भी जब मार्ग न देने के कारण समुद्र पर बाणों की वृष्टि करते हैं तो बाणों से आहत हुआ समुद्र पुरुष रूप धारण कर गया और यमुना इन दो पत्नियों सहित क्षमा याचना करता है । रावण का वध हो जाने पर लंका, जो रावण की पत्नी मानी गई है, विधवा हो जाने के कारण शोक प्रकट करती है और उसकी सखी अलका उसे धीरज बँधाती है । यहाँ अलका और लंका नारियों का मानवीकरण दर्शनीय है । जटायु पक्षी होकर भी सीता का करुण क्रन्दन सुनकर रावण से

नायिका के सौंदर्य से चम्पा, हरिद्रा, कांचन और केसर का मेल ही नहीं बैठ पा रहा है। प्रसिद्ध उपमानों का तिरस्कार कर राजशेखर ने प्रतीप अलङ्कार के माध्यम से नायिका के सौन्दर्य की रमणीय व्यंजना की है। कतिपय आलंकारिकों ने इसे आक्षेप का उदाहरण माना है—

नायिका के सौन्दर्य का प्रस्तुत उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव
प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमलता श्यामेव हेमद्युति ।
पारुष्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतम्
सीताया पुरतश्च हन्त शिखिना बर्हाः सगर्हा इव ॥[१]

अर्थात् सीता के मुख के सम्मुख चन्द्रमा मानो कालिख-पुता लग रहा है। उसके नेत्रों के सम्मुख हरिणियों की दृष्टि जड-सी हो रही है, ओठों की लाली के आगे विद्रुमलता की अरुणिमा उड गई-सी जान पडती है और सोने की कांति अशोभा के समक्ष काली पड गई है, उसकी मीठी बोली के आगे कोयल की कूक ऐसी लगती है जैसे कर्कशता में भर उठी हो और केश के समक्ष मोर के पंख ऐसे लगते है जैसे किसी काम के न हों।

यहाँ सीता के अंग के अतिशय सौंदर्य को सूचित करने के लिये चन्द्रिका, हरिणियों की दृष्टि, विद्रुमलता, सोने की कांति, कोकिल वधुओं के कण्ठ और मयूर-पंखों की निन्दा द्वारा सौन्दर्यातिरेक को व्यक्त किया गया है। यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा का उचित विन्यास हुआ है। कल्पना के चित्रों की विविधता के लिये राजशेखर ने दृष्टान्त अलङ्कार का प्रयोग किया है। कल्पनाओं के सहारे वे दृष्टान्तों की लडी जोड़ते चले जाते हैं। इस अलकार को स्पष्ट करने के लिये केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

क्व पातव्या ज्योत्स्ना भुवनगर्भेऽपि तृषितैः—
मृणालीतन्तुभ्यः सिचयरचना कुत्र भवतु ।
क्व वा घ्रायामोदो वन वकुलदाम्ना परिमल
कथं स्वप्नः साक्षात् कुवलयदृशः कल्पयतु ताम् ॥[२]

अर्थात् भुवन के अन्दर फैली चाँदनी को प्यासे कहाँ पी पाते हैं? कमल नाल के तन्तुओं से वस्त्र-रचना कहाँ हो सकती है? मौलसिरी के पुष्पों की गन्ध कहाँ नापी या तौली जा सकती है? स्वप्न साक्षात् कैसे हो सकता है? इसी तरह उस सुन्दरी कमलनयनी को आप कल्पना मात्र कर सकते है।

१ बालरामायण १–४२। २ विद्धशालभंजिका १–२०।

उपप्राकाराग्र प्रहिणु नयनेतर्कय मनाक्
अनाकाशे कोऽय गलितहरिणः शीतकिरण ।
समाबद्धग्रासैरुपवन-चकोरैरनुसृत:
किरञ्ज्योत्स्नामच्छं नवलवलिपाकप्रणयिनीम् ।।[१]

अर्थात् तनिक चारदीवारी पर दृष्टि डालो । जरा सोचो, यह कौन सा चन्द्र है । न आकाश मे स्थित है, न अक मे मृग को धारण किये है । देखो उपवन के चकोर ग्रास रोक कर उसकी ओर आकृष्ट हो रहे है और उसमें स्वच्छ ज्योत्स्ना छिटक रही है ।

नायिका के मुख को मृगहीन चन्द्रमा कहकर कवि ने अपनी सूझ का परिचय दिया है । नायिका के मुख की इस प्रशसा मे अतिशयोक्ति का सौदर्य दर्शनीय है ।

नायिका यौवनावस्था मे पदार्पण कर रही है । यह बात पर्यायालकार के माध्यम से अत्यन्त कुशलतापूर्वक व्यक्त की गई है—

श्रोणीबन्धस्त्यजति तनुता सेव्यते मध्यभाग
पद्भ्या मुक्तास्तरलगतय सश्रिता लोचनाभ्याम् ।
धत्ते वक्ष. कुचसचिवतामद्वितीय तु वक्त्रम्
तद् गात्राणा गुणविनिमय कल्पितो यौवनेन ।।"[२]

शैशव मे इसका जघनस्थल अत्यधिक क्षीण था । अब उसकी क्षीणता मध्यभाग ने ग्रहण कर ली । शैशव की चचल गति अब नयनो मे आ गई है । पहले इसका वक्ष एकाकी था अब उसने कुचो से मित्रता धारण कर ली है । और वक्षस्थल की अद्वितीयता मुख ने ग्रहण कर ली है ।

शृ गाररस से मिक्त विविध व्यापार करने वाली चितवन का कितना सुन्दर आलकारिक वर्णन है—

न्यञ्चत्कुञ्चितमुन्मुख हसितवल्लमाकूतमाकेकरम् ।
व्यावृत्त प्रसरत्प्रसादि मुकुल सत्प्रेम कम्प्रस्थिरम् ॥
उद्भ्रुभ्रान्तमपाङ्गवृत्ति-विवलच मज्जत्तरगाकुलम्
चक्षु साश्रु च वर्तते रसवशादेकैकमन्यक्रियम् ।।[३]

तिरछी, कुचित, उन्मुख, उल्लसित, भावभरी टेढी, ललचाई हुई, फैली हुई, सस्मित, अधमुँदी, प्यार भरी, कम्पित, स्थिर, उद्वतित, मतवाली, बिखरी, विलसित, गड़ी

१ विद्धशालभजिका १–३१ । २ बालभारत १–२८ ।
३. बालरामायण २–१९

हुई, तरंगित और भजन चिन्तन एक है पर शृंगार रस में डूबी होने के कारण उसके व्यापार अनेक हैं।

समुच्चय अलंकार पर आधारित नेत्र का यह व्यापार-वैविध्य दर्शनीय है।

विद्धशालभंजिका के नान्दी श्लोक में की गई वामलोचनाओं की प्रशंसा में व्याघात की छटा द्रष्टव्य है—

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः ॥[1]

अर्थात् विरूपाक्ष की दृष्टि से जला दिये गये काम को अपनी दृष्टि से ही पुनः जीवित कर शंकरजी को परास्त कर देने वाली उन वामलोचनाओं को नमस्कार है।

अवन्ति की रमणियाँ ही रतिकर्म में निपुण होती हैं, केवल इतना कह देने पर अवन्ति-रमणियों की निपुणता की प्रतीति पाठक को नहीं हो पाती किन्तु "चन्द्रिका के पान में चकोरियाँ ही चतुर होती हैं" यह कथन बात को प्रामाणिक बना देता है। प्रतिवस्तूपमा अलंकार की यही उपादेयता है—

चकोर्य एव चतुराश्चन्द्रिकापानकर्मणि।
आवन्त्य एव निपुणा सुदृशो रतनर्मणि ॥[2]

उत्तरोत्तर उत्कर्ष का एक उदाहरण देखिये—

पृथ्वि स्थिरा भव भुजंगम धारयैनां
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः।
दिक्कुंजराः कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षां
देवः करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ॥[3]

राम शिवधनुष चढ़ा रहे हैं। अतः पृथ्वी को सचेत किया जा रहा है और शेषनाग और दिग्गजों को क्रमशः अपने पूर्ववर्तियों को सम्हाल रखने को कहा जा रहा है। उत्कर्ष की इस श्रृंखला से राम के पौरुष का महत्व स्वयं सूचित होता है।

नीचे श्लोक में विरही नायक की दशा कितने प्रभावपूर्ण ढंग से व्यंजित हुई है—

परं जोण्हा उण्हा गरलसरिसो चंदणरसो
खदक्खारो हारो रअणिपवणा देहतवणा।
मुणाली बाणाली जलइ अजलद्दा तणुलदा
वरिट्ठा जं दिट्ठा कमलवअणा सा सुणअणा ॥[4]

---

१. विद्धशालभंजिका १–२। २. बालरामायण १०–८२।
३. बालरामायण १–४८। ४. कर्पूरमंजरी २–११।

अर्थात् जब से उस मृगनयना को देखा है तभी से चांदनी गर्म मालूम पड़ती है, चन्दन का लेप विष की तरह प्रतीत होता है और हार घाव पर नमक की तरह लगता है एवं रात्रि की ठण्डी हवायें भी शरीर को झुलसाती हैं। कमल नाल बाणों की तरह लगते हैं। स्नान करने पर भी शरीर जलता ही रहता है।

विरही राजा का एक अन्य चित्र माला रूपक के माध्यम से साकार हो उठा है।

> एसो पिअवअस्सो हंसो विअ विमुक्कमानसो, करी विअ
> गअकरवामो मुणालदनदंडो विअ पणघम्मभिलाणो दिपदीण्णा।
> दीयो विअ विमलनिअच्छाओ पमादपुण्णिमाचन्दो विअ
> पडुरपरिकरवीणा चिट्ठदि॥[1]

वियोगी नायक की संतप्तदशा, मलिनता, थकावट आदि के लिए मानसरोवर से विलग हुए हंस, प्रचण्ड सूर्यातप से झुलसे हुए कमलनाल, कान्तिहीन दीपक, प्रभातकालीन चन्द्रमा इत्यादि का सादृश्य उपस्थित करने से कितना सटीक और सजीव चित्र उपस्थित हो गया है। एक स्थान पर कवि ने लिखा है कि—

> सह दिवसणिसाहिं दीहरा सासदण्डा
> सह मणिवलएहिं बाहधारा गलन्ति।
> तुह सुहअ विओए तीअ उव्विग्गिरीए
> सह अ तणुलदाए दुब्बला जीविदासा॥[2]

विरहाकुल नायिका को दिन रात बड़े लम्बे प्रतीत होते हैं। उतना ही दीर्घ उसास वह लेती है। वाष्पधारा और मणिकंकण साथ साथ गिर रहे हैं। जितना उसका शरीर दुर्बल हो रहा है उतनी ही जीविताशा भी घटती जा रही है। सहोक्ति के उक्त प्रयोग से वियोगिनी नायिका का यह चित्र और अधिक मर्मस्पर्शी हो गया है।

राजशेखर ने प्रकृति के चित्रों को अधिक सजीव और सक्षम बनाने के लिये विविध अलंकरणों का आश्रय लिया है। मध्याह्नकाल का एक दृश्य देखिये—

> धत्ते पद्मलता दलेष्युपरि स्व वर्णताल द्विप
> शष्यस्तम्बरसान्नियच्छति शिखी मध्येशिखण्ड शिर।
> मियूयालीढमृणालकोटिरभसाद् दष्ट्राङ्कुर शूकरो
> मध्याह्ने महिषश्च वाञ्छति निजच्छायैं महाकर्दमम्॥[3]

---

१. कर्पूरमंजरी २।९। २. कर्पूरमंजरी २।९।
३ विद्धशालभंजिका ३।२६।

अर्थात् पदमलता को दलने का इच्छुक हाथी, दोपहर की गर्मी मे व्याकुल होकर अपने ऊपर अपने बडे बडे कानो को चला रहा है । आमो के रसास्वादन को त्यागकर मयूर अपने पखो के अन्दर छिप रहा है । सुअर ने कमल की जड को खोदकर खाना बन्द कर दिया है और भैंसा अपने शरीर पर लेप करने के लिये गहरे कीचड की इच्छा कर रहा है ।

यहाँ कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति से स्वभावोक्ति का कुशल निरूपण हो गया है । चन्द्रकिरण वर्णन मे कवि की कुशलता सराहनीय है—

अकुकुममचदण दसदिसावहूमडण
अकक्णमकुडल भुवणमडलीभूसण ।
असोसणममोहण मअरलछणस्साउह
मिअक्किरणावली णहअलम्मि पुजिज्जदि ॥

अर्थात् कुकुम से रहित, चन्दनविहीन, दसो दिशाओ को सजाने वाली, कंकणरहित, बिना कुण्डल की, लोगो को तृप्त एव मुग्ध करने वाली कामदेव की अस्त्रभूत चन्द्ररश्मियाँ आकाश मे इकट्ठी हो रही हैं ।

यहाँ चन्द्ररश्मियाँ काम के आयुध हैं किन्तु शोषण-मोहन-हीन । बिना कारण के ही कामदेव के अस्त्रो का कार्य करने वाली ये चन्द्ररश्मियाँ विभावना से अलङ्कृत हो उठी हैं ।

वस्तुत राजशेखर द्वारा प्रयुक्त किसी भी अलकार की सूची बहुत दूर तक बढाई जा सकती है । यहाँ हमारा उद्देश्य उनके प्रत्येक अलकार के उदाहरण प्रस्तुत करना मात्र नही है । हमने केवल कुछ अलकारो को लेकर उनकी अलकार-योजना का प्रदर्शन किया है । उनकी अलकारसृष्टि भावोपयोगी एव सूक्ष्म निरीक्षणपूर्ण है । उनके अलकार प्रयोग की एक बड़ी विशेषता यह है कि वे एक ही चित्र मे कई अलकार सफलता से गूँथ सकते हैं जैसे नायिका के रूप चित्रण के लिये उन्होंने प्रतीप, अप्रस्तुतप्रशसा एव अतिशयोक्ति का प्रयोग किया है । विरहावस्था की दशा वर्णित करने मे विरोध, रूपक एव सहोक्ति की सृष्टि की है ।

अन्त मे हम कह सकते हैं कि राजशेखर के अलंकार प्रयोग मे उनके पाडित्य एव सूक्ष्मनिरीक्षण की छाप है । फलत उनकी अलंकार-योजना स्वाभाविक सहज और स्पष्ट हो गई है ।

छन्दोविधान

राजशेखर के काव्य मे प्रयुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द की उत्कृष्टता देखकर क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ "सुवृत्ततिलक" मे यहाँ तक कह दिया था—

शार्दूलविक्रीडितैरिव प्रख्यातो राजशेखरः ।
शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः ॥

यद्यपि राजशेखर ने अपने ग्रन्थों मे २३ छन्दो का प्रयोग किया है किन्तु समग्र रूप से उनके छन्द सविधान की ओर दृष्टि डालने पर भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि "शार्दूलविक्रीडित" छन्द का प्रयोग ही उन्होने प्रचुर परिमाण मे किया है। यदि "शार्दूलविक्रीडित" को ही राजशेखर के काव्यो का कलेवर-विधायक छन्द कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उक्त छन्द के पश्चात् हम भाव-आवृत्ति एव छन्दो-वैविध्य की दृष्टि से जिन छन्दो से उनके काव्य को सुशोभित पाते हैं वे है—वसन्ततिलका, अनुष्टुप्, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, आर्या, पृथ्वी, रथोद्धता, इन्द्रवज्रा, वशस्थ, उपजाति, पुष्पिताग्रा, उपेन्द्रवज्रा, स्वागता, शालिनी, शिखरिणी, हारिणी, प्रहर्षिणी शशिवन्दना, रुचिरा, गीति, उपगीति एव हरिगीति।

राजशेखर की छन्दोयोजना के विश्लेषण से प्रतीत होता क उन्होंने विभिन्न प्रसगो, ऋतुओं तथा भावो के लिये भिन्न भिन्न छन्दो का प्रयोग किया है। निम्न तालिका मे उक्त योजना को विशद रूप मे प्रस्तुत किया गया है—

विषय	प्रयुक्त-छन्द
नान्दी	.. शार्दूलविक्रीडित, पुष्पिताग्रा, आर्या, स्रग्धरा, मालिनी, पथ्यावक्त्र एव शिखरिणी।
भरतवाक्य	.. शार्दूलविक्रीडित स्रग्धरा, स्वागता।
मज्जन वन्दना	.. शार्दूलविक्रीडित शिखरिणी, स्रग्धरा।
रामस्तुति उपदेश	.. शार्दूलविक्रीडित।
आशीष स्नेहाभिव्यक्ति	.. वसन्ततिलका।
चन्द्रोदय-वर्णन	.. शार्दूलविक्रीडित, पृथ्वी, स्रग्धरा, शशिवदना मात्रिक हरिगीतिका शिखरिणी।
षड्ऋतु—	
वसन्त	.. शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता आर्या, मालिनी

राजशेखर

शिशिर	.. स्रग्धरा, पथ्यावक्त्र ।
ग्रीष्म	.. शार्दूलविक्रीडित ।
वर्षा	.. स्रग्धरा, पुष्पिताग्रा ।
शरद	.. शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका ।
हेमन्त	.. स्रग्धरा, आर्या ।
नायिका वर्णन—	
सौंदर्यचित्रण	.. शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, वसन्ततिलका, उपजाति, मालिनी, वंशस्थविल ।
विरहिणी	.. मालिनी, स्रग्धरा, शिखरिणी ।
दोलाक्रीडा	आर्या, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा ।
चर्चरी नृत्य	. उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, स्वागता ।
रस—	
१. शृंगार	शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, वसन्ततिलका, मालिनी, हरिणी ।
२. वीभत्स	वसन्ततिलका, स्रग्धरा ।
३ करुण	वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, पथ्यावक्त्र स्रग्धरा ।
४. अद्भुत	वसन्ततिलका ।
५ वीर	शार्दूलविक्रीडित ।
६. रौद्र	शार्दूलविक्रीडित ।
७ शान्त	शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता ।

राजशेखर की एक और विशेषता है निरन्तर एक ही छन्द द्वारा किसी विषय की अभिव्यक्ति । "अर्थानुरूप-छन्दस्त्वम्" की उक्ति उनके लिये सार्थक प्रतीत होती है ।[1]

काव्य-दोष

प्राय सभी अलंकारिकों ने काव्यदोषों का विस्तृत विवेचन और वर्गीकरण किया है। आचार्य आनन्दवर्धन ने अवश्य यह कहकर दोषों की उपेक्षा की है कि उन्होंने महतो सुन्दर सूक्तियों से अपने को उज्ज्वल किया है, ऐसे महात्माओं के दोषों का उद्घाटन करना आलोचकों के लिये दोषपूर्ण है—

> तस्य सूक्तिसहस्रा द्योतितात्मना महात्मनां दोषोद्घोषणमात्मन एव दूषण भवन ।'

१. राजशेखर के ग्रन्थों में प्रयुक्त विविध छन्दों की तालिका परिशिष्ट में देखिये ।

राजशेखर के ग्रन्थो से, अलंकारो ने दोषो के जो बहुत से उदाहरण लिये हैं, उसका कारण उनकी लोकप्रियता है । हम यहां राजशेखर के ग्रन्थो मे पाये जाने वाले प्रमुख दोषो पर विचार करेगे ।

वाक्य-दोष

१. अभवन्मत सबन्ध —वह दोष है जहाँ किसी पद का अभिप्रेत सवन्ध अथवा अन्वय उत्पन्न न हो सके । जैसे—

> चापाचार्यस्त्रिपुरविजयी कार्तिकेयो विजेय.
> शस्त्रव्यस्त सदनमुदधिभूरिय हन्तकारः ।
> अस्त्येवैतत् किमु कृतवता रेणुकाकण्ठ-बाधा
> बद्धस्पर्धस्तव परशुना लज्जते चन्द्रहास' ॥

भार्गव परशुराम ! माता का गला काटने वाले, तुम्हारे इस परशु का स्पर्श करने मे मेरा यह कृपाण लज्जित हो रहा है, अन्यथा . . . . . ! यहाँ भार्गव परशुराम की निन्दा के प्रकाशन के लिये प्रयुक्त मातृकण्ठ के छेदन के कर्तव्य के साथ परशु का सबन्ध स्थापित नही हो सकता । अत. 'अभवन्मतसबध' का यहाँ निर्देशन हो रहा है ।

वस्तुत यहाँ परशु की निन्दा के द्वारा भार्गव परशुराम का अधिकाधिक तिरस्कार किया जा रहा है । अत इसे दोष न कहकर कवि-कौशल कहा जाना उपयुक्त होगा । साहित्यदर्पणकार और उनके अनुयायियों ने इसे कविकौशल कहा भी है ।

२. भग्नप्रक्रमत्व —बिना कारण के किसी क्रम अथवा परिपाटी को छोड देना भग्नप्रक्रमत्व दोष कहलाता है । जैसे—

> उदन्वच्छन्ना भू स च पतिरपा योजनशतम् ।[१]

यहाँ यदि 'मिता भू पत्यापा स च पतिरपाम्' कर दिया जाय तो भग्नप्रक्रमत्व दोष दूर हो जायगा और अर्थ की अपेक्षित ऐक्य-प्रतीति निर्विघ्न रहेगी ।

अर्थदोष : अर्थ दोष के एक भेद अस्थानयुक्तत्व का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है । अस्थानानुयुक्तत्व वह अर्थदोष है जिसमे वाक्यार्थ अनुपयुक्त स्थान पर समाप्त हो जाता है, जैसे—

> आज्ञा शक्रशिखामणि-प्रणयिनी शास्त्राणि चक्षुर्नव,
> भक्तिर्भूतपतौ पिनाकिनि पद लकेति दिव्यापुरी ।

---

१ बालरामायण ८।५२।५३

उत्पत्तिर्द्रुहिणान्वये च तदहो नेदृग्वरो लभ्यते
स्याच्चेदेव न रावणः क्व नु पुन. सर्वत्र सर्वे गुणाः ।[१]

रावण के लिये कहा गया है कि जिसकी आज्ञा मुकुट-मणि की भाँति इन्द्र को भी शिरोधार्य है, जिसके लिए शास्त्र दिव्यदृष्टि का काम करते हैं, जिसकी शिवभक्ति सर्वविदित है, जिसका दिव्य स्थान लकापुरी के नाम से प्रसिद्ध है और जिसका जन्म ब्रह्मा के महान् वश मे हुआ है भला उसके समान अन्य वर कहाँ मिल सकता है । हाँ, बात केवल एक है कि वह रावण है और सब गुण सर्वत्र रहते ही कहाँ हैं ?

यहाँ 'स्याच्चेदेव न रावण' पर ही वाक्य समाप्त हो जाना चाहिए, क्योंकि रावण पद से रावण का वर रूप मे निषेध किया गया है किन्तु "पुन सर्वत्र सर्वगुणा." यह उक्ति तात्पर्य के विपरीत कथन पुष्ट करती है । अत यहाँ अस्थानयुक्तत्व दोष है ।

अर्थान्तरसंक्रमित वाच्यध्वनि : "क्व न पुन सर्वत्र सर्वे गुणा" मे रावण के समस्त गुणो की अनुपादेयता ध्वनित होने के कारण 'अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य-ध्वनि' भी लक्षित हो रही है ।

अनौचित्य कवि जब भावविभोर हो जाता है, उस समय किंचित असावधानी भी अनौचित्य को जन्म दे देती है ।

(क) प्रबन्धानौचित्य या वृत्त का अनौचित्य इतिहास-सम्मत तथ्यो के विपरीत वृत्त का अनौचित्य प्रकट करता है । सीता-स्वयवर मे सम्मिलित राक्षस-पति रावण की यह उक्ति देखिये—

यत्पार्वतीहठकुचग्रहणे प्रवीणे पाणौ स्थित पुरभिद शरदा सहस्रम् ॥
गीर्वाणगारवणनिर्मित-गात्रमत्र तन्मैथिलीक्रयधन धनुराविरस्तु ॥[२]

रावण ने कहा कि मैथिली को खरीदने का मूल्य वह धनुष यहाँ प्रत्यक्ष होवे । इसे सुनकर जनक कहते हैं—"आविरस्तु समगर्भसम्भवया सीतया' स्वय उद्भूत जानकी के साथ वह धनुष प्रगट हो" जनक के इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे राक्षसपति रावण को जानकी देना चाहते हैं । किन्तु राक्षसराज को शिरीष-सी कोमल कन्या का दान प्रबन्धानौचित्य का निर्माण करता है ।

(ख) **अवस्थानौचित्य** . इसी प्रकार क्षीरकण्ठ राम द्वारा ताडका को ताडना देना तथा जिनके कानो के पास के केश श्वेत हो रहे हैं ऐसे परशुराम के साथ युद्ध छेडना अवस्थानौचित्य का विधान करता है । देखिये—

१. बालरामायण १।३६

२. बालरामायण १।३९

'ज्यायान् धन्वी नवधृतधनुस्ताम्रहस्तोदरेण
क्षत्रक्षोदव्यतिकरपटुस्ताड़काताडनेन ।
कर्णाभ्यर्णस्फुलितपलित क्षीरकण्ठे न सार्धं
योद्धुं वाञ्छन्न कथममुना लज्जते चन्द्रहास. ॥'[१]

धनुर्धारियो मे सर्वश्रेष्ठ, क्षत्रियो के विनाश करने मे सक्षम, जिनके कानो के पास के केश श्वेत हो रहे हैं (अर्थात् जो बुढापे की ओर अग्रसर हो रहे है) ऐसे महाबली परशुराम, नये नये धनुष धारण करने के कारण जिनकी हथेली लाल हो रही है, जो ताडका का विनाश कर सके हैं, इतना ही नहीं जो अभी तक क्षीरकण्ठ कहे जा सकते है, ऐसे रामचन्द्र के साथ युद्ध की इच्छा रखते हुए स्वयं ही लज्जित क्यो नहीं हो रहे हैं।

क्षीरकण्ठ राम की अवस्था एव वार्द्धक्यपलितकेश परशुराम की अवस्था का अत्यधिक अन्तर अवस्थानौचित्य को पुष्ट कर रहा है ।

(ग) रसदोष · अनुचित विशेषणो से रस के पोषण मे बाधा होती है। जैसे—

नाले शौर्यमहोत्पलस्य विपुले सेतौ समिद्वारिधे ।
शश्वत्खड्गभुजङ्गचन्दनतरौ क्रीडोपधाने श्रिय ।
आलाने जयकुञ्जरस्य सुदृशा कन्दर्पदर्पे चिरम् ।
श्री दुर्योधनदोष्णि विश्रमघने लीन जगन्नन्दति ॥[२]

अर्थात् महाराज दुर्योधन का पराक्रमशील बाहु, वीरतारूपी कमलिनी का नाल-दण्ड है, युद्धरूप समुद्र का बाँध है, खड्ग रूपी भुजगमो के लिये चन्दनवृक्ष है, राज्य-श्री का क्रीडोपधान है, विजयकुजर को बाधकर रखने वाली शृंखला है और मृग-लोचनाओ के लिये कामदेव का दर्प है । उसकी छाया मे विश्रान्त यह सारा ससार परमानन्द को प्राप्त करे ।

इस पद्य मे दुर्योधन की भुजा के लिये कठिन विशेषणो के बीच कमलनाल जैसे कोमल शब्द का प्रयोग अत्यन्त अनुचित है । क्योंकि वीर रस के पोषण मे यह बाधक है । अतः रस मे विरसता उत्पन्न हो रही हैं । वाक्यगत अनौचित्य भी उत्पन्न हो गया है ।

एक और उदाहरण देखिये—

एतस्या. स्मरसज्वर' करतलस्पर्शं परीक्ष्यो न य.
स्निग्धेनापि जनेन दाहभयत प्रत्यस्तथ पायसाम् ।

१. बालरामायण ४।१ २. बा० रा० २।११

निर्वीयीकृत-चन्दनौषधविधौ तस्मिन्स्तडत्कारिणो ।
लाजस्फोटममी स्फुटन्ति मणय सर्वेऽपि हारस्रजाम् ॥[1]

इस श्लोक मे प्रमुख रस विप्रलम्भ शृगार होने के कारण माधुर्य का होना आवश्यक है । किन्तु 'तडत्कारिणो लाजस्फोटममी स्फुटन्ति' के प्रयोग से ओजगुण उत्पन्न होने के कारण अनौचित्य का सचार हो गया है ।

रावण के प्रति परशुराम की इस उक्ति मे सम्प्रदानानौचित्य है—

तद्वाच्य स दशाननो मयगिरा दत्ता द्विजेभ्यो मही ।
तुभ्यं ब्रूहि रसातलात्त्रिदिवसो निर्जित्य कि दीयताम् ॥

पदांशगत अवाचकत्व दोष बालरामायण के रामरावणीय अक मे परशुराम के प्रति रावण की इस उक्ति मे अवाचकत्व दोष है—

चापाचार्यस्त्रिपुरविजयी कार्तिकेयो विजेय
शस्त्रव्यस्त मदनमुदधिर्भूरियं हन्तकार ।
अस्त्यैवैतत् किमु कृतवता रेणुकाकण्ठबाधा
बद्धस्पर्द्धस्तव परशुना लज्जते चन्द्रहास ॥[2]

यहाँ 'विजय' इस पद मे यत् प्रत्यय 'क्त' प्रत्यय के अर्थ मे प्रयुक्त है जो अवाचक है । अत यहाँ अवाचकत्व दोष स्पष्ट दीख पड रहा है ।

अर्थान्तरैकपदता दोष : रामचन्द्र के साथ सीता को वनवास के लिये छोड आने पर सुमन्त्र दशरथ को समाचार दे रहे है—

मसृणचरणपात गम्यता भू सदर्भा ।
विरचय सिचयान्त मूर्ध्नि धर्म कठोर ।
तदिति जनकपुत्रीलोचनैरश्रुगर्भै ।
पथि पथिकवधूभिर्वीक्षिता शिक्षिता च ॥[3]

वन जाते समय राहगीरो की (साथ चलने वाली) स्त्रियो ने आँखो मे आँसू भरकर जनकतनया को देखा और समझाया कि दर्भो-भरी भूमि पर हल्के हल्के पैर रखकर चलो । धूप तेज हो रही है इसलिये साडी का पल्ला सिर पर डाल लो ।

यहाँ 'तदिति मे तद्' शब्द दोषपूर्ण है । 'तद्' शब्द 'घर्म. कठोर तत् सिचयान्त विरचय' इस प्रकार का हेतु रूप पूर्वार्ध मे प्रयुक्त होना चाहिये । किन्तु केवल इस एक पद का प्रयोग उत्तरार्ध मे किया गया है इसलिये यह 'अर्थान्तरैकपदता दोष' को अभिव्यक्त कर रहा है ।

---

१. बा० रा० ५।१३ २ बालरामायण ३।३७ ३ बालरामायण ६।३६

विशेष-परिवृत्ति दोष : नायिका मृगांकावली के वियोग मे आतुर राजा विद्याधरमल्लदेव आकाशभाषित के रूप मे सेवकों को 'भो' शब्द से संबोधित कर रहे हैं—

श्यामा श्यामलिमानमानयत भो सान्द्रैर्मषीकूर्चकै-
र्मन्त्रं तन्त्रमुत प्रयुज्य हरत श्वेतोत्पलानां श्रियम् ।
चन्द्रं चूर्णयत क्षणाच्च कणश कृत्वा शिलापट्टके
येन द्रष्टुमहं क्षमे दश दिशास्तद्वक्त्रमुद्राङ्किताः ।।[1]

हे सेवको ! गहरी काली स्याही की कूचियों से रात्रि को काला कर दो और चन्द्रमा को पत्थर की शिलापर रखकर कण कण में पीस डालो जिससे मैं दसो दिशाओ को उसकी मुख मुद्रा से अंकित देख सकूँ ।

यहाँ रात्रि के लिये केवल 'श्यामा' शब्द का उपयोग उपयुक्त नहीं है । यदि चन्द्र है तो चाँदनी रात का उल्लेख होना चाहिये। किन्तु यहाँ श्यामा शब्द से अँधेरी रात्रि का बोध इष्ट होने के कारण विशेष परिवृत्ति दोष भासित हो रहा है।

रसदोष . वर्णन प्रकृत रस के परिपाक का पोषक होना चाहिये अन्यथा अनङ्गकीर्तन नामक रस-दोष होता है ।

कर्पूरमंजरी की प्रथम जवनिका मे राजा और रानी वसन्त के सौंदर्य का वर्णन करते हैं जो प्रसंगानुकूल है । किंतु बीच मे ही उस मूल प्रसंग को छोड़कर चारण द्वारा वर्णित वसन्त-वैभव की प्रशंसा करने लगते हैं । यहाँ प्रकृत रस के अनपकारक का विस्तृत वर्णन सदोष है ।

व्याकरण-दोष : प्राकृत प्रत्यय 'इल' का प्रयोग केवल महाराष्ट्री में होना है किंतु राजशेखर ने भाषा की परम्परा के विरुद्ध 'बालरामायण' मे शौरसेनी में 'कोदूहलिल्ल' का प्रयोग किया है जो दोषपूर्ण है ।

उपर्युक्त दोष राजशेखर की विशाल ग्रन्थ-सम्पदा की तुलना मे अत्यल्प है । गुणोत्कर्ष के समुद्र मे ये दोष जल की कुछ मैली बूंदों के समान विलीन हो गये हैं ।

काव्य-सौन्दर्य

काव्य के उपकरण शब्द और अर्थ है । मनोरम वर्ण-योजना एवं शब्दों का उत्कृष्ट चयन काव्य में सौष्ठव उत्पन्न करते हैं । शब्दालंकार भी काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। आन्तरिक सज्जा का सम्बन्ध अर्थ के साथ रहता है जिसका आधार शब्द-शक्ति और उक्ति-वैचित्र्य है। कवि स्वानुभूति को अभिव्यक्ति-कौशल से

---

१ वि० भ० ३–१

माध्यम से व्यक्त करता है । छन्द काव्य को गेयता प्रदान करते है । ये सभी मिलकर काव्य सौष्ठव का निर्माण करते है । प्रस्तुत अध्याय मे इन्हीं विषयो पर विचार किया जायगा ।

नादसौन्दर्य या अर्थध्वनन : राजशेखर की पद-सरचना अभीप्ट अर्थ की व्यञ्जना तथा उसकी प्रभावोत्पादकता मे वृद्धि करती है । भूला झूलती नायिका का एक शब्दचित्र देखिये—

रणंतमणिणेउर झणझणतहारच्छडं
फलक्कणिदकिंकिणी मुहरमेहलाडवरं ।
विलोलवलग्रावली जणिदमञ्जुसिजारव
ण कस्स मणमोहण ससिमुहीग्र हिदोलण ॥[1]

मणिनूपुरो के झकार से युक्त, हारावली के झन झन शब्द से पूर्ण, करधनी की छोटी छोटी घण्टियो के मधुर शब्द से युक्त यह चन्द्रमुखी का झूला झूलना किसके मन को मोहित नही करता ?

यहाँ 'रणतमणिणेउर' 'झणझणत' 'कणकणिग्र मञ्जुसिजारव' ग्रादि पदो की वर्ण-मैत्री कानो को तो सुखद लगती ही है, साथ ही इसकी ध्वनि ग्रान्दोलित झूले का साक्षात् चित्र भी उपस्थित करती है । झूला झूलन का एक ग्रन्य चित्र देखिये—

'गाग्रन्त गोवबहूपग्रपेंखिदासु ।
दोलासु विब्भमवदीमुणिविट्ठदिट्ठी
ज जादि खिमदुग्गरहो दिणेसो ।
तेणव्व होंति दिग्रहा ग्रडदीहदीहा ॥[2]

गाती हुई गोपियों के चरणो से ग्रान्दोलित एव मन को हरण करने वाले झूले पर सूर्य की दृष्टि लगी हुई है, जिससे उसके घोडो की गति ग्रस्त-व्यस्त हो जाती है, ग्रौर रथ विषम गति से बढ़ता है। इसी कारण दिन ग्रधिक लम्बे हो जाते है।

इस पद्य मे स ग ग्र वर्णो की सयुक्त ध्वनियाँ मानो गोपियो के चरणो के ग्रनुरूप ताल दे रही है । यह विलक्षण वर्ण-सौन्दर्य का निदर्शन है ।

इस प्रकार राजशेखर ने ध्वन्यात्मक शब्दो के प्रयोग द्वारा ग्रपनी ग्रभिव्यक्ति को न केवल ग्रर्थग्रहण की दृष्टि से ग्रपितु सगीत की दृष्टि से भी समर्थ ग्रौर मनोरम बना दिया है ।

१. कर्पूरमञ्जरी ३-३२ । २ कर्पूरमञ्जरी १-३१ ।

शब्द-सौंदर्य : राजशेखर ने यद्यपि शब्द-शक्ति के संबंध में अपना कोई सैद्धांतिक मत प्रस्तुत नहीं किया तथापि इतना निश्चित है कि शब्द के व्यापार संबंधी तथ्यों में वे भलीभाँति परिचित थे । यही कारण है कि वे अपनी रचनाओं में वाचक शब्दों द्वारा भी उच्चकोटि के सौन्दर्य की सृष्टि कर सके हैं । उदाहरणार्थ अर्ध चन्द्र के लिये—भगवान् त्रिलोचन जिसे शीर्ष पर धारण करते हैं (जं भअवं तिलोअणो सीसे समुव्वहदि)[1] ; मुखचूर्ण रूपप्रसाधन के लिये—अशोक तरु जिससे दोहद प्राप्त करता है—(जेण असोअतरू दोहलं लहेदि)[2] ; कान के लिये—'जुहिट्ठिल जेट्ठभाअरणामधेय अंग'[3] तथा उत्तरासाढ़ापुरस्सर णक्खत्तणामधेय अंग जुपल[4], हाथ के लिये—"उत्तरफग्गुणीपुरस्सररणक्खत्तणामधेयं अंग"[5] आदि शब्दों का वाच्यार्थ-सौन्दर्य इतना मुखरित हो रहा है कि इनके स्थान पर अन्य समानार्थक शब्दों का रखना काव्य के सौन्दर्य को नष्ट करना होगा ।

शब्दालंकार : शब्दालंकार में अनुप्रास, यमक और श्लेष अलंकार ही ऐसे हैं जो भाषा-सौंदर्य में विशेष रूप से वृद्धि करते हैं । अनुप्रास में भाषा के अन्तर्गत चमत्कृति उत्पन्न होती है । राजशेखर ने अपनी रचनाओं में रस-व्यञ्जना के लिये इन तीनों का ही आश्रय लिया है । परन्तु इन में भी उनका सर्वाधिक लगाव अनुप्रास के प्रति है । यही कारण है कि उनकी अधिकांश पंक्तियों में इस अलंकार की छटा दीख पड़ती है ।

तत्र च शरनिकरवर्षणे, क्षितितलनिघर्षणे सुभटवर्षणे, वानर मनोघर्षणे परस्पर प्रतिहतिनिभर्षणे कीलालपवर्षणे, लोमहर्षणे च महारम्भे समरसंरम्भे ।[1]

यहां पद के अन्त में वर्षणे, घर्षणे, वर्षणे, घर्षणे, भर्षणे वर्षणे, हर्षणे रम्भे आदि शब्द मधुर संगीत की सृष्टि कर रहे हैं ।

मूलेमूले पथि विटपिनां मेदिनी दीर्घमार्गे
शुष्यत्कण्ठी पिबति सलिलं निर्झरे निर्झरे च ।
जातत्रासा निमिषति दृशा कन्दरे कन्दरे च
स्थाने स्थाने वहति च मतिं बद्धपाताभिलाषा ॥[2]

उक्त श्लोक के प्रथम चरण में 'मूल' द्वितीय में निर्झर तृतीय में 'कन्दरे' और चतुर्थ में 'स्थाने' की आवृत्ति हुई है । यहाँ अनुप्रास का प्रयोग कोमलता एवं सूक्ष्म सौन्दर्य को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करना है ।

---

१. क० म० १।२०–२१ चेटी की उक्ति । २. वही १–२० चेटी की उक्ति ।
३. वही १–२०–२१ विदूषकोक्ति ।
४–५. वही १–२०–२१ विचक्षणाकी उक्ति ।

राजशेखर के यमक अलंकार की छटा भाषा को रमणीयता प्रदान करती है। देखिये—

> स्फुटद्दोर्दण्डखण्डोड्डमर   पुरपतत्ताण्डकोष्ठप्रकोष्ठम् ।
> स्फारस्फिक् पृष्ठपीठोहठदलितशिराकन्धराकाण्डखण्डम् ॥
> सस्तम्भ क्षतडिम्भ चटदिति विचटन्मुण्डपिण्ड प्रचण्ड ।
> चण्डीशोच्चण्ड-दण्डाङ्कुच दृढ इव   चन्द्रहासस्तुणेद्ध ॥[1]

यहाँ मुण्ड, पिण्ड, चण्ड, दण्ड, खण्ड में ण्ड की, कोष्ठ, प्रकोष्ठ में ष्ठ की; स्तम्भ डिम्भ में म्भ की और चटत्, विचट में चट की आवृत्ति न केवल युद्ध की बाह्य ध्वनि को प्रकट कर रही है वरन् युद्ध की भयकरता को भी सूचित कर रही है।

राजशेखर अनुप्रास एवं यमक के समान श्लेष अलंकार का भी कुशलता से प्रयोग करते है। वानर सेतु-बन्ध के लिये जिन साधनों का चयन कर रहे हैं, वे हैं—

'देव पेक्ख दाव—रहसुम्मुलिदतालमाल, सहत्थम्भामिदपहरणसज्जसज्ज समुहागदहिन्तालताल दूरून्नामिदकुसुमपाडलपाडल गमणन्दोलिदविसालसाल रहसुच्छलिदपडन्तकेसरकेसर गहिदमज्जगसरलसरल लोलिदकुसुममदणमदण पअट्टदच्छरिदसब्ब-सत्तमप्पग्गण्डकरवालिदरामरराम करजुअलवन्धरसवसम उल्लसीदपीदरपीवर णिसमगरठिणकक्करक्कर णहप्पहाणदण्डसत्थपत्थर पहाणीकदाचलगण्ड-गण्डसेल्ल समुल्लोच्छलिद पहाणम्पवल वाणरवलम्।

उक्त उदाहरण में सज्ज, ताल, पाडल, साल केसर, सरल मदण सत्तम पलाम, पीवर, कक्कर, पत्थर आदि शब्द श्लेषयुक्त है। यहाँ कवि का वाग्वैदग्ध्य काव्य-सौंदर्य को पुष्ट कर रहा है।

उक्ति-वैचित्र्य : "प्रत्यक्षोऽपि परोक्षानिव भणितिगुणा विवृते वा नवेति।

उक्ति-वैचित्र्य उत्तम काव्य का सहज गुण है। इससे भाषा में वह धार आ जाती है जो व्यंग को तीक्ष्ण बनाने में सहायता प्रदान करती है। यहाँ वैचित्र्य शब्द से हमारा अभिप्राय भणितिनिपुण या कवि-कर्म-कौशल-जन्य शब्दार्थचारुता से है जिसके लिये परवर्ती आचार्य कुन्तक ने वक्रता शब्द का प्रयोग किया है। अतएव राजशेखर के उक्ति-वैचित्र्य की परीक्षा के इस प्रसग में वक्र उक्तियों के विभिन्न रूपों का प्रस्तुतीकरण अनुचित न होगा।

---

१ बाल० अ० ५ पृ० ७९।   २ बा० रा० ८-५०-५१

(१) विशेषण-वक्रता : वियोगिनी नायिका की दशा के इस चित्रण में विशेषण-वक्रता का सुन्दर प्रयोग हुआ है—

दाहोऽम्भः प्रसृतिम्पचः प्रचयवान् वाष्पः प्रणालोचितः ।
श्वासाः प्रेङ्खितदीपदीप्तलतिकाः पाण्डिम्नि मग्नं वपुः ।
किंचान्यत् कथयामि रात्रिमखिलां त्वन्मार्गवातायने
हस्तच्छत्रनिरुद्धचन्द्रमहसस्तस्याः स्थितिर्वर्तते ॥[1]

हे नायक, तुम्हारे विरह में नायिका के शरीर का दाह पानी को सुखा देने वाला है, आँसू नाली में बहने योग्य हैं, उष्ण निःश्वास हिलती हुई प्रज्वलित दीपमाला के समान है और सारा शरीर सफेदी में डूबा हुआ है। और अधिक क्या कहूँ? वह सारी रात अपने हाथ के छत्र से चाँदनी को रोके हुए तुम्हारी प्रतीक्षा में तुम्हारे मार्ग की ओर वाले झरोखे में बैठी रहती है।

यहाँ दाह, वाष्प, श्वास और वपु इन विशेष्यों के साथ 'अम्भः प्रसृतिम्पच' 'प्रणालोचित' 'प्रेङ्खितदीपदीप्तलतिका' और 'पाण्डिम्नि मग्नम्' विशेषणों के प्रयोग में अत्यधिक चारुता आ गई है।

(२) शब्दवक्रता : उक्त उदाहरण में 'प्रसृतिम्पच' शब्द प्रसृतिं पचति इति इस विग्रह के अनुसार प्रसृतिपूर्वक पच् धातु से 'परिमाणे पचः' सूत्र से खश् प्रत्यय और 'खित्यनव्ययस्य' से मुम् का आगम होकर बनता है। वियोगिनी के शरीर में इतना दाह है कि यदि चुल्लू भर पानी लिया जाय तो वह क्षण भर में तप्त होकर उड़ जायगा। यहाँ प्रसृतिम्पच में स्वभाव सुन्दर मुम प्रत्यय रचना की शोभा को उत्पन्न करने वाली किसी अपूर्व शब्दवक्रता को परिपुष्ट कर रहा है।

(३) वेत्तिवैचित्र्यवक्रता : नायिका का शरीर विरहाधिक्य के कारण पाण्डुता में डूब रहा है। वियोग के दुःख में पीले पड़ जाने के लिये 'पाण्डिम्नि मग्नं वपुः' का प्रयोग कितना शोभनीय है। यह वृत्त वैचित्र्यवक्रता को स्पष्ट कर रहा है।

(४) लिङ्गवैचित्र्य वक्रता : भिन्न-भिन्न लिङ्गों के सामानाधिकरण्य के प्रयोग से उत्पन्न शोभा कुछ अपूर्व होती है। इसे साहित्यशास्त्री लिङ्गवैचित्र्य-वक्रता कहते हैं।

---

१. वि० श० २।२१

रावण के वचनों में यह वक्रता दीख पड़ती है—

> यस्यारोपणकर्मणापि बहवो वीरव्रतं त्याजिताः ।
> कार्यं पुङ्खितबाणमीश्वरधनुस्तद्दोर्भिरेभिर्मया ।
> स्त्रीरत्नं तदगर्भसम्भवमितो लभ्यं च लीलायितं
> तेनैषा मम फुल्लपङ्कजवनी जाता दृशां विंशतिः ॥[1]

जिसके आरोपण के व्यापार ने ही बहुतों को वीर व्रत से मुक्त कर दिया है, उसी धनुष पर मुझे अपनी इन भुजाओं से बाण चढ़ाना है जिससे मुझे अयोनिजा स्त्रीरत्न की प्राप्ति होगी । अत ये मेरी बीसों आँखें खिले हुए कमलों के समूह के समान सुशोभित हो रही है ।

यहाँ 'दृशां विंशति' के स्त्रीलिङ्ग और फुल्लपङ्कजवनम् के नपुंसकलिङ्ग होने तथा उन दोनों का समानाधिकरण प्रयोग होने से लिङ्गवैचित्र्यवक्रता का बोध हो रहा है ।

> नम्रम्वना लासितकल्पवल्ली प्रवालबालव्यजनेन तस्य
> उरःस्थलेऽकीर्यत दक्षिणेन सर्वास्पदं सौरभमङ्गरागः ।[2]

वायु के द्वारा कम्पित कल्पलता के बालपल्लव रूप व्यजन से दक्षिण पवन ने उसके उरःस्थल पर सर्वोत्तम सुरभिवाला अङ्गराग बिखेर दिया ।

इस श्लोक में 'सर्वास्पद सौरभम्' नपुंसकलिङ्ग और 'अङ्गराग' पुंल्लिङ्ग का समानाधिकरण प्रयोग लिङ्गवैचित्र्यवक्रता को पुष्ट कर रहा है ।

(५) **वर्णविन्यास वक्रता** : मञ्जुल वर्णविन्यास द्वारा काव्य में चारुत्व प्रस्फुटित होता है । सीता स्वयंवर के अवसर पर मिथिलापुरी आते हुए रावण के सेनापतियों को दिये हुए आदेश में वर्णविन्यासवक्रता दीख पड़ती है—

> ताम्बूलीनद्धमुग्धक्रमुकतरुतलप्रस्तरे सानुगाभिः
> पायं पायं कलाचीकृतकदलदलं नारिकेलीफलाम्भः ।
> सेव्यन्तां व्योमयात्राश्रमजलजयिनः सैन्यसीमन्तिनीभिः
> र्दात्यूहव्यूहकेलीकलितकुहकुहारावकान्ता वनान्ताः ॥[3]

यहाँ पायं पायं, कदलदल, दात्यूहव्यूहकेलीकलित कुहकुहाराव कान्ता, वनान्ता आदि में दो दो अक्षरों के एक साथ विन्यास से वक्रता उत्पन्न हो गई है ।

---

१. बालरामायण १।३०   २. बालरामायण ७।६६   ३. बालरामायण १।६३

वर्णविन्यास से उत्पन्न सौष्ठव का दूसरा उदाहरण सीता को प्राप्त न कर सकने के कारण उन्मत्त रावण की चकोरों को सम्बोधित कर कही गई उक्ति में लक्षित होता है—

> अयि पिबत चकोरा कृत्स्नमुन्नाय कण्ठान्,
> क्रमकवलनचञ्चच्चन्द्रकान्तीरमिश्रा. ।
> विरहविधुरिताना जीवितत्राणहेतो
> र्भवति हरिणलक्ष्मा येन तेजो दरिद्र ।

इस छन्द में कृत्स्नम्, उन्नाय कण्ठान्, चञ्चच्चन्द्रकान्तीरमिश्रा, त्राणहेतो हरिणलक्ष्मा आदि पदों की एक साथ योजना में वर्ण-विन्यास जन्य सौंदर्य की सृष्टि होती है।

(६) वचनवैचित्र्यवक्रता : "मैथिली तस्य दारा ।" यह रावण की उक्ति है। यहाँ मैथिली एक वचन और दार बहुवचन में प्रयुक्त है। इसलिये यह वचनवक्रता या प्रत्ययवक्रता का उदाहरण है। इसी प्रकार मैथिली शब्द स्त्रीलिङ्ग और दार पद पुंलिङ्ग होने के कारण लिङ्गवक्रता की भी प्रतीति हो रही है।

(७) प्रकरण-वक्रता : जहाँ एक नाटक के भीतर दूसरा नाटक प्रयुक्त होकर सारे प्रबन्ध की सर्वस्वभूत अलौकिक वक्रता को पुष्ट करता है उसे शास्त्रकार प्रकरण वक्रता कहते हैं। राजशेखर द्वारा बालरामायण नाटक में सीता-स्वयंवर नामक गर्भाङ्क की स्थापना प्रकरण-वक्रता का उदाहरण है।

राजशेखर के उक्ति-वैचित्र्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि उन्होंने इस तत्व का अपनी रचनाओं में जिस कौशल के साथ निर्वाह किया है वह उस युग के किसी अन्य कवि में नहीं मिलता। ये प्रयोग न केवल शास्त्रीय दृष्टि से विशेष हैं अपितु साहित्यिक सौंदर्य की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं।

राजशेखर में हम नाद-सौंदर्य, शब्द-सौंदर्य, शब्दों की अलङ्कृति एवं वक्रोक्ति का उचित विन्यास यत्र-तत्र पाते हैं। यह उनके औचित्य-विवेक का ही प्रदर्शन नहीं करता प्रत्युत काव्य-सौंदर्य को भी द्विगुणित कर देता है।

राजशेखर की भाषा

राजशेखर 'कविराज' थे। उस समय कविराज की उपाधि से वही विभूषित हो सकता था जो कवि विभिन्न भाषाओं विभिन्न प्रबन्धों और विभिन्न रसों में

काव्य-निर्माण करने में समर्थ होता था।[1] राजशेखर की कृतियों को देखकर उनकी 'कविराज' उपाधि की सार्थकता स्वयंसिद्ध हो जाती है। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने न केवल शताब्दियों से चली आने वाली संस्कृत की साहित्यिक परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा, साथ ही अभिजात समाज द्वारा उपेक्षित प्राकृत भाषा को सट्टक नामक उपरूपक में प्रतिबद्ध कर पूर्णतया साहित्यिक रूप दे दिया। उनके युग में विभिन्न प्रान्तीय भाषायें भी प्रचलित थीं। उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का भी यथावसर प्रयोग किया। इस प्रकार राजशेखर की भाषा में संस्कृत, प्राकृत एवं देशज शब्दों का समन्वय हो गया है।

राजशेखर की संस्कृत — राजशेखर की संस्कृत व्याकरण-परिनिष्ठित, परिमार्जित एवं प्रौढ़ है। इनके द्वारा प्रयुक्त संस्कृत शब्दावली एक वृहद् शब्द-कोष निर्माण करने की क्षमता रखती है। एक शब्द के लिये अनेक पर्यायों का प्रयोग उनके समृद्ध शब्द भाण्डागार का सूचक है। उदाहरणार्थ शिव के पर्यायवाची शब्द, जिनका प्रयोग राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है, इस प्रकार हैं— नीललोहित,[2] इन्दुमौलि,[3] भूतपति,[4] त्रिपुरारी,[5] गिरीश[6] पार्वतीपति,[7] श्रीकण्ठ,[8] महेश्वर,[8] रुद्र,[9] शिपिविष्ट,[10] हर,[11] महादेव[12] भव[13] इन्दुशेखर[14] शम्भु,[15]

---

१. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० ४५ यस्तु तत्र तत्र भाषाविषयेषु तेषु तेषु प्रबन्धेषु तस्मिंस्तस्मिंश्च रसे स्वतन्त्रः स कविराजः।
२. बालरामायण अ० १ पृ० १२, अ० ३ पृ० ८१, अ० ४ पृ० १०२, अ० ६ पृ० १७७। ३. वही अ० १ पृ० १६, अ० २ पृ० ४२, अ० ३ पृ० ६१।
४. वही अ० १ पृ० १७, २६। ५ वही अ० ४ पृ० ९२, ९८ काव्यमीमांसा अ० ९ पृ० ४४, अ० ११ पृ० ६०। ६. बालरामायण अ० ४ पृ० ८५।
७ बालरामायण अ० ३ पृ० ७६। ८ वही अ० १ पृ० १८, अ० २ पृ० ४०।
९ वही अ० १ पृ० १९, २१, २४। १० वही अ० १ पृ० १८। ११ वही अ० २ पृ० ४३, ४८, अ० ३ पृ० ६५, अ० ४ पृ० ९४। १२ वही अ० १ पृ० २१, अ० २ पृ० ३१, ३२, ३६। काव्यमीमांसा अ० १७, ८९, अ० १५ पृ० ८५। १३ वही अ० २ पृ० ४१, अ० ३ पृ० ८२। १४. वही अ० १ पृ० २२, २९; अ० २ पृ० ४५, अ० ३ पृ० ६२, ७८। १५ वही अ० १ पृ० २३; काव्यमीमांसा अ० १२ पृ० ६३।

पशुपति,[१] चण्डीश,[२] उमापति,[३] अर्धनारीश्वर,[४] जम्मारि,[५] गिरीशपति,[६] धूर्जटि,[७] चन्द्रशेखर,[८] खण्डेन्दुचूडामणि,[९] शितिकण्ठ, मृगाङ्कचूडामणि, त्रिनयन,[१०] भवानीपति,[११] स्थाणु,[१२] विरूपाक्ष,[१३] त्र्यम्बक,[१३] त्रिलोचन,[१४] नीलकण्ठ,[१४] भवानीवल्लभ,[१४] शशिशेखर,[१५] वृषभध्वज,[१६] वृषध्वज,[१७] त्रिपुरप्लोषी,[१८] वृषलाञ्छन,[१९] अर्धेन्दुमौलि,[२०] पार्वती-प्राण-नाथ,[२१] इन्दुमौलि,[२२] चन्द्रचूडामणि,[२३] वृषभलाञ्छन,[२४] त्रैयक्ष,[२४] सदाशिव,[२५] भाललोचन,[२५] प्रेतनाथ,[२६] ईश्वर,[२७] परमेश्वर,[२८] प्रीतेन्दुमौलि[२८] शूलपाणि,[२९] त्रिपुरान्तकर,[३०] भवानीसखा,[३१] वृषाङ्क,[३२] शङ्कर,[३३] रुद्र,[३४] श्यामकण्ठ,[३५] दिगम्बर,[३६] दिग्वासस्,[३७] शूली,[३८] चन्द्रचूड,[३८] मृड[३९] ।

---

१ बालरामायण अ० १ पृ० २५, अ० २ पृ० ४४,४८, ५१, काव्यमीमासा अ० १२ पृ० ६३ । २ वही अ० १ पृ० २७, अ० २ पृ० ४६, अ० ३ पृ० ८०, ८२ । ३ वही अ० २ पृ० २९; अ० ३ पृ० ७७ । ४ वही अ० १० पृ० २८८, कर्पूरमजरी १, २८, २९ । ५. वही अ० २ पृ० २९ । ६. वही अ० २ पृ० ३२ । ७ वही अ० ३ पृ० ८० काव्यमीमासा अ० १३ पृ० ७२ । ८. वही अ० ३ पृ० ७३, अ० ४ पृ० ९६ । ९ वही अ० २ पृ० ३७ । १०. वही अ० ४ पृ० ८८ । विद्धशालभजिका अ० ४,१४,१५ । ११. वही अ० ३ पृ० ५३ । विद्धशालभजिका अ० ४,२७ । १२ वही अ० २ पृ० ४३, ४५; विद्धशालभजिका अ० १,२२ । काव्यमीमासा अ० १३ पृ० ७६ । १३. वही अ० ४ पृ० ८७ कर्पूरमजरी ३ २०, २१; काव्यमीमासा अ० १३ पृ० ७२ । १४. वही अ० २ पृ० ४१, अ० ३ पृ० ६५, ८१; अ० ४ पृ० ८६ । १५. वही अ० २ पृ० ४३ । १६ वही अ० २ पृ० ५१ । १७ वही अ० २ पृ० ७८ । १८. वही अ० ३ पृ० ९० । १९ वही अ० ३ पृ० ८२ । २०. वही अ० ४ पृ० ८८, ९२ । २१. वही अ० ४ पृ ८८ । २२ वही अ० ४ पृ० ९१ । २३ वही अ० ४ पृ० ९३ । २४ वही अ० ४ पृ० ९५ । २५. वही अ० ४ पृ० १०० । २६. वही अ० ४ पृ० १०९ । २७. वही अ० ४ पृ० ११६ । २८. वही अ० ४ पृ० ११९ । २९. बालरामायण अ० ८ पृ० २५३ । ३०. वही अ० ९ पृ० २६१ । ३१. वही अ० ९ पृ० २६१ । ३२. वही अ० १० पृ० २९० । ३३ काव्यमीमासा अ० १६ पृ० ८६, ८७ । ३४. वही अ० १३ पृ० ७२ । ३५. वही अ० ११ पृ० ६० । ३६. बालरामायण अ० २ पृ० २९ । ३७ काव्यमीमासा अ० ५ पृ० १६ । ३८. बालरामायण अ० ३ पृ० ९७ । ३९. वही अ० ३ पृ० ७९ ।

राजशेखर के ग्रन्थों में सीता के भी अनेक नाम मिलते हैं। जैसे पृथ्वीपुत्री,[1] कमलाक्षी, मृगाक्षी, ललिताङ्गी, कृशाङ्गी,[2] जनकनन्दिनी, रामगृहिणी,[3] वैदेही,[4] मैथिली,[5] जनकराजपुत्री,[6] जानकी,[7] जनकतनया,[8] धरणी-सुता,[9] जनकात्मजा,[10] जनकराजकन्या,[10] अगर्भसम्भवा,[10] और सीर-ध्वजात्मजा।[11]

रामचन्द्र के भी अनेक नामों की जानकारी बालरामायण से प्राप्त होती है। यथा-रामभद्र,[12]राम,[13]राघव,[14] दाशरथि,[15] रघुनन्दन,[16] सीतापति,[17] रघुपति,[18] जानकीवल्लभ,[19]रघुग्रामणी[20], मार्तण्डकुलप्रकाशतिलक[20], त्रैलोक्य-रक्षामणि,[20] रामदेव,[21] दशरथनन्दन,[22] बालनारायण[22], भरताग्रज,[23] कोशलनरेन्द्र-नन्दन,[24] रघुकुलचन्द्र,[25] मैथिलीनाथ,[26] रघुभुज,[27] दशकण्ठसूदन,[28] कौशल्यातनय[29]।

रावण की नामावली भी दृष्टव्य है—दुर्धरतपोविशेषपरितोषितारविन्दा-सन,[30] त्रिभुवनैकमल्ल,[30] हेलाबन्दीकृतमहेन्द्र[30], कपिशलोमशवाह,[31] अहल्याजार[31]

---

१ वही अ० १० पृ० २८६। २ वही अ० १० पृ० २८४।
३ वही अ० १० पृ० २८१। ४ वही अ० ५ पृ० १३९। ५ वही
अ० २ पृ० ५७,६३, अ० ५ पृ० १४२। ६ वही अ० ५ पृ० १२४।
७ वही अ० ३ पृ० ५७,६४। ८ वही अ० ३ पृ० ५७। ९ वही अ०
१ पृ० १६। १०. वही अ० १ पृ० १९। ११ वही अ० ५ पृ० १२३।
१२ बालरामायण अ० १ पृ० १४। १३ वही अ० २ पृ० ३२, अ० ३
पृ० ५६। १४. वही अ० २ पृ० ४८। १५ वही अ० ६ पृ० १७७।
१६. वही अ० ४ पृ० ११२। १७ वही अ० ५ पृ० १४४। १८ वही
अ० ६ पृ० १४९। १९ वही अ० ७ पृ० १७३। २० वही अं० ७
पृ० १७९। २१ वही अ० ७ पृ० १८३। २२ वही अ० ७ पृ० १८९।
२३. वही अ० ८ पृ० २१५। २४ वही अ० ९ पृ० २५९। २५ वही
अ० ३ पृ० ५७, अ० ६ पृ० १६०। २६ वही अ० ९ पृ० २७०। २७ वही
अ० १० पृ० २९३। २८. वही अ० १० पृ० ३०७। २९ वही अ० ६
पृ० १५६। ३०. बालरामायण अ० १० पृ० २७३। ३१. वही अ० ९
पृ० २६१।

द्रुहिणप्रणप्ता,[1] लङ्केन्द्र,[2] लङ्काभर्ता,[3] निशाचरपति, [4] दशानन,[4] पुलस्त्यापत्य,[5] दशकण्ठ,[6] दशवदन,[7] पौलस्त्य,[8] दशकन्धर,[9] पातकैकरसिक, विरञ्च-कुलकलङ्क, लङ्कोपपति, कुबेरवैरी,[10] संक्रन्दननन्दन,[11] निशाचरचक्रवर्ती,[12] नक्तंचरचक्रवर्ती,[13] राक्षसेन्द्र,[14] पुलस्त्यपुत्र,[15] पुलस्त्यनन्दन,[16] राक्षसचक्रवर्ती[17], दशमुख[18] और दशग्रीव[19] ।

पार्वती के लिये भिन्न पदों का प्रयोग किया गया है पार्वती,[20] हरवल्लभा[21] मृडानी,[22] चामुण्डा,[23] देवी,[23] हिमाद्रिसुता,[24] महेश्वरवल्लभा,[25] भवानी,[25] भगवती,[26] गिरिसुता,[27] अचलसुता,[28] उमा,[29] गिरिदुहितर्,[30] रुद्राणी,[31] गिरिजा,[32] गिरीन्द्रसुता,[33] एवं गौरी[34] ।

इसी प्रकार परशुराम के लिये जामदग्न्य,[35] परशुराम, आजन्मवैखानस, श्रुत्यर्थवीथीगुरु,[36] भार्गव, भर्गशिष्य, रेणुकापुत्र, गिरिशबालशिष्य,[37] भृगुपुंगव,

---

१. वही अ० ८ पृ० २१४, २४३ । २. वही अ० १ पृ० २३, अ० ७ पृ० १८३ । ३ वही अ० ६ पृ० १५६ । ४. वही अ० २ पृ० ५७, अ० ६ पृ० १६० । ५ वही अ० ५ पृ० ११५ । ६ वही अ० १ पृ० १५, अ० ३ पृ० ६४ । ७. वही अ० १ पृ० २३, अ० ३ पृ० ६३ । ८ वही अ० २ पृ० ३६, ४३, ५८ ९ वही अ० १ पृ० १२, अ० २ पृ० ३८ । १० वही अ० २ पृ० ४७ । ११ वही अ० २ पृ० ४६ । १२ वही अ० २ पृ० ४२ । १३. वही अ० २ पृ० ३६ । १४. वही अ० १ पृ० २७ । १५. वही अ० १ पृ० २० । १६. वही अ० १ पृ० २१ । १७. वही अ० १ पृ० २० । १८. वही अ० १ पृ० १६ । १९ वही अ० २ पृ० ३२ । २० वही अ० १ पृ० १९ । २१. वही अ० १ पृ० २५ । २२ वही अ० १ पृ० २३ । २३ कर्पूरमंजरी अ० ४, १९ । २४. बालरामायण अ० २ पृ० ३२ । २५ वही अ० २ पृ० ४५ । २६ वही अ० ४ पृ० ९५ । २७ वही अ० २ पृ० ४४ । कर्पूरमंजरी १।१८ । २८. बालरामायण अ० ४ पृ० ९३ । २९ वही अ० ४ पृ० ९८ । ३०. वही अ० ४ पृ० ९५ । ३१ वही अ० ४ पृ० १०९ । ३२. काव्यमीमांसा अ० १३ पृ० ७१ । ३३ कर्पूरमंजरी अ० १.३ । ३४. वही अ० १, २९, ३० । ३५ बालरामायण अ० १ पृ० १७ । ३६ वही अ० २ पृ० ३२ । ३७ वही अ० २ पृ० ३८, ४३, ५१, ५२, अ० ३ पृ० ८६ ।

इन्दुशेखरारिशिष्य,[1] नीललोहितशिष्य,[2] रेणुकेश,[3] जमदग्निसूनु,[4] भृगुनन्दन,[5] जमदग्न्यपत्य,[6] भार्गवपुङ्गव,[7] जमदग्निज,[8] चण्डीशशिष्य,[8] रेणुकासुनु[9] ।

समुद्र के लिये भागीरथीवल्लभ,[10] जलनिधि,[10] समुद्र,[10] पयोधि,[11] अम्भोधि, अम्बुनिधि, वारानिधि,[12] जलधि,[13] अम्बुधि,[14] तरङ्गिणीनाथ,[14] रत्नाकर,[14] अब्धि,[15] जलधन,[15] सागर,[15] भागीरथीनाथ,[15] पीयूषकर,[15] गङ्गावल्लभ,[15] नदीनाथ,[15] अर्णव,[15] महार्णव,[16] मकरालय,[16] अकूपार,[16] वारिराशि,[17] महोदधि,[18] ये शब्द आये हैं ।

राजशेखर के कोश में अनुकरणात्मक शब्दों का प्राचुर्य है जिनके प्रयोग से भाषा में सौन्दर्य और अभिव्यञ्जकता का समावेश हो गया है । ये शब्द हैं—विरह-माविरह,[19] सुग्रिमसुग्रिम,[20] स्कन्दावस्कन्द,[21] भटभटित,[22] रम्भारम्भादल,[23] तारतारराधिप,[24] कहरहारव,[25] कोष्ठप्रकोष्ठ,[26] कोदण्डदण्ड,[27] भलभल्ल,[28] चक्रचक्र,[29] परशुकपरशुक,[30] शकुन्त-शकुन्त,[31] चतुरङ्ग-चतुरङ्ग,[32] मातङ्गमातङ्ग,[33] स्यन्दनस्यन्दन,[34] अनीकसमनीक[35] ।

---

१ बालरामायण अ० २ पृ० ६० । २ वही अ० २ पृ० ६२ । ३ वही अ० ४ पृ० ९१ । ४ वही अ० ४ पृ० ९५ । ५ वही अ० ४ पृ० ९५ । ६ वही अ० ४ पृ० ९७ । ७ वही अ० ४ पृ० १०० । ८ वही अ० ४ पृ० १०४ । ९ वही अ० ४ पृ० १०९ । १० वही अ० ७ पृ० १८३ । ११ वही अ० ७ पृ० १८६ । १२ वही अ० ७ पृ० १८७, अ० १० पृ० २९८ । १३ वही अ० ७ पृ० १८८ १८९ । १४ वही अ० ७ पृ० १८८ । १५ वही अ० ७ पृ० १८९ । १६ वही अ० ७ पृ० ११९१ । १७ वही अ० ७ पृ० १९३ । १८ वही अ० ७ पृ० १९९ । १९ बालरामायण अ० ५ पृ० २७ । २० वही अ० ५ पृ० २७ । २१ वही अ० ५ पृ० १०९ । २२ वही अ० ५ पृ० १०९ । २३ वही अ० ५ पृ० १३२ । २४ वही अ० ५ पृ० १३३ । २५ वही अ० ५ पृ० १५८ । २६ वही अ० ६ पृ० १९५ । २७ वही अ० ७ पृ० १९९ । २८ वही अ० ७ पृ० २०१ । २९ वही अ० ७ पृ० २०१ । ३० वही अ० ७ पृ० २०१ । ३१ वही अ० ७ पृ० २०१ । ३२ वही अ० ७ पृ० २०१ । ३३ वही अ० ७ पृ० २०१ । ३४ वही अ० ७ पृ० २०१ । ३५ वही अ० ७ पृ० २०१ ।

राजशेखर को कुछ शब्दो से विशेष लगाव है । इन्होंने इन शब्दों की आवृत्ति एव उनका उचित विन्यास किया है । ये शब्द है—गोष्ठीगरिष्ट,[१] षाण्मासिक,[२] मासल,[३] माञ्जिष्ट,[४] सौविदल्ल,[५] दुग्धमुग्ध,[६] षाड्गुण्य,[७] श्रौल्लागत,[८] उपनिषद्,[९] भूर्भुव स्व,[१०] द्विभे,[११] कोदण्ड,[१२] कोदण्डदण्ड,[१३] चण्ड,[१४] डामर,[१५] ग्रामणी,[१६] और ग्राम[१७] । राजशेखर ने कतिपय शब्दो का प्रचलित अर्थ से भिन्न रूप मे प्रयोग किया है । परन्तु उनमे कही विसगति नहीं आने पाई । उदाहरणार्थ— सनाभि का प्रयोग समान अर्थ मे, मूल का उच्च के अर्थ मे, विलिन का मिश्रित के लिये, वन का सामान्य वृक्ष समूह के लिये, प्रणयिनी का सुन्दरी के लिये एव परिभ्रम का भ्रांति के लिये प्रयोग ।

इनकी रचनाये कतिपय नूतन किन्तु रमणीय शब्दावली मे विभूषित है । यथा-पुराणमौक्तिकमणिच्छाये[१८]समग्रुच्छग्रछविश्चन्द्रमा,[१९] बालबिडाल[२०] परिणामस्फुटित-दाडिमी-फल[२१] लीलागुरु,[२२] कुलगुरु,[२३] दीक्षागुरु,[२४]स्मरलेखवाचन-केलीप्रदीप,[२५] पारदरसचुम्बित,[२६] पारदरससिक्त[२७] ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजशेखर की सस्कृत उनके प्रौढ़ पाडित्य से मण्डित है ।

---

१. विद्धशालभंजिका अ० १,६, ३५–३६, अ० ८,१–२ । २ वही १।१७–२५ । ३ वही १।१२, १८, २६, ३६; ३।१६–१७ बालरामायण ४।१०–११; ७।४४–४५ । ४. विद्धशालभंजिका १।६, ३।०-१-२, बा० रा० ३।१०, २४, ८५; ५।२४,३८ । ५ वही १।८; बा० रा० १।४०–४१, ४।५६–५७ । ६ वही १।३९, ३।८, बा० रा० ५।२८ । ७ वही १।९, ३।०१–२; बा० रा० ५।५८–५९ । ८. वही १।३३–३४; २।३–४; ४।१-२ । ९ बा रा. ३।७-८; ४।०–१–२, २९, ६८ । १०. वही १।६१, २।२९–३०, ५० । ११. वि भ १।११–२३, बा० रा० १।६२ । १२. वही १।४१, ४७, ४३, ४५, ७०, ७३, ८३, ४।१७, २३, ७२, ७८; ५।३२, ६५८ । १३. वही १।८१, ४७, ६१; ४।२६ । १४. वही १।४६, ६१–६२; २।२९; ३।८९, ३०, ८२, ४।१९ । १५ वही १।४६; २।७, ३४, ५८, ३।३७ । १६ वही ३।१०; ४।५०–५१ । १७. वही ५।६–७, १८–३६ । १८ विद्धशालभञ्जिका १।११ । १९. वही १।११। २०. वही १।११। २१. वही १।१४–१५ । २२. वही १।२९ । २३. वही १।१ २४. वही १।२७ । २५ वही ३।११ । २६ वही ३।१७ । २७ वही २।१६

राजशेखर की प्राकृत

प्राकृत भाषा   राजशेखर के ग्रन्थो मे प्राकृत का पूर्ण विकसित रूप दृष्टिगत होता है । कर्पूरमंजरी सट्टक की रचना प्राकृत मे ही है । बालरामायण के नीच पात्रों के सवादो मे तथा विद्धशालभंजिका के कतिपय पात्रो के सम्भाषण मे इसी भाषा का व्यवहार किया गया है । राजशेखर का प्राकृत के प्रति प्रेम निम्न पंक्तियों में ध्वनित होता है ।

> परसा सक्किअबंधा पाउदबंधो वि होइ सुउमारो ।
> पुरसमहिलाण जेत्तिअमिहत्तर तेत्तिअ मिमाण ॥[1]

सस्कृत भाषा मे की गई रचनायें नीरस होती है, प्राकृत की रचनायें ही मधुर होती है । जिस तरह पुरुष कठोर होते हैं उसी तरह सस्कृत रचनायें कठोर होती है । जिस तरह स्त्रिया सुकुमार होती है उसी तरह प्राकृत रचनायें मधुर और सुकुमार होती है ।

राजशेखर ने अपनी रचनाओ मे प्राकृत के शौरसेनी एव महाराष्ट्री इन दो भेदो का ही प्रयोग किया है । इनके काव्य मे शौरसेनी गद्य के लिये तथा महाराष्ट्री पद्य के लिये प्रयुक्त है ।

शौरसेनी   शूरसेन जनपद के निवासियो की आपस की बोलचाल की भाषा शौरसेनी कहलाती थी । शौरसेनी प्राकृत की प्रकृति सस्कृत ही है ।

महाराष्ट्री प्राकृत   प्राकृत शब्द का प्रयोग साधारणत महाराष्ट्री प्राकृत के लिये ही किया जाता है। इस भाषा की उल्लेखनीय विशेषता इसके स्वरबाहुल्य मे है । शौरसेनी भी अपनी विशेषताओ के अतिरिक्त महाराष्ट्री प्राकृत पर आश्रित है । कर्पूरमजरी सट्टक मे शौरसेनी एव महाराष्ट्री के शब्दो का प्रयोग निम्न रूप मे उपलब्ध है —

सस्कृत	शौरसेनी	महाराष्ट्री
मद	मद	मद
तथा	तधा	तहा
यथा	जधा	जहा
कथम्	कधम्	कहम्
सह	इध	इह

[1] कर्पूरमञ्जरी   १।८

संस्कृत	शौरसेनी	महाराष्ट्री
तत	तधो	तओ
इदम्	इदम्	इमम्
इति	इदि	इइ
जानाति	जानादि	जाणाइ
ददातु	देदु	देउ
भवतिन्तु	भोदिन्तु	होई-हो
भविष्यति	भविस्सदि	होइ
लभते	लहदि	लहइ
वर्तते	वत्तदि	वत्तई
प्रवर्त्तताम्	पवत्तदु	पवत्तउ
तिष्ठति	चिष्ठदि	थइ
हरति	हरदि	हरइ
कथ्यताम्	कधिअदु	कहिज्जउ
क्रियताम्	करिअदु	किज्जउ
दृश्यते	दिसदि	दिसइ
भण्यते	भणिअदि	भण्णइ
कृत	किद	कअ
गत	गद	गअ
जात	जाद	जाअ
हित	हिद	हिअ
आनीत	आनीद	आनीअ
स्थित	थिद	थिअ
स्थापित	थाविद	थाविअ
कलित	कलिद	कलिअ
कथित	कधिद	कथिअ
घटित	घडिल	घडिअ
दयित	दइद	दइअ
पुंखित	पुंखिद	पुंखिअ
भृत	भरिद	भरिअ
निवेशित	निवेसिद	निवेसिअ

संस्कृत	शौरसेनी	महाराष्ट्री
अवतीर्ण	ओदिन्न	अवइन्न
अद्भुत	अच्चब्भुद	अब्भुअ
प्रसरित	प्रसविद	प्रसइ
प्रभृति	पहुदि	पहुइ
प्राकृत	पाउड	पाउअ
संस्कृत	सक्कद	सक्कअ
मनोरथ	मनोरय	मनोरह
मरकत	मरगद	मरगअ
मिथुन	मिथुन	मिदुन
रति	रदि	रइ
रीति	रीदि	रीअ
वात	वाड	वाअ
तोय	तोद	तोअ
सरस्वती	सरस्वदि	सरसइ
सरित	सरिद	सरिअ
मन्मथ	मम्मध	मम्मह
दिवस	दिवस	दिअइ

राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में शौरसेनी एवं महाराष्ट्री के उन संस्कृत मूलक शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है जिनके रूप दोनों में एक ही हैं ।

संस्कृत	शौरसेनी एवं महाराष्ट्री
मृणाल	मुणाल
वृन्त	वेन्ट
मृगतृष्णा	मिअतिण्हिआ
मृगलाञ्छन	मअलाञ्छन
स्पृहा	छिहा
जीर्ण	जुण्ण
वेद	वेअ
मौक्तिक	मोत्तिअ
मुक्ताहार	मुत्ताहल

किंकणी	किंकिणी
फलक	फलिग्र
शृंखला	सिंखिला
महोत्सव	महूसब
अधकार	अधआर
स्वप्नक	सिविणग्र

राजशेखर की मौलिकता उनके नूतन शब्द प्रयोगों में है। जैसे शिथिल के लिये ढिल्ल एवं सिढिल का प्रयोग, लट्ठी का श्लिष्ट प्रयोग (लता एव यष्टि रूप मे) यष्टि के लिये लछिनी का प्रयोग तारुण्य के लिये लगिम राजा के लिये ठक्कुर शब्द का प्रयोग प्राकृत मे नितान्त नवीन है। इन शब्दों पर कन्नौज की स्थानीय बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

व्याकरण की शुद्धता : राजशेखर की प्राकृत व्याकरण परिनिष्ठित है। इसका भाषा का मूल आधार व्याकरण है। व्याकरण की दृष्टि मे शुद्धशुद्धता के प्रति राजशेखर पूर्णतया जागरुक है। कतिपय प्राकृत शब्दो के विवेचन मे यह कथन स्पष्ट हो जायगा।

व्याकरण की दृष्टि से कुछ प्राकृत शब्दों की समीक्षा

धनुह[1] —'धनुषो वा'[1अ] धनुष् शब्द के प्राकृतिकरण मे अत्यन्त व्यजन का ह हो जाता है।

सारिच्छो[2] —'अत समृद्धयादो वा' [2अ]—सदृक्ष शब्द के आदि आकार का जो हो जाता है।

णिडाल[3] —'पक्वाङ्गार-ललाटे वा' [3अ] तथा एपवादेरत इत्व वा भवति —सूत्र से ललाट का णिडाल या णडाल होता है।

ओल्ल[4] —'उदोद्वार्द्रे [4अ]—सूत्र मे आर्द्र का ओल होता है।

दूसह[5] —लुकि दुरो वा' [5अ]—दुस्सह शब्द के दुर को दू होकर दूसह बन जाता है।

१.	कर्पूरमजरी २।३		१अ शब्दानुशासन १–२२
२.	वही	२।३	२अ शब्दानुशासन १–२२
३.	वही	४–१९	३अ शब्दानुशासन १–४४
३	वही	२–२०	३अ शब्दानुशासन १–४७
४.	वही	१-२८, ३-१, ४-४७	४अ शब्दानुशासन १–८२
५	वही	४।१	५अ शब्दानुशासन १–११५

थोर[1] —'ओत्कूष्माण्डी-तूणीर-कर्पूर-स्थूल ताम्बूल-गुडूची-मूल्ये'[1अ] सूत्र से स्थूल का थोर रूप होता है।

तोणीर[2] —उपयुक्त सूत्र से ही तूणीर का तोणीर हो जाता है ।[2अ]

दूहव[3] —'उत्वे दुर्भग-सुभगे व'[3अ] सूत्र से दुर्भग का दूहव हो जाता है ।

चिहुर[4] —'निकष-स्फटिक-चिकुरे ह'[4अ]—चिकुर के क का इस नियमानुसार ह हो जाता है ।

वम्मह[5] —"'मन्मथे व"[5अ]—सूत्र से मन्मथ के म का व हो जाता है ।

हरिअंदु[6] —"श्चो हरिश्चन्द्रे"[6अ]— सूत्र से हरिश्चन्द्र शब्द के श्च का अ हो जाता है ।

धूआ[7] —"दुहितृ-भगिन्योधूआ-बहिण्यो"[7अ] —सूत्र से दुहितृ का धूआ हो जाता है ।

आढत[8] —"मलिनोभय-शुक्ति छुप्तारब्ध-पदातेर्मइलावह-सिप्पि-छिक्का-ढत-पाइक्कं"[8अ] सूत्र से आरब्ध शब्द आढत में परिवर्तित हो जाता है ।

सिप्पि[9] —"उपयुक्त सूत्र में ही शक्ति शब्द का रूप सिप्पि होता है"[9अ] ।

वेरुलिअ[10]—"वैडूर्यस्य वेरुलिअं"[10अ] सूत्र से वैडूर्य शब्द को वेरुलिअ आदेश हो जाता है ।

बाहिर[11]—"बहिसो बाहिं-बाहिरो"[11अ] बहि शब्द का इस सूत्र से बाहिर आदेश हो जाता है ।

---

१ वही २।२७, ४४, ३।६।११९ १अ शब्दानुशासन १–१२४ । २ वही २१९६ । २अ शब्दानुशासन १–१२४ । ३ वही ३।२३ । ३अ शब्दानुशासन १–१९२ । ४. वही २।२१ । ४अ शब्दानुशासन १–१८६ । ५ कर्पूर मंजरी २–३, १८, ३९, ३।११ । ५अ शब्दानुशासन १–२४२ । ६ वही २–४० । ६अ वही २–८७ । ७ वही २।१९।१९ । ७अ वही २–१२६ । ८ वही ४–९, १–४ । ८अ वही २–१, ३८ । ८क प १–४ ५अ–शब्दा० २-१३८ ९. वही १–३४ । ९अ वही २–१३३, २–१३८ । १० वही १–२४ । १०अ वही २–१४० । ११. वही क० म० १-१४, १८-२० । ११अ वही २–१४४, २।२।४।१।१८ ।

घर[1] —"गृहस्य घरोऽपतौ" [1अ]—इस सूत्र पर गृहशब्द घर में परिवर्तित हो जाता है।

पणिडम[1अ], तुप्पिम,[3] धवलिम,[4] तरुणिम,[5] त्वस्य डिमा-त्तणौ वा"[1अ]

सूत्र से पणिडम तुप्पिम्, धवलिम और तरुणिम शब्द के त्व प्रत्यय डिम में परिवर्तित हो जाते हैं।

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर की प्राकृत इतनी व्याकरण सम्मत है कि आचार्य हेमचन्द्र ने राजशेखर की प्राकृत के आधार पर शब्दानुशासन में प्राकृत शब्दों का विवेचन किया है, यह कहना अतिशयोक्ति न होगी।

राजशेखर द्वारा प्रयुक्त प्राकृत भाषा पर दृष्टि डालने से हमें दो बातें अवगत होती हैं। एक तो यह कि इन्होंने देशज शब्दों को उदारता से अपनाया है।

कन्दोट्ट[1] रिछोली,[7] हलबोली,[8] (हलबुल्लापा) छइल्ल,[9] टप्परकण्णा टेंटाकराल,[10] वक्कर,[11] निमिगल,[12] बुक्का,[13] अवडल्ल,[14] वरिल्ल,[15] उव्विब्बिर,[16] चडिल्ल,[17] चचरीओ,[18] चग,[19] ओलग्गाविअ,[20] मरह,[21]

---

१ वही १–१६। १अ वही २।१५४। २ वही १।३६, ३।६। १अ वही २।१५४। ३. वही २।४१। १अ वही २।१५४। ४ वही ३–१९ ६अ वही २।१५४। ६ बा० रा० पृ० ६९, २०२, २४२, २५९, वि० भ० १–१९।२०। ७ बा० रा० पृ० ६५, ६६, ७५, १९४, २०९, २४०, वि० भ० पृ० ३।२२।२३ क० म० ३–२०। ८ बा० रा० पृ० १५०, २००, क० म० १–४, ३–३४। ९ क० म० १–५, ३–९। १० क० म० १–१८, २०। ११ बा० रा० ११, वि० भ० ३।३–४। १२. बा० रा० पृ० ८। १३ बा० रा० ९। १४ क० म० १–२०। १५ बा० रा०पृ० १४१, क० म० ४–१२। १६. क० म० १–१२। १७ क० म० १–२७। १८ वि० भ० १–४ १९. बा० रा० १२६, क० म० १–३१–३३। २०. वि० भ० १।३३।३४। २१ क० म० २–२३, ३–३०।

'देव पेक्खदु अणवरअविप्पदणणघुसिणचुण्ण विअ अम्बर विरअअन्तं भुवणगदमप्पसरिदं रअसमुद्दमठूमं विअ वित्थारअन्तं तिदिवदंसण-दिण्णप्पआण विअ धरणिमण्डलं दसअन्त विट्ठिअत्रभुन्धराफंसअग्गं रवितुरगाण उच्छलिय-धूलिजनयरालिणीविअभूमिभारत्तणेण किअमहानुग्गहं भुअगवइणो सेमस्स वीरजण दसणणिवेसिअवेसविमेसपंमुलत्तणेण असूइयवित्थारं विज्जाहरीहिं पओसविमट्टणअणकन्दोट्टमरणणिवारणदिण्णपाणि पिहिदवयणत्तणेण जुउच्छिअ अच्छराहिं घण्टाटकारगुणिज्जन्तकरिन्दे कणअकिंकिणीक्षणकारजाणिज्जन्त सन्दण हेसारवसूइज्जन्ततुरग वट्ठिअगुणणिविडणमन्नाटणिसक्कडक्कार-कलिज्जन्तधाणुक्क अगपरिफंसपडिजागिज्जन्तारिकखरक्खमवाणर चउरङ्गवल-चडुलचरणक्खो हसमुत्तम्भिअरेणुविरइअणीरन्धान्धआरं समरगण वट्टइ ।[1]

सेतु निर्माण के वर्णन के लिये समासबहुल भाषा का प्रयोग कितना उचित है । देखिये —

'गुरुगुहाबुहरपइट्टट्टुट्टमअरा तरक्खत्थणिसण्णमखिणिलक्खका विसमसिलाअलफ्फडिदसिप्पिसपुटमुक्कमोत्तियकरम्बिदणिअम्बा तलप्परूढ-सेयालजडिलवन्धा जलनिवडपक्खगालिमन्दसचरणा चिरवीसम्भपगब्भिअकमलणा-हमच्छकुलतिमिंगिलरद्धकन्दरद्धन्ता उवरि णिवडन्तमहिहरप्पभारुल्लिडणभएण किंकिण कुणन्ति सिलुच्चअसत्तया ।[2]

समास-बहुल भाषा के ऐसे अनेक उदाहरण बालरामायण में बिखरे पड़े हैं किन्तु वे सब समयानुकूल भाव-व्यन्जन के लिये ही हैं ।

जहाँ हृदय के भावों को अभिव्यक्त करने का प्रसंग होता है, वहाँ वे आविद्ध (समास रहित) शैली का आश्रय लेते हैं । कैकेयी का शोक-प्रदर्शन इस आविद्ध शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है, यथा

'कैकयी (सकरुण) भअवदि रामभदसासुए सीदाजणणि वसुन्धरे रन्ध देहि अम्मं पणइजणो भागादि रहुउलवधूसमागमे पडिक्खिहा ण जीविहुं परिस्मं । हा जाद भरद भालिअदुज्जसकलंकिदा कध दे मुहं दसइस्स हा ताद संभाविदोऽसि दुक्खेण हा अम्ब विडम्बिदाऽसि हा कोसल्ले सल्लिदाऽसि हा सुमत्ते सरीरसेत्ती-कदाऽसि (इति रोदिति[3]) ।'

---

१. बालरामायण अ० ७।६४–६५ ।   २. बालरामायण अ० ७।४९–५० ।
३. बालरामायण ७।१६ ।

राजशेखर यथावसर अपनी कृदन्तप्रियता का भी परिचय देते चले हैं। वर्तमानकालिक कृदन्तों का रुचिर विन्यास देखिये—

'अण्णोण्णजुज्झतजलहत्थिसत्था कल्लोलकेलिणिलुक्कतगिरिपक्खिणो लक्खिज्जतनिग्रसंदसिधुरवधवा समुल्लसतपीऊसलेसा दीसतदेवद्दुमपादवाल-वाला अवलोइज्जतनाराअणघ्रसमुघ्वरिदधरणिवेढणिलुक्कणट्ठाणा वित्थ-रतकोत्थुहमणीत्तमणिकरविदपाअलजवाला उज्छलतलच्छीवालविलासुद्दामा सप्पपचपचजणजणणीसखिण्णणीसणाहा सस्भमभमतकच्छवडिभगम्भा पअडिज्जतदामोदरणिद्दाविमुद्दसअणिज्जसेसरमणिज्जामद्दलिमिगोत्तगिलिज्जतति मिंगिला णिब्भर भरति।'[1]

लक्खिज्जन्त, दीसन्त अवलोइज्जन्त, वित्थरत, पअडिज्जन्त गिलिज्जन्त वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप हैं।

भूतकालिक कृदन्तो का मनोहर प्रयोग इस वाक्यावली में देखा जा सकता है—

अज्जउत्त होमोहिज्जतहुदवहा विवरिज्जतकथमुत्ता पठिज्जन्त वट्टुचरणा वाणिजजन्त धम्मसास्त्रासण्णिवेस अम्हारीसाणा ससार गण्ठिणिट्ठवण्णा।[2]

राजशेखर प्रसगानुसार अपनी तद्धितप्रियता का परिचय भी देते हैं यथा—

'यद्वा यस्य लैङ्गोद्‌भव भैरवीय तौम्बुरवमौमापतमार्द्धनारीश्वरमैन्दुशेखर मन्तकान्तकर वालकूटीयं जम्भारिभुजस्तम्भन दक्षमखोन्माथि मान्मथ त्रैपुरमन्धकासुरीयमित्यपरमप्यपरिमेय चित्र चरित्रजातमाचक्षते। तस्य भगवत-श्चैष्टापरीक्षाया को नाम परमेष्ठिवैकुण्ठावपि। किं पुनर्भृङ्गिरिटि।'[3]

राजशेखर की रचना शैली के विविध उदाहरण हमे इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि उनकी रचना शैली में वैदर्भी, पाचाली, एवं गौडी रीति का उचित विधान हुआ है। समरागण की भयानकता एव युद्ध की विभीषिका के प्रदर्शन के लिये उन्होंने ओजगुण युक्त कठोरवर्णों एव दीर्घसमासों से पूर्ण गौडी रीति का आश्रय लिया है, किन्तु हृदय को स्पष्ट करने वाले भावों के लिये (यथा-रामवनगमन के पश्चात् कैकेयी के शोक प्रदर्शन या रावण वध के उपरान्त वैधव्यलक्ष्या लका की शोकाभिव्यक्ति में) उन्होंने असमास या मध्यमसमास रचना का वरण किया है। बालरामायण की शैली प्राय. गौडी है। विद्धशालभंजिका एव

१. बालरामायण ९।३४–३५। २. बालरामायण १०।५९–६०।
३. बालरामायण अ० २–३।४।

'कर्पूरमंजरी' की सरस रचना द्वारा वैदर्भी एवं पांचाली के समास की पूर्ति हुई है। नायिका के सौन्दर्य-वर्णन में माधुर्यगुण युक्त पदरचना के द्वारा वैदर्भी मार्ग का प्रयत्न किया गया है। उन्होंने पदानुवर्णन में छोटे छोटे समासों से युक्त 'पांचाली' शैली को आदर्श माना है। उक्त शैलियों के प्रयोग से उनके अनेक वर्णन जो सम्भवतः नीरस और बोझिल हो सकते थे, अत्यन्त रोचक, सरस और हृदयग्राही हो गये हैं। उनकी नाट्यकृतियों में इन तीनों शैलियों का विन्यास पाया जाता है। और यह इस बात का भी व्यञ्जक है कि वे शैलियों के दास नहीं हैं अपितु प्रसंगानुकूल शैली ही उनका दासीत्व ग्रहण करती है।

निष्कर्ष इस प्रकार राजशेखर की रचना शैली एवं उनके द्वारा व्यवहृत संस्कृत, प्राकृत एवं देशज भाषा के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने भाषा-सम्बन्धी प्राचीन परिपाटी का विश्लेषण कर देशकाल में उपयोगी तत्वों को लेकर तत्कालीन प्रभावों के साथ उनका अपूर्व समन्वय करके उपादेय साहित्य की सृष्टि की है। इस भाषा प्रयोग के द्वारा प्राचीनता की रक्षा भी हो गई है और भविष्य के लेखकों के लिये भी पथ प्रशस्त हुआ है।

राजशेखर की नाट्यकला

नाट्यकला की दृष्टि से राजशेखर के नाटकों का समीक्षण करने पर वे कुशल कलाकार सिद्ध होते हैं। जहाँ तक वस्तु का प्रश्न है, राजशेखर का क्षेत्र सीमित है। बालरामायण एवं बालभारत की कथावस्तु रामायण एवं महाभारत के प्रथित आख्यान से सबद्ध है तथा विद्धशालभंजिका एवं कर्पूरमंजरी की लोकवृत्त पर आधारित। प्रथम दो के विन्यास में राजशेखर ने परम्परा के पालन के साथ ही उचित मौलिकता का भी सन्निवेश किया है जिसका कथानक के प्रसंग में विवेचन हो चुका है।

राजशेखर के पात्र बड़ी कुशलता से निर्मित हैं। वे सामान्यतः एक ही धरातल पर स्थित हैं। विद्धशालभंजिका और कर्पूरमंजरी दोनों की महादेवी विभ्रमलेखा नाम धारण करती है।

राजशेखर के संवादों का भी विशेष महत्व है। चाहे वार्तालाप हो या कोई दृश्यवर्णन, वह बहुत दूर तक चलता है। कहीं कहीं पर सीमा का अतिक्रमण भी कर जाता है। अच्छा है कि यह दोष केवल बालरामायण में ही दिखाई देता है।

खण्ड ३

राजशेखर का आचार्यत्व

शब्दार्थशासनविद कति नो कवन्ते
यद्वाङ्मय श्रुतिधनस्य चकास्ति चक्षु ।
किन्त्वस्ति यद्वचसि वस्तु नव सदुक्ति-
सन्दर्भिणा स धुरि तस्य गिर पवित्रा ॥

राजशेखर का आचार्यत्व

साहित्य-शास्त्र के इतिहास में राजशेखर का स्थान, उनकी अनेक मौलिक उद्भावनाओं तथा काव्य-शास्त्र को समृद्ध करने के कारण विशेष गौरवशाली है। उनके आचार्यत्व की आधारशिला उनका एक मात्र ग्रन्थ काव्यमीमांसा है। उन्होंने इस ग्रन्थ में अपने लिये राजशेखर शब्द का प्रयोग केवल एक बार "व्याकरोत्काव्यमीमांसां कविभ्यो राजशेखरः"[1] शब्द का ही प्रयोग प्रायः इस उक्ति द्वारा किया है। इस ग्रन्थ में लेखक ने लिये यायावरीय के शब्द का ही प्रयोग प्राय: हुआ है। इसलिये इस प्रबन्ध में उन्हें यायावरीय नाम से संबोधित करना अधिक उपयुक्त होगा।

कवि, कविता और कवित्व शक्ति के सर्वप्रथम वैज्ञानिक निरूपण का श्रेय यायावरीय को ही प्राप्त है। उन्होंने कविरहस्य नामक अधिकरण में कवि-भेदों एवं कविचर्या का जो चित्रण किया है, उसे परवर्ती आचार्यों ने आदर्श रूप में स्वीकार किया है। यायावरीय ने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुगमन, यहाँ तक कि कभी कभी उनके द्वारा प्रतिपादित तथ्यों का यथावत् उद्धरण करते हुए भी अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा काव्य के नवीन मानदण्ड निश्चित किये हैं जो आज भी आचार्यों के पथ-प्रदर्शन में सहायक सिद्ध होते हैं। वे कवि शिक्षा सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जा सकते हैं। यायावरीय के पश्चात् क्षेमेन्द्र, अरिसिंह, अमरचन्द्र तथा देवेश्वर आदि आचार्यों ने भी उनके पथ का अनुसरण कर, कविशिक्षा-विषयक ग्रन्थों की रचना की।

अलंकारशास्त्र के इतिहास में यायावरीय ही सर्वप्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने 'साहित्य' शब्द का प्रयोग 'काव्य' के अर्थ में किया है। उनकी सम्मति में साहित्य पञ्चमी विद्या है क्योंकि वह कौटिल्य आदि प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित चारों विद्याओं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति का निष्यन्द सार है।

---

१. काव्यमीमांसा : गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज पृष्ठ २।

"ग्रान्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेतस्रो विद्या ।" इति कौटिल्यः । पञ्चमी साहित्यविद्या इति यायावरीय । सा हि चतसृणामपि विद्याना निष्यन्द ।

साहित्य के क्षेत्र मे काव्यपुरुष की अवतारणा एव भुवनकोश का सजीव चित्रण यायावरीय की निजी एवं मौलिक देन है । काव्यशास्त्र के समस्त विषयों को अपने ग्रन्थ मे स्थान देकर समन्वय-प्रणाली से ग्रन्थ का प्रणयन यायावरीय की नूतनता का ज्वलन्त प्रमाण है । ये मौलिक उद्भावनायें तथा परवर्ती आचार्यों द्वारा उनका मुक्त रूप मे ग्रहण असंदिग्ध रूप से यायावरीय के आचार्यत्व को प्रतिष्ठित करता है ।

आचार्यत्व : आचार्य शब्द आङ्उपसर्गपूर्वक चर् धातु से ण्यत् प्रत्यय होकर बनता है । इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ—वेदाध्यापक अथवा वैदिक मन्त्रों का व्याख्याता है ।[1] महर्षि मनु की सम्मति मे जो द्विज शिष्यों को सरहस्य वेद का अध्ययन करवाता है उसे आचार्य कहते है ।[2] किन्तु साहित्य शास्त्र मे किसी विशिष्ट सम्प्रदाय अथवा सिद्धात के प्रतिष्ठापक एव पोषक विद्वान ही आचार्य अभिधान से सम्मानित हो सकते हैं । काव्यशास्त्र के आचार्यों की कसौटी है (१) मौलिकता, (२) सूक्ष्म दृष्टि एव (३) स्पष्ट प्रतिपादन । काव्यमीमासा मे राजशेखर ने तीनो क्षमताओं का स्पष्ट परिचय दिया है । अत उन्हें आचार्य कहा जाना उचित है ।

ग्रन्थ का अभिधान - उचित अभिधान का चयन, ग्रन्थकार की कुशलता का परिचायक है क्योंकि समीचीन अभिधान पुस्तक के वक्तव्य को स्पष्ट रूप से प्रगट करता है काव्यमीमासा शीर्षक दो बातों की व्यञ्जना करता है—काव्य एव मीमासा । कवि के द्वारा जो कार्य सम्पन्न हो, उसे काव्य कहते हैं—कवेरिद कार्यभावो वा । मीमासा शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है 'विचारपूर्वक तत्व का निर्णय करना ।'[3] जैमिनि प्रणीत पूर्वमीमासा मे कर्मकाण्डो के तत्वों का विचार-पूर्वक निर्णय मिलता है । इसी प्रकार उत्तर-मीमांसा में वेदात के तत्वो का निर्णय

१ शब्दकल्पद्रुम—प्रथम भाग २।१४०। आङ्-चर्-ण्यत्-वेदाध्यापक ।
वैदिकमन्त्रव्याख्याकर्ता । तत्पर्याय· मन्त्रव्याख्याकृत् ।

२ शब्दकल्पद्रुम—प्रथम भाग २।१४०—"उपनीय तु य शिष्य वेदमध्यापयेत् द्विज. । सकल्प सरहस्य च, तमाचार्य्य प्रचक्षते" इति मानव ।

३. कविकल्पद्रुम—तृतीय भाग—"मीमासा स्त्रीमान्—'विचारे स्वार्थे सन्' विचारपूर्वकतत्वनिर्णये तत्प्रतिपादक. ग्रन्थ । कर्मब्रह्मविषयभेदेन द्विविधस्स्नः । कर्मकाण्डविषयसशय-निवारको ग्रन्थो जैमिनिप्रणीतः स च पूर्व-मीमासत्वेन प्रसिद्ध ।"

प्राप्त होता है । काव्यमीमांसा ग्रन्थ मे काव्यतत्वों का सूक्ष्म विवेचन, अन्य आचार्यों के मतो का प्रस्तुतीकरण तथा अन्त मे स्वमत का निर्णयपूर्वक स्थापन होने के कारण इस ग्रन्थ का काव्यमीमांसा अभिधान अक्षरश: यथार्थ है । दूसरी बात, *यायावरीय ने जिस युग में पदार्पण किया था, वह मीमांसकों का युग* था। उनके चिन्तन पर युग की प्रतिच्छाया का होना स्वाभाविक है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति काव्यमीमांसा नाम मे ही देखी जा स ।

काव्यमीमांसा का आधार · *काव्यमीमांसा अठारह अधिकरणों का ग्रन्थ* बतलाया जाता है, किन्तु अब तक इसका कविरहस्य नामक प्रथम अधिकरण ही उपलब्ध है और वही सहित्यजगत मे काव्यमीमांसा नाम से व्यवहृत है । इस ग्रन्थ की रचना करते समय यायावरीय ने कुछ ग्रन्थो को आदर्श रूप मे अपने सम्मुख रखा है ।

इसके प्रथम अध्याय शास्त्र-संग्रह की रचना कौटिलीय अर्थशास्त्र एवं वात्स्यायनीय कामसूत्र पर आधारित है । तीनो मे एक एतद्विषयक स्थलो के तुलनात्मक अवलोकन से यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

काव्यमीमांसा	कामसूत्रम्	अर्थशास्त्रम्
(१) तत्र कविरहस्यं सहस्राक्ष:समाम्नासीत्, औक्तिकमुक्तिगर्भ:, रीतिनिर्णयं सुवर्णनाभ, औपनिषदिकं कुचमार: इति ।[१]	तत्प्रसंगाच्चारायण : साधारणमधिकरणप्रोवाच सुवर्णनाभः साम्प्रयोगिकं कुचुमार औपनिषदिकम् ।[२]	..
(२) इत्थंकारञ्च प्रकीर्णत्वात् सा किञ्चिदुच्चिच्छिदइतीय प्रयोजका (नौ) यायावरीय: संक्षिप्य सर्वमर्थमल्पग्रन्थेनाष्टादशाधिकरणी प्रणीता ।[३]	(२) एवं बहुभिराचार्यैस्त च्छास्त्रं खण्डश: प्रणीतमुत्सन्न कल्पमभूत् । संक्षिप्य सर्वमर्थमल्पेन ग्रन्थेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम् ।[४]	(२) यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यै: प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम् ।[५]

१. काव्यमीमांसा—गायकवाड ओरियण्टल सीरीज़—अध्याय १ पृ० १ । –
२ कामसूत्रम्—१।१–१८।१९ ।
३. काव्यमीमांसा —गायकवाड ओरियण्टल सीरीज अ० १ पृ० १
४. कामसूत्रम् १।१–१८।१९ ।
५. अर्थशास्त्रम् १।१ ।

राजशेखर

काव्यमीमासा के दूसरे ग्रध्याय में यायावरीय ने विद्यास्थानो के सन्दर्भ मे, विद्याग्रो की परिगणना करते हुए बार्हस्पत्य, ग्रौशनस, मानव एव कौटिल्य के मत दिये हैं । यहाँ कौटिलीय ग्रर्थशास्त्र के विद्या-समुद्देश प्रकरण के समूचे ग्रश ही राजशेखर ने ज्यों के त्यों उद्धृत कर दिये हैं । वास्तव मे वे कौटिल्य के ग्रत्यन्त ऋणी हैं । कौटिलीय ग्रर्थशास्त्र के विद्या-समुद्देश प्रकरण एवं काव्य-मीमासा ग्रन्थ के कविहरस्य ग्रधिकरण के शास्त्रनिर्देश ग्रधिकरण से उद्धृत निम्नलिखित ग्रश इस संदर्भ मे द्रष्टव्य हैं —

काव्यमीमांसा

ग्रान्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति-विद्या.। त्रयी वार्तादण्डनीतियस्तिस्रो विद्या इति मानव । त्रयीहि वार्तादण्ड-नीत्योरुपदेष्ट्री ।[१]

'वार्ता दण्डनीतिर्व्दे विद्ये इति बार्ह-स्पत्या ।

'दण्डनीतिरेवैका विद्या इत्यौशनसा दण्डभयाद्धि कृत्स्नोलोक स्वेषु स्वेषु कर्मस्ववतिष्ठते ।

'ग्रान्वींक्षिकी त्रयी वार्तादण्डनीतिश्च-तस्रोविद्या'इति कौटिल्य । ग्राभिधेयार्थो यद्विद्यास्तद्विधाना विद्यात्वम् ।[३]

कृषिपशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता । ग्रान्वीक्षिकी त्रयीवार्ताना योगक्षेमसाधनो दण्डस्तस्यनीतिर्दण्डनीति ।[५]

तस्यामायत्ता लोकयात्रा ।[७]

ग्रर्थशास्त्रम्

ग्रान्वीक्षकीत्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चे-विद्या । त्रयी वार्ता दण्डनीति श्चेवि मानवा. । त्रयीविशेषोह्यान्वीक्षि-कीति । वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्ह-स्पत्या सवरणमात्र हि त्रयी लोक-यात्राविद इति ।[२]

दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसा' । तस्या हि सर्वे विद्यारम्भा प्रति बद्धा इति । चतस्त्रएव विद्याइति कौटिल्य । ग्राभिधेयार्था यद्विधा त द्विधाना विद्यात्वम् ।[४]

कृषिपशुपाल्ये वाणिज्या चवार्ता ग्रान्वीक्षकीत्रयीवार्ताना योगक्षेम-साधनो दण्ड । तस्यनीति. दण्डनीति. ।[६]

तस्यामायत्ता लोकयात्रा[८] सामर्ग्य-जुर्वेदास्त्रयी । ग्रथर्ववेदेतिहासवेदौ

---

१ काव्यमीमासा—गायकवाड ग्रोरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।
२ ग्रर्थशास्त्रम् १।२।१
३ काव्यमीमासा—गायकवाड ग्रोरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।
४. ग्रर्थशास्त्रम् १।२।१
५ काव्यमीमासा—गायकवाड ग्रोरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।
६. ग्रर्थशास्त्रम् १।२।१
७. काव्यमीमासा गायकवाड ग्रोरियण्टल सीरीज पृ० २ ।
८. ग्रर्थशास्त्रम् १।३।१ ।

रहस्य अधिकरण के सत्रहवें अध्याय में भूगोल का सक्षिप्त किन्तु स्पष्ट चित्रण है। इसका भी प्राय. वायुपुराण से साम्य है।

काव्यमीमांसा के 'कविचर्या राजचर्या' नामक दसवें अध्याय के अनुशीलन से स्पष्ट है कि यायावरीय अपने शब्दों में वात्स्यायन के नागरकवृत्त[1] प्रकरण को दोहरा रहे हैं।[2]

काव्यमीमांसा के एकादश द्वादश एव त्रयोदश अध्यायों में चर्चित हरणविषयक मतों का यत्किंचित्‌उपजीव्य आनन्दवर्धन का ध्वन्यालोक[3] है। अलकारों के विभाजन के लिये यायावरीय ने आचार्य रुद्रट के काव्यालकार सूत्र का सहारा लिया है। दोनों के एतद्विषयक स्थलों के तुलनात्मक अवलोकन से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

रुद्रट काव्यालंकार	यायावरीय काव्यमीमांसा
यमक	यमक
अर्थालकार-वास्तव-औपम्य अतिशय	शब्दश्लेष
औपम्य	औपम्य
अतिशय	अतिशय
शब्दश्लेष	शब्दश्लेष
द्विविधसकर	उभयालकार
चित्र	चित्र

उन्होने काव्य की आत्मा के लिये आचार्य भरत, रीतिनिरुपण के लिये आचार्य वामन, शक्तिप्रतिपादनार्थ आचार्य रुद्रट एव वाङमय विभाजन के निमित्त आचार्य उद्‌भट तथा भामह का सहारा लिया है। काव्यमीमांसा से दिग्दर्शन होता है कि राजशेखर ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के चिन्तन का स्थान-स्थान पर उपयोग किया है। परन्तु पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धातो का रूप उनके सूक्ष्म चिन्तन द्वारा निखर उठा है।

जिस प्रकार राजशेखर को अपने पूर्ववर्ती छोटे बड़े समस्त शास्त्रकारो के साहित्य-विषयक विविध मतो का सूक्ष्म ज्ञान था, उसी प्रकार से पूर्ववर्ती कवियों के एव नाटककारो की प्राय सभी महत्वपूर्ण कृतियो से सुपरिचित थे। उन्होने केवल उनका विविध भारतीय सन्दर्भों से अध्ययन किया अपितु अपने शास्त्रीय विवेचन

१. कामसूत्र १–४–१ २. काव्यमीमासा अ० १० पृ० ४–९
३. ध्वन्यालोक. ४–१०

में यथाप्रसंग उनका भरपूर उपयोग किया है । निम्नलिखित सूची इस तथ्य को स्पष्ट करती है.—

ग्रन्थ या ग्रन्थकार		काव्यमीमासा (गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज की पृष्ठ सख्या)	ग्रन्थ जिनके उद्धरण उपलब्ध हैं उद्धरण सन्दर्भ
१. ऋग्वेद	..	६	३-८-१०-३
२. अभिज्ञानशाकुन्तलम्	..	१२	७-१२
३. रघुवशम्	..	१२	६-५७-६-८२
४. कुमारसंभवम्	.	१२	३-६७
५ वेणीसहारम् (भट्टनारायण)		१९	१-२३
६ अभिज्ञान शाकुन्तलम्	..	२४	२-४५
७. ऐतरेय-ब्राह्मण	..	२५	७-१५-२, १५-१९
८ ऋग्वेद	..	२८	२-१ ११-७
९ निरुक्त	.	२८	३-४-३
१०. वेणीसहारम्	..	३२	१-१२-१-१५
११. किरातार्जुनीयम्	..	३२	९-३९
१२. शतपथ ब्राह्मण	..	३५	५-१-२
१३. महानारायणोपनिषद्	..	३५	१-२-२
१४. सूर्यशतकम्	..	३५	८९
१५. विक्रमोर्वशीयम्	..	३५	४-१७
१६. रामायणम् (किष्किन्धाकाण्ड)		३६	३४-१८
१७. जानकीहरणम् (कुमारदास)		३६	१२-३६
१५. विक्रमोर्वशीयम्	..	३५	४-१७
१६. रामायणम् (किष्किन्धाकाण्ड)		३६	३४-१८
१७ जानकीहरणम् (कुमारदास)		३६	१२-३६
१८. वायुपुराणम्	..	३६	अध्याय ६७
१९. शिशुपालवधम्	..	३६	१-४६
२०. भगवद्गीता	..	३७	२-१७
२१ महिम्न स्तोत्रम्	..	३७	५
२२. कामसूत्रम्	..	३९	२-१-३, ९-१३
२३. कुमारसम्भवम्	..	४०	३-७०

राजशेखर

२४. रघुवशम्	..	४१	६–६०
२५. शिशुपालवधम्	..	४१	३–८
२६. शिशुपालवधम्	..	४२	१–१
२७ कुमारसंभवम्	..	४४	६–३६
२८. ग्रमरुशतक (ग्रमरुक)	..	४७	२९, ४९, १९
२९. मालतीमाधवम्	.	४८	१
३०. कुमारसभवम्	..	४८	४–४१, ३–७२, ६–१९
३१. किरातार्जुनीयम्	.	५८	३–१०
३२. शिशुपालवधम्	..	५४	२–७३
३३. वृन्दावन यमककाव्यम् (मानाक)		५७	१–१
३४. नारदस्मृति.	..	५९	२–३०
३५. शिशुपालवधम्	.	६०	११–६४
३६. गौडवहो	.	६२	८८–९२
३७ कामसूत्रम्	.	६७	१०१
३८ विज्जका (कदयित्री)		६७	
३९ किरातार्जुनीयम्	..	७०	९–२३
४०. जानकीहरणम्	.	७२	८–८५
४१ किरातार्जुनीयम्	.	७३	९–३२
४२. मालतीमाधवम्	..	७६	३
४३. कादम्वरी	..	७६	२
४४. रघुवशम्	..	७६	६–६४
४५ कुमारसभवम्	..	८१	१
४६ शिशुपालवधम्	..	८४	२–४
४७. कुमारसभवम्	.	८४	१–४४
४८. किरातार्जुनीयम्	..	८५	९–२२
४९. रघुवशम्	..	८५	२–२५–९–९३
५०. मेघदूतम्	.	८६	१–४७
५१. शिशुपालवधम्	..	८६	२–५३
५२. कादम्वरी	..	८८	२–
५३. सूर्यशतकम्	.	९५	१३
५४. मेघदूतम्	..	९६	२–१२
५५. कुमारसभवम्	..	९६	१–१

५६. हनुमन्नाटकम्-	..	९७	३–५०
५७ तैत्तिरीय सहिता	..	९९	१–४–१४–१
५८. सूर्यशतकम्	..	९९	५५ —

इसके अतिरिक्त सैकडो श्लोक जिन्हें उन्होंने उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया है, (यायावरीय) की स्वप्रतिभा के द्योतक है ।

काव्यमीमासा ग्रन्थ की रचना की पद्धति का इतना परिचय देने के पश्चात् अब ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय का समीक्षण प्रस्तुत किया जा रहा हैं ।

काव्यमीमांसा के वर्ण्य-विषय

कविरहस्य अधिकरण के प्रथम अध्याय मे लेखक द्वारा काव्यमीमासा की पूर्व-नियोजित रूपरेखा दी गई है । लेखक की योजना के अनुसार काव्यमीमांसा *अठारह अधिकरणो मे विभिक्त की गई है तथा ये अधिकरण अध्यायो मे । अधि-*करणो के नाम क्रमश इस प्रकार हैं —

कविरहस्य, औक्तिक, रीतिनिर्णय, आनुप्रासिक, यमक, शब्दश्लेष-वास्तव, औपम्य, अतिशय, अर्थश्लेष, उभयालङ्कारिक, वैनोदिक, रूपकनिरूप, पीय, रसाधिकारिक, दोषाधिकरण, गुणौपादानिक एवं औपनिषदिक ।[१] आजकल इन अठारह अधिकरणो मे केवल कविरहस्य अधिकरण ही उपलब्ध है । *दैवयोग से प्रथम अधिकरण के अठारह अध्यायो का नाम निर्देश भी प्रथम* अधिकरण के प्रथम अध्याय मे मिलता है । ये नाम हैं—शास्त्रसंग्रह, शास्त्र निर्देश, काव्यपुरुषोत्पत्ति, पदवाक्यविवेक, पाठप्रतिष्ठा, अर्थानुशासन, वाक्यविधयः, कविविशेष, कविचर्या, राजचर्या, काकुप्रकार, शब्दार्थहरणोपाय, कविसमय, देशकालविभाग एव भुवनकोश[२] । सुविधा के लिये हम इन समस्त अध्यायो के लिये वर्ण्य-विषय को निम्न चार भागो में विभक्त कर सकते है —

१. काव्य सिद्धान्त ।
२. कविशिक्षा-सम्प्रदाय ।
३. काव्यशास्त्रीय सम्प्रदाय और राजशेखर ।
४. साहित्यशास्त्र को काव्यमीमासा की देन ।

१. काव्यमीमांसा अध्याय १—पृ० १
२. काव्यमीमांसा—अध्याय १ पृ० १-२ ।

काव्य-सिद्धान्त

इस प्रकरण गत के अन्तर्गत, काव्यलक्षण, काव्यहेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य की आत्मा, काव्यभेद, काव्यार्थ के स्रोत, काव्यार्थ की परिधि एवं काव्य में सत्य-शिव-सुन्दर की अभिव्यक्ति का समावेश है।

काव्य का लक्षण : साहित्यशास्त्र सभी मान्य आचार्यों ने अपनी-अपनी दृष्टि से काव्य के स्वरूप का निर्णय किया है राजशेखर ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्यलक्षणों का ऐतिहासिक रीति से अनुशीलन करने के पश्चात् काव्य का निम्नलिखित लक्षण प्रस्तुत किया है –

गुणवदलङ्कृतं च वाक्यमेव काव्यम्।[1]

अलंकारों और गुणों से युक्त वाक्य को काव्य कहते हैं। उनकी दृष्टि में वाक्य ही काव्य है, परन्तु वह वाक्य साधारण न होकर गुण और अलंकार से युक्त होना चाहिये। गुण तथा अलंकार—इन दोनों में राजशेखर का आग्रह गुण पर ही अधिक है। उन्होंने काव्य को गुणमय कहा है तथा अलंकारों का स्थान गुणों की अपेक्षा गौण माना है। उन्होंने अलंकारों को केवल अलंकरण रूप में स्वीकार किया है। उनके शब्दों में काव्य-पुरुष की चरितार्थता, उसके गुणमय तथा अलंकार से विभूषित होने में है।

सम प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि। ... अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलङ्कुर्वन्ति।[2]

आचार्य राजशेखर का गुणों एवं अलंकारों के प्रति आग्रह उनके सिद्धांतों के अनुकूल है। एक विज्ञ अलंकारज्ञ के साथ-साथ वे महान् कवि भी थे। काव्य में भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों के प्रति वे समान रूप से जागरूक थे। काव्य में गुणों की सत्ता होने का अर्थ है—उत्कृष्ट रसपरिपाक। यही रस भावपक्ष की आत्मा है। कलापक्ष के अन्तर्गत उन्होंने अलंकारसौष्ठव का महत्व माना है। अतः काव्य के दोनों पक्षों को पुष्ट करने के लिए काव्य में गुण तथा अलंकार दोनों की अनिवार्यता का आग्रह उचित ही है।

पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रतिपादित काव्य-लक्षणों के तुलनात्मक अध्ययन से आचार्य राजशेखर के काव्य-लक्षण की ऐतिहासिक समीक्षा सरलता से की जा सकती है। आचार्य भामह ने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्,'[3] कहकर काव्य का लक्षण

---

१ काव्यमीमांसा अध्याय ६ पृ० २४। २. काव्यमीमांसा अध्याय ३ पृ० ६।
३. काव्यालंकार—भामह १।१६।

स्थिर किया है। उनके मत मे शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं किन्तु ये शब्द और अर्थ दोषहीन होना चाहिये। आचार्य रुद्रट ने सामान्य रूप से 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्',[1] कहकर भामह की पदावली को ही दोहरा दिया है। भेद इतना ही है कि चारुतापूर्ण शब्द और अर्थ के उपादान पर ही उन्होने बल दिया है। ये दोनो आचार्य काव्य मे शब्द और अर्थ को समान महत्व देने के पक्षपाती हैं। कुछ आचार्य ऐसे हैं जो काव्य मे केवल शब्द को ही अधिक महत्व देते हैं। इनमे आचार्य दण्डी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। दण्डी के अनुसार काव्य का लक्षण है—

"शरीर तावदिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली।"[2]

अर्थात् काव्य का शरीर ऐसी पदावली से बनता है जो कवि के अभीष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति मे समर्थ हो। अर्थ से व्यवछिन्न पदावली काव्य है। उपर्युक्त आचार्यों मे भामह तथा रुद्रट ने काव्य को शब्दार्थगत अर्थात् शब्दार्थनिष्ठ माना, जबकि आचार्य दण्डी ने शब्दमात्र को ही काव्य स्वीकार किया है।

काव्यमीमासा का काव्यलक्षण पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षणो के नितान्त भिन्न प्रतीत होता है। उन लक्षणो को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह भेद स्पष्ट हो जायेगा—

भामह—शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्[3]

रुद्रट—ननु शब्दार्थौ काव्यम्।[4]

दण्डी—शरीर तावदिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली।[5]

राजशेखर—गुणवदलङ्कृतञ्च वाक्यमेव काव्यम्।[6]

काव्यमीमासाकार ने काव्य लक्षण मे आचार्य भामह, रुद्रट के समान शब्द और अर्थ की अथवा दण्डी के समान पदावली का उल्लेख नही किया है। वे वाक्य को काव्य मानने के पक्ष मे है। उन्होंने लक्षण मे दो प्रमुख काव्यतत्वों-गुण और अलङ्कार का उल्लेख किया है। वामन का काव्यलक्षण इसी प्रकार का है—

'काव्यशब्दोऽय गुणालकारसस्कृतयो शब्दार्थयोर्वर्तते।'[7]

काव्य शब्द, गुण और अलङ्कार से सस्कृत शब्द और अर्थ के लिये प्रयुक्त होता है। अत स्पष्ट देखा जा सकता है कि काव्यमीमांसा का काव्यलक्षण मुख्यत वामन से प्रभावित है।

---

१ काव्यालकार—रुद्रट—३ १।
२ काव्यादर्श—दण्डी—१-१।१०।
३. काव्यालकार—भामह—१।१६।
४. काव्यालकार—रुद्रट—३।१।
५. काव्यादर्श—दण्डी—१।१।१०।
६. काव्यमीमासा अ० ६ पृ० २६।
७. काव्यालंकारसूत्र—वामन—१ १.१।

काव्य लक्षण का मूल्यांकन वस्तुत लक्षण अतिव्याप्ति तथा अव्याप्ति दोनो दोषो से मुक्त एव सतुलित होना चाहिये । इसमे वैकल्पिक गुणो का समावेश होना उचित नही । काव्यमीमासाकार का काव्य लक्षण अतिव्याप्ति से दूषित है । रस को काव्य की आत्मा मानने के कारण प्राय आचार्यगण रस की अभिव्यक्ति के लिये गुणो की उपस्थिति आवश्यक मानते है । वे काव्य मे चारुत्व के लिये अलकारो को भी अनिवार्य मानते हैं । फिर भी यदि निरपेक्ष भाव से देखा जाय तो मानना होगा कि गुण काव्य के अन्तरङ्ग तथा अलकार उसके बहिरङ्ग सौन्दर्य की वृद्धि मे सहायक हैं । वे काव्य की शोभा के लिये आवश्यक तो हैं किन्तु उन्हें काव्य रूप के आधायक धर्म मानना उचित नही है । ये दोनो तत्व वाञ्छनीय होने पर भी अनिवार्य नही कहे जा सकते । शौर्यविहीन मनुष्य मानवता से ने विरहित तो नही कहा जा सकता और न आभूषणो से रहित सुन्दरी नारीत्व से ही विहीन मानी जा सकती है । अत काव्यमीमासाकार ने अपने काव्य लक्षण मे गुण और अलकार दोनो का समावेश करके लक्षण को अतिव्याप्ति से दूषित कर दिया है फिर भी यह काव्य परिभाषा, उपेक्षणीय है, ऐसी बात नहीं है । राजशेखर ने रस को काव्य की आत्मा माना है ।

'रसवत एव निबन्धो युक्तो न नीरसस्य ।'[१]

अत गुणो और अलकारो की सत्ता वे रसाभिव्यक्ति के सहायक रूप मे ही स्वीकृत करते है । भले ही उनकी काव्य परिभाषा मे यह आशयपूर्ण रूप से स्पष्ट न हो पाया हो ।

परवर्ती साहित्यकारो ने राजशेखर के इस मन्तव्य को भलीभाँति समझा है । और उन्ही तत्त्वो पर उन्होने अपने काव्यलक्षणो का निर्माण किया । मम्मट के विख्यात काव्यलक्षण का एक अश 'सगुणावनलकृती'[२] तथा भोज की परिभाषा 'निर्दोष गुणवत् काव्यम् अलकारैरलङ्कृतम्' ।[३] इसका प्रमाण है । हेमचन्द्र के काव्यलक्षण का 'सगुणौ सालकारौ'[४] वाग्भट का 'सगुणौ प्राय सालकारौ,[५] तथा विद्यानाथ का 'गुणालकार-सहितौ'[६] से प्रकट होता है कि ये सभी आचार्य राजशेखर के काव्यलक्षण से प्रभावित थे ।

१ काव्यमीमासा अ० ६ पृ० ४५ ।
२ काव्यप्रकाश —मम्मट—१-४-१ ।
३ सरस्वतीकण्ठाभरण —भोज
४ काव्यानुशासनविवेक —हेमचन्द्र—पृ० १६ ।
५ काव्यानुशासनविवेक —वाग्भट—पृ० १५ ।
६ प्रतापरुद्रयशोभूषण —विद्यानाथ—पृ० ४२ ।

काव्यहेतु : काव्यनिर्माण का सामर्थ्य उत्पन्न करने वाले साधन काव्य-हेतु अथवा काव्यकारण कहे जाते हैं। प्रायः सभी आचार्यों ने काव्य-हेतु पर विचार व्यक्त किया है। केवल वामन ने काव्यहेतु के स्थान पर काव्याङ्ग शब्द का व्यवहार किया है। काव्यहेतुओं पर सर्वाधिक विस्तारपूर्वक विचार काव्यमीमांसा में ही मिलता है। राजशेखर के मत से केवल शक्ति ही काव्य का हेतु है।

तावुभावपि शक्तिमुद्भासयतः। सा केवलं काव्ये हेतुः इति यायावरीयः। विप्रसरति च सा प्रतिभा-व्युत्पत्तिभ्याम्। शक्तिकर्तृके हि प्रतिभा व्युत्पत्तिकर्मणी शक्तस्य प्रतिभाति शक्तश्च व्युत्पद्यते।[1]

अर्थात् शक्ति का विस्तार प्रतिभा और व्युत्पत्ति के द्वारा होता है तथा प्रतिभा और व्युत्पत्ति के विकास में शक्ति कारणीभूत होती है। आचार्य रुद्रट भी शक्ति को काव्य का प्रधान हेतु मानते हैं। किन्तु उन्होंने प्रतिभा को ही शक्ति के नाम से अभिहित किया है। उन्होंने कहा है कि एकचित्त होने पर अर्थों का अनेक रूपों में विस्फुरण होता है तथा रमणीय पद स्वयं कवि के सामने प्रतिभासित होते हैं। इसका एकमात्र कारण है शक्ति—

मनसि सदा सुसमाधिनि विस्फुरणमनेकधाभिधेयस्य।
अक्लिष्टानि पदानि च विभान्ति यस्यामसौ शक्तिः।[2]

इस विषय में काव्यमीमांसा का मत रुद्रट से समानता रखता है। क्योंकि राजशेखर स्वयं कहते हैं—"शक्तिशब्दश्चायमुपचरितः प्रतिभाने वर्तते"[3]

शक्ति को प्रतिभा में उपचरित कर दिया जाता है। इस संदर्भ में उन्होंने श्यामदेव तथा मंगल के मतों का उल्लेख किया है। आचार्य श्यामदेव ने काव्य कर्म में सबसे अधिक सहायक वस्तु समाधि मानी है, जिसे वे चित्त की एकाग्रता कहते हैं—

'काव्यकर्मणि कवेः समाधिः परं व्याप्रियते' इति श्यामदेवः। मनस एकाग्रता समाधिः।[4]

समाहित होने वाला चित्त ही अर्थों का उन्मीलन करता है। आचार्य मंगल अभ्यास को काव्य-कर्म में सबसे अधिक उपयोगी स्वीकार करते हैं—

१. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० ११।
२. काव्यालंकार—रुद्रट—१-१५।
३. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० ११।
४. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० ११।

उनकी दृष्टि से शब्द और अर्थ का भलीभाँति ज्ञान प्राप्त करके, शब्दार्थ के ज्ञाताओं का सत्संग एवं परिचर्या करके और अन्य लेखकों के निबन्धों को पढ़कर काव्य-क्रिया में प्रवृत्त होना चाहिये। भामह के पश्चात् आचार्य दण्डी ने काव्योत्पत्ति के साधन रूप में प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास को आवश्यक बतलाया है। इनके मत में प्रतिभा पूर्व जन्म के संस्कारों पर आश्रित रहती है। प्रतिभा से वंचित कवि भी यदि यत्नपूर्वक शास्त्र की उपासना करे तो उस पर सरस्वती अवश्य अनुकम्पा प्रकट करेगी।[1] वे प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों को काव्य-सम्पदा मानने के पक्षपाती हैं।[2] आचार्य दण्डी के पश्चात् वामन ने काव्यहेतु का विवेचन किया है। उन्होंने काव्यहेतु के लिये काव्यांग[3] शब्द का प्रयोग किया है। काव्यांगों के अन्तर्गत लोक, विद्या और प्रकीर्ण—इन तीनों का समावेश है। लोक का तात्पर्य लोकवृत्त[4] से है। विद्या से समस्त शास्त्र-ज्ञान[5] का बोध होता है तथा प्रकीर्ण के अन्तर्गत अन्य कवियों की कृतियों का परिचय, काव्य रचना का उद्यम, काव्य कला के मर्मज्ञों की उपासना, रचना में अधिक से अधिक उचित शब्दों के विधान का अभ्यास तथा कवित्व बीज प्रतिभा एवं चित्त की एकाग्रता की गणना की गई है।[6]

इस प्रकार आचार्य वामन प्रतिभा को कवित्व का बीज मानने पर भी व्युत्पत्ति और अभ्यास को समान महत्व देते हैं। वामन के परवर्ती आचार्य रुद्रट ने 'काव्यहेतु' के अन्तर्गत-प्रतिभा-व्युत्पत्ति तथा अभ्यास का महत्व स्वीकार किया है,[7] तथापि 'शक्ति' को उन्होंने काव्य का प्रधान कारण माना है। उनके विचार में शक्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

'मनसि सदा सुसमाधिनि विस्फुरणमनेकधाभिधेयस्य।
अक्लिष्टानि पदानि च विभान्ति यस्यामसौ शक्तिः।[8]

चित्त के एकाग्र होने पर अर्थ अनेक प्रकार से विस्फुरित होने लगते हैं तथा कमनीय पद स्वयं प्रतिभासित होते जाते हैं। इस कार्य को सम्पादित करने वाली वस्तु 'शक्ति' कहलाती है।

---

१. काव्यादर्श—दण्डी १–१०४। २ काव्यादर्श—दण्डी—१–१०३।
३. काव्यालंकारसूत्र—वामन–१-३-१। ४. काव्यालंकारसूत्र–वामन–१-३-२।
५. काव्यालंकारसूत्र–वामन–१-३-१-१। ६. काव्यालंकारसूत्र–वामन–१-३-११
७ काव्यालंकार—रुद्रट—१–४। ८. काव्यालंकार—रुद्रट—१–१५।

व्युत्पत्ति : राजशेखर ने प्राचीन आचार्यों के मत का उल्लेख करते हुए व्युत्पत्ति का अर्थ 'बहुज्ञता' दिया है ।[१] परन्तु उनका अपना मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार—

"उचितानुचितविवेकव्युत्पत्तिः इति यायावरीयः ।"[२]

उचित और अनुचित के विवेक को व्युत्पत्ति कहते हैं । इस प्रसंग में उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्य मगल के मत का उल्लेख किया है जो प्रतिभा और व्युत्पत्ति के तारतम्य में *व्युत्पत्ति को ही श्रेष्ठ मानते हैं । उनके विचार से व्युत्पत्ति* कवि के अशक्ति-जन्य समस्त दोषों को दूर कर देती है ।[३]

किन्तु समन्वयवादी आचार्य राजशेखर प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों को समान रूप से उपादेय मानते हैं ।

ऊपर राजशेखर तथा पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा वर्णित 'काव्यहेतु' का जो परिचय दिया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर ने 'शक्ति' को 'काव्यहेतु स्वीकार करते हुए भी प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास को मान्यता दी है। प्रतिभा को वे अन्य दो (व्युत्पत्ति और अभ्यास) से श्रेष्ठत्व प्रदान करते हैं । वे कहते हैं कि मेधाविरुद्र और कुमारदास आदि कवि जन्म से ही अन्धे थे, किन्तु उनके काव्य में पदार्थों का जो सजीव चित्रण मिलता है, उसका एकमेव कारण प्रतिभा है—

प्रतिभावतः पुनरपश्यतोऽपि प्रत्यक्ष इव यतो मेधाविरुद्र-कुमारदासादयो जात्यन्धाः कवयः श्रूयन्ते ।[४]

किन्तु आगे चलकर उन्होंने प्रतिभा और व्युत्पत्ति के समन्वय पर अधिक बल दिया है ।

प्रतिभाव्युत्पत्ती मिथः समवेते श्रेयस्यौ इति यायावरीयः ।

जैसे लावण्य के बिना सुन्दर रूप फीका है और रूप-सम्पत्ति के बिना लावण्य आकर्षणहीन है उसी प्रकार प्रतिभा और व्युत्पत्ति एक दूसरे से हीन होने पर निरर्थक होती हैं । निरन्तर प्रयास करते रहने को उन्होंने अभ्यास कहा है । *अन्त में वे काव्य की सफलता के लिये प्रतिभा-व्युत्पत्ति और अभ्यास की समान* महत्ता स्वीकार करते हैं । इनके मत में यह दुर्लभ समन्वय है—

१ काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १६ ।
२. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १६ ।
३ काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १६ 'व्युत्पत्तिः श्रेयसी इति मङ्गलः' ।
४. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १२ ।
५ काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १६ ।

बुद्धिमत्व च काव्याङ्ग-विद्यास्वभ्यासकर्म च ।
कवेश्चोपनिपच्छक्तिस्त्रयमेकत्र दुर्लभम् ।[1]

काव्य प्रयोजन—राजशेखर के अनुसार आनन्द, कीर्ति, धन प्राप्ति, शिष्य-हित, हितोपदेश, राजोपकार एवं लोकरुचि काव्य के प्रयोजन हैं । सुविधानुसार इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। इन में से कतिपय प्रयोजन कवि के स्वयं के लिये हैं । उन्हें कविनिष्ठ कहते हैं । कुछ प्रयोजन पाठक या श्रोता से सम्बन्धित होते हैं । अतः उन्हें पाठकनिष्ठ कहना उचित होगा । कविनिष्ठ प्रयोजन के अन्तर्गत (१) आनन्द, (२) कीर्ति एवं (३) धन प्राप्ति तथा पाठकनिष्ठ प्रयोजन में (१) शिष्यहित, (२) हितोपदेश, (३) राजोपकार एवं (४) लोकरुचि की गणना की जा सकती है ।

कविनिष्ठ प्रयोजन—राजशेखर का कथन है कि काव्यपुरुष को कथा को जानने वाला कवि इहलोक और परलोक दोनों में आनन्दित रहता है ।[2] उसी प्रकार जो राजा सभापति बनकर काव्यों की परीक्षा करता है, वह सर्वदा सुखी रहता है ।[3]

इस प्रकार आनन्द को उन्होंने स्पष्ट रूप से काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है । पूर्ववर्ती आचार्यों में भामह[4] और वामन[5] ने प्रीति को काव्य प्रयोजनों के अन्तर्गत माना है, जो राजशेखर-वर्णित आनन्द का ही पर्याय है ।

काव्य का दूसरा प्रयोजन कीर्ति है । कीर्ति को दसों दिशाओं में फैलाने वाले कवि, भावक एवं आश्रयदाता नरेश होते हैं । कीर्ति के विषय में कविराज कहते हैं कि कुछ कवि ऐसे होते हैं जिनकी रचना उनके घर की चहारदीवारी के भीतर ही विचरण करती है, कुछ कवियों की रचनायें, उनके मित्रों के भवनों तक पहुँच जाती हैं और कुछ कवि ऐसे होते हैं जिनकी रचना सभी के मुख पर नर्तन करती हुई विश्व भ्रमण की इच्छा पूर्ण करती हैं ।[6] राजशेखर की सम्मति में जिस कवि की प्रतिभा का अधिक प्रसार होता है उसकी कीर्ति समस्त संसार को प्रवलित कर देती है[7] । कवि कीर्ति का दूसरा विस्तारक भावक होता है ।

१ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३ । २. काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० १० ।
३. काव्यमीमांसा अ० १० पृ० ५५ ।
४. काव्यालंकार—भामह—करोति कीर्ति प्रीतिं च साधुकाव्य निबन्धनम् ।१।२
५. काव्यमीमांसा सूत्र—वामन—काव्यम् दृष्टादृष्टार्थं प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात् १।१।५ ।
६. काव्यमीमांसा अध्याय ४ पृ० १९ ।
७. काव्यमीमांसा अध्याय ९ पृ० ४९ ।

राजशेखर स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि कवि के उस काव्य से क्या लाभ जिसे आलोचकगण चारों ओर न फैलाये ? कवित्व वही है, जिसका सभी देशों में निर्बाध रूप से प्रसार हो और यह बात सहृदय पाठकों पर निर्भर होती है । राजाओं का आश्रय मिलने से भी कविगण प्रसिद्ध होते हैं । "राजाश्रयेण च गता कवयः प्रसिद्धिम्" ।[1] अतः कवि कीर्ति के प्रसार में राजगण भी सहायक होते हैं। राजशेखर के पूर्व भी प्रायः सभी आलंकारिकों ने कीर्ति की गणना काव्य प्रयोजनों में की है । महर्षि भरत द्वारा प्रयुक्त काव्य का 'यशस्यम्'[2] विशेषण भी कीर्ति का बोधक है । भामह की कारिका में भी कवि के लिये कीर्ति की प्राप्ति बतलाई है । वामन[3] ने काव्य प्रयोजनों को प्रीति और कीर्ति में ही विभाजित किया है । इस प्रकार कीर्ति के संबंध में प्रायः आचार्य एकमत हैं किन्तु राजाओं को कवि-कीर्ति का प्रचारक मानना राजशेखर की अपनी सूझ है ।

राजशेखर के विचारों से पता चलता है कि काव्य की रचना धनोपार्जन हेतु भी की जाती थी । प्रबन्ध किसी के पास धरोहर के रूप में रख देने से, बेच देने से, दान कर देने से, देश त्याग कर देने से, अल्पायु होने से, अपूर्ण रह जाने से, तथा अग्नि एवं जल आदि में विनष्ट हो जाते हैं ।[4] इन वाक्यों में इसी बात का संकेत मिलता है कि धनप्राप्ति की गणना भी काव्य प्रयोजनों में की जाती रही है । पूर्ववर्ती आचार्यों में भामह ने काव्य प्रयोजनों में अर्थ का भी समावेश किया है ।

इसी प्रकार आनन्द, कीर्ति और धनप्राप्ति इन तीनों प्रयोजनों का कवि से प्रत्यक्ष संबंध होने के कारण इनकी गणना कविनिष्ठ प्रयोजनों में की गई है ।

पाठकनिष्ठ प्रयोजन पाठक की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण प्रयोजन, जिनका राजशेखर ने उल्लेख किया है, तीन हैं—हितोपदेश, व्यवहारज्ञान एवं रागोपनार । राजशेखर की 'सभासच्चानन्द्यान सैव शिष्यहिताय च' इस पंक्ति का अभिप्राय यह है कि कविगण पाठकों के हित के लिये भी काव्य की रचना करते हैं । भरत-वर्णित 'हित'[5] यही है । राजशेखर का कथन है कि

1 काव्यमीमांसा अध्याय ६ पृ० २७ ।
2 नाट्यशास्त्र अ० ११४ (धर्म्यं यशस्यमायुष्यम्) ।
3. काव्यालंकारसूत्र वामन (काव्य सद् दृष्टादृष्टार्थं प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात्) १।१।५
4. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५३ यदाह कथयन्ति—'निक्षेपो विक्रयो दान देशत्यागोऽल्पजीविता त्रुटिकोऽग्निरम्भश्च प्रबन्धोच्छेदहेतवः ।'
5. नाट्यशास्त्र भरत—१-११४ ।

'प्राचीनकाल मे विद्वान् सहस्र शाखाओं वाले वेदो एव उनके अङ्गों का अध्ययन करते थे, शास्त्रों के तत्वों को समझते थे, देशान्तर और द्वीपान्तर का भ्रमण करते थे।'[१] इसका तात्पर्य यही है कि कवि के लिये व्यवहार-ज्ञान भी आवश्यक था। अत काव्य का एक प्रयोजन व्यवहार-ज्ञान भी है। इसकी अनुभूति पाठकगण करते है। कवियो से राजाओ का भी (आश्रयदाता) उपकार होता है, उनसे उनकी कीर्ति चारो ओर फैल जाती है।

ख्याता नराधिपतय कविसङ्गमेन
राज्ञोऽपि नास्ति कविना सदृश. सहाय ॥[२]

इस प्रकार पूर्ववर्ती आचार्यो ने जिन काव्य प्रयोजनो का प्रतिपादन किया था उनको और भी अधिक परिभाजित तथा सुन्दर रूप मे हम राजशेखर मे देखते हैं।

काव्य की आत्मा : भारतीय काव्यशास्त्र मे काव्यात्मतत्व का सर्वप्रथम विवेचन करने का श्रेय आचार्य वामन को है। वामन के पूर्व आचार्य दण्डी एव भामह ने अपना विवेचन शब्दार्थ तक ही सीमित रखा है। आत्म-तत्व तक वे न पहुँच सके। यह कार्य आचार्य वामन ने पूर्ण किया। उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा[३] के रूप मे प्रतिष्ठित किया। वामन के पश्चात् ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा[४] के रूप मे प्रतिष्ठापित किया। राजशेखर ने काव्यशास्त्र के क्षेत्र मे शरीर और आत्मा के सहारे काव्यपुरुष के रूपक की कल्पना ही नही की अपितु उसके अगप्रत्यगों पर भी प्रकाश डाला। काव्यपुरुष के रूपक मे उन्होंने शब्द और अर्थ को शरीर, संस्कृतादि भाषाओ को मुखादि अङ्ग तथा अलकारो को आभूषणो के रूप मे स्वीकार किया तथा रस को उसकी आत्मा के स्थान पर अधिष्ठित किया है। उनके पूर्व सभी आलकारिक रस को महत्व देते आये थे किन्तु उसे सर्वप्रथम आत्मा के रूप मे प्रतिपादित करने का श्रेय राजशेखर को ही है।

परवर्ती आचार्यो ने राजशेखर की इस मान्यता को निर्विवाद रूप मे ग्रहण किया। अग्निपुराणकार ने काव्य के जीवनतत्व के रूप मे रस की मान्यता दी। तत्पश्चात् विश्वनाथ ने काव्यलक्षण मे ही रस का समावेश कर दिया।

काव्यभेद : राजशेखर के मत मे वाङ्मय के दो मार्ग हैं—शास्त्र तथा काव्य—'इहहि वाङ्मयमुभयथा शास्त्रं काव्यं च।'[५] उन्होंने द्वितीय अध्याय मे

१. काव्यमीमांसा अ० १८पृ० ७८। २. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २७।
३. काव्यालंकारसूत्र—वामन—१.१। ४. ध्वन्यालोक आनन्दवर्धन ११।
५ काव्यमीमांसा अ० २पृ० २।

शास्त्रो का वर्गीकरण करने के उपरान्त काव्य का विवेचन किया है। प्राचीन आचार्यों ने चारो वेदो, उनके षडगो और चारो शास्त्रो की गणना चतुर्दश विद्याओं के आधार रूप मे की है। ये चौदह विद्यायें भू र्भुव और स्व इन तीनो लोको मे व्याप्त है। मनुष्य सहस्र वर्षों से अधिक जीवित रहकर भी इन चौदह विद्याओ का अन्त नही पा सकता। राजशेखर ने इन चौदह विद्याओ का आधार एक मात्र 'काव्य' को माना है।

'सकलविद्यास्थानैकायतन पचदश काव्यम् विद्यास्थानम्।'[1] उन्होंने काव्य को पन्द्रहवी विद्या कहकर गौरवान्वित किया है। उन्होने कहा है कि शास्त्र काव्य का अनुसरण करते है। इसकी पहली विशेषता यह है कि इस मे गद्य और पद्य का मजुल सामजस्य मिलता है। उनके मत मे काव्य के पूर्व की रचनाये केवल गद्यसृष्टि का निर्माण करती रही, पद्यसृष्टि का नही। छन्दोबद्ध वाणी का आविष्कार भी प्रथमत काव्य मे ही पाया जाता है। इसकी तीसरी उपयोगिता इसके हितोपदेश मे समृद्ध होने मे है और सब से बडी बात यह कि उप-विद्याओ और कलाओ का उपजीव्य काव्य ही है।

राजशेखर ने छन्द को आधार मानकर काव्य का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार काव्य के तीन भेद है—गद्य, पद्य तथा मिश्र। छन्दोमयी रचना पद्य, छन्दोरहित गद्य और दोनो का मिश्रण—मिश्र रचना है।[2]

काव्य के उक्त भेदो की स्थापना राजशेखर से पूर्व ही हो चुकी थी। काव्यशास्त्र के आद्याचार्य भामह ने रचना शैली की दृष्टि से काव्य को गद्य तथा पद्य मे विभक्त किया था।[3] आचार्य दण्डी ने काव्य के गद्य, पद्य तथा मिश्र ये तीन भेद बनाये है।[4] आचार्य वामन ने काव्य को स्थूल रूप से गद्य और पद्य मे विभक्त किया है।[5] राजशेखर दण्डी के काव्य-भेदो को मान्यता देते प्रतीत होते हैं।

भाषा की दृष्टि से राजशेखर कवि-राज है। कविराज विभिन्न भाषाओं मे रचना करने मे समर्थ होता है—

---

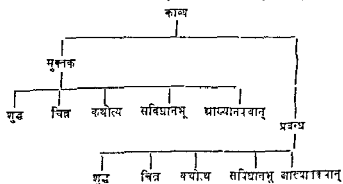
१ काव्यमीमासा अ० २ पृ० ४।
२. काव्यमीमासा अ० ९ पृ० ८६।
३ काव्यालकार—भामह—'शब्दार्थौ सहितौ काव्य गद्य पद्य च तद्द्विधा।' १:१६
४ काव्यादर्श—दण्डी—'पद्य गद्य च मिश्र च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्' १।११
५. काव्यालकारसूत्र—वामन—'काव्य गद्य पद्य च' १।३।२१।

'यस्तु तत्र तत्र भाषाविषये तेषु प्रबन्धेषु
तस्मिंस्तस्मिंश्च रसे स्वतन्त्र स कविराज. ।[1]

अत राजशेखर ने काव्य का विभाजन भाषा को आधार मानकर भी किया है । पूर्ववर्ती आचार्यों मे रुद्रट ने भाषा के आधार पर काव्य के सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश भूतभाषा, मागध, पिशाच, शूरसेन और अपभ्रश ये भेद बताये हैं ।

भामह ने काव्य को सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश मे विभक्त किया है ।[2] आचार्य दण्डी ने काव्य को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश तथा मिश्र रूप मे विभाजित किया है ।[3] काव्य की भाषा पर आधारित ये भेद युग-विशेष मे भाषा की प्रगति के परिचायक है । राजशेखर का भाषाविषयक दृष्टिकोण अन्य आचार्यों की तुलना मे व्यापक दिखाई देता है । उनके अनुसार भाषा की दृष्टि से काव्य के ६ भेद हैं—१. सस्कृत, २ प्राकृत, ३ अपभ्रश, ४ भूतभाषा, ५ पैशाची ६ मिश्र ।[4] इन भेदो मे राजशेखर का युग प्रतिबिम्बित हुआ है। तत्कालीन समाज सस्कृत काव्य से अधिक प्रभावित था । तदनन्तर क्रमश प्राकृत, अपभ्रश एव भूतभाषा मे रचित काव्य थे । जो कवि अनेक भाषाओ मे काव्य रचने की क्षमता रखता था उसे राजदरबार में विशिष्ट स्थान प्राप्त होता था ।

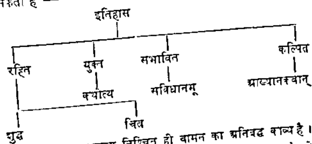
कथानक की दृष्टि से राजशेखर के काव्य-वर्गीकरण का तीसरा आधार है कथानक । कथानक की दृष्टि से उन्होने काव्य के दो भेद किये है, मुक्तक और प्रबन्ध । वास्तव मे ये भेद काव्यगत अर्थ के है । अर्थ के आधार पर ही हम काव्य को मुक्त और प्रबन्ध इन दो भागों मे बाँट सकते हैं । मुक्तक और प्रबध को भी उपभेदो मे विभाजित किया गया है । निम्न सारणी से यह स्पष्ट हो जायगा —



१ काव्यमीमासा अ० ५ पृ० १९ ।
२ काव्यालकार—भामह—१।१।१६ ।
३. काव्यमीमासा अ० ३ पृ० ६ ।
४ काव्यादर्श—दण्डी—१।३२ ।

मुक्त और प्रबन्ध में प्रत्येक के निम्न पाँच भेद हैं—(१) शुद्ध (२) चित्र (३) कथोत्थ, (४) संविधानभू, (५) आख्यानकवान्।

मुक्तकाव्य से राजशेखर का तात्पर्य स्फुट कविता या स्वतन्त्र कविता से है। प्रबन्ध का अर्थ है—काव्य या महाकाव्य। ऐतिहासिक कथा कथोत्थ कहलाती है। जिसमें घटना संभावित हो वह संविधानभू और जिस में इतिहास की कल्पना की जाए उसे आख्यानकवान् कहते हैं। इस बात को निम्न तालिका से भी स्पष्ट किया जा सकता है —



राजशेखर का मुक्तक काव्य निश्चित ही वामन का अनिबद्ध काव्य है। दूसरा भेद 'प्रबन्ध' वामन के 'निबद्ध' का वाचक है। अन्य काव्यशास्त्रों में इसके लिये प्रबन्ध शब्द ही प्रचलित है।

राजशेखर ने मुक्तक के पाँचों भेदों के उदाहरण अमरुशतक से लिये हैं तथा कुछ उदाहरण स्वरचित भी हैं। प्रबन्ध के पाँच भेद भवभूतिकृत मालतीमाधव तथा कालिदास के कुमारसंभव से लिये गये हैं।

राजशेखर कृत काव्य के भेद अधिक स्पष्ट नहीं है। एक काव्यरूप यत्किंचित भेद से दूसरे भेद में समाविष्ट हो सकता है। इसलिये उनका यह वर्गीकरण साहित्यजगत् में ग्राह्य न हो सका।

काव्यार्थ के स्रोत : वस्तुतः कवि स्वयं स्रष्टा है। ब्रह्मा की सृष्टि से उसकी सृष्टि कहीं अधिक उत्कृष्ट है। नियति ने ब्रह्मा के हाथ बाँध रखे हैं किन्तु कवि मुक्त रूप से सर्जन निर्बन्ध है। ब्रह्मा की सृष्टि सुख-दुःख के चक्र में घूमती रहती है, किन्तु कवि जगत में केवल आनन्द ही आनन्द है। ब्रह्मा की सृष्टि में प्रत्येक जीव प्रारब्धकर्म से बँधा रहता है, किन्तु कवि-जगत का प्रत्येक प्राणी कवि-प्रतिभा से ही गुँथा है। ब्रह्मा अपनी सृष्टि के प्रत्येक सदस्य को मधुर के साथ अम्ल, लवण, कटु कषाय और तिक्त रसों का आस्वादन कराता है किन्तु कवि जगत का नागरिक, नव-रसों का आस्वादन करता है। प्रश्न यह है कि इस सृष्टि की

आधारशिला कौनसी है। प्राय. सभी आचार्यों ने इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है। आचार्य राजशेखर ने कहा है—

"श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाणविद्या, समयविद्या, राजसिद्धातत्रयी, लोको, विरचना, प्रकीर्णकं च काव्यार्थाना द्वादश योनय इति आचार्या। उचित-संयोगेन, योक्तृ-सयोगेन उत्पाद्यसंयोगेन सयोग विकारेण च सह षोडश इति यायावरीय।"[1]

अर्थात् वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाणविद्या (मीमासा और छै प्रकार का तर्क शास्त्र) राजसिद्धान्तत्रयी (अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र और कामशास्त्र) लोक (सासारिक या व्यवहारिक वृत्त) विरचना (अन्यान्य कवियो की रचना) प्रकीर्णक (चौसठ कलायें, आवश्यक आयुर्वेद) ये कवि-सर्जन के आधार हैं।

वामन ने काव्ययोनि के स्थान पर काव्याङ्ग शब्द का प्रयोग किया है जिसे राजशेखर ने काव्य माता माना है। वामन ने तीन काव्याङ्ग माने हैं—लोक, विद्या और प्रकीर्ण।[2] लोक का अर्थ है लोक-व्यवहार।[3] विद्या के अन्तर्गत कोश, छन्द.शास्त्र, कला (चौसठ प्रकार की कलायें एवं चौदह उप-कलायें), कामशास्त्र, दण्डनीति, (अर्थशास्त्र एव राजनीति) आती है।[4] प्रकीर्ण फुटकर का द्योतक है। इसके भीतर लक्ष्यज्ञत्व, अभियोग, वृद्धसेवा, अवेक्षण, प्रतिभान और अवधान इन छ का सग्रह है।[5] अन्य कवियो के काव्यो का परिचय लक्ष्यज्ञत्व कहलाता है। काव्य रचना के लिय उद्योग को अभियोग कहते है। वृद्धसेवा से काव्योपदेशक गुरुजनो की सेवा अभिप्रेत है। पदो के आधान और उद्धरण मे निपुणता अवेक्षण के अन्तर्गत है।[6]

राजशेखर ने कवित्व की आठ माताओ मे भक्ति का भी उल्लेख किया है। आचार्य वामन की वृद्ध-सेवा मे भक्ति भी आ जाती है। उन्होने प्रतिभानम् के

---

१ काव्यमीमासा अ० ८ पृ० ३५।

२. वामन—काव्यालकारसूत्र—लोको विद्या प्रकीर्णश्च काव्याङ्गानि १।३।१

३ वही लोकवृत्ति लोक १।३।२।

४ वही श्रुतिस्मृतिरभिधानकोशच्छन्दोविचिति कला कामशास्त्र दण्डनीतिपूर्वा विद्या १।३।३।

५ वही लक्ष्यज्ञत्वभियोगो वृद्धसेवाऽवेक्षण प्रतिभानमवधानच प्रकीर्णम् १।३।१३।

६ वही तत्र काव्यपरिचयो लक्ष्यज्ञत्वम् १।३।१२—काव्यबन्धोद्यमोऽभियोग १।३।१३ काव्योपदेशगुरुशूश्रुषण वृद्धसेवा १।३।१४, पदाधानोद्धरणमवेक्षणम् १।३।१५।

घोड़ों आदि के द्वारा उड़ाई गई धूलि, स्वर्ग में पहुँचकर दिग्गजों की कनपटियों पर जाकर जम जाती है जिससे उनकी कनपटियों से बहता हुआ मदजल स्वर्गीय भ्रमरों के लिये कड़वा हो जाता है। दूसरी ओर वह धूलि देवराज इन्द्र की हजार आँखों में पड़कर उन्हें व्याकुल कर देती है और अन्त में वह एकत्रित धूलि स्वर्ग गंगा के जल में गिरकर उसे भी पङ्किल बना देती है।

यहाँ राजा की विजय यात्रा से धूलि का उड़ना, उससे सुर-सरिता के जल का पङ्किल होना, उससे स्नानार्थिनी सुराङ्गनाओं की विमनस्कता और उससे विजय यात्रा की निन्दा उत्तरोत्तर सम्बन्धकारी संयोग प्रतीत होता है।

उत्पाद्य संयोग : जहाँ उपमानोपमेयभाव आदि सम्बन्ध संभाव्य हो। यथा शिशुपालवध में—

उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहावाकाशगङ्गापयसः पतेताम्।
तेनोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः॥[१]

अर्थात् यदि आकाश से स्वर्ग गङ्गा की दो धारायें पृथक् पृथक् गिरें तो श्रीकृष्ण के नीलवक्ष स्थल पर दोनों ओर लटकती हुई मुक्ता-हार की लड़ियों की उपमा दी जा सकती है।

यहाँ आकाश और वक्ष स्थल का तथा मुक्तालता और गङ्गा-प्रवाह का उपमानोपमेय भाव संबंध सम्भावित है। अतः उत्पाद्य संयोग है।

संयोग विकार : संयोग या सम्बन्ध से विकार उत्पन्न होना संयोग विकार कहलाता है। अर्थात्—

गुणानुरागमिश्रेण यशसा तव सर्पता।
दिग्वधूनां मुखे जातमकस्मादर्धकुङ्कुमम्॥[२]

अर्थात् मिश्रित एवं चारों ओर फैलते हुए तुम्हारे यश से दिशारूपी वधुओं के भालस्थल पर अकस्मात् आधा कुंकुम का टीका लग गया।

श्वेत मस्तक पर लाल गुण एवं श्वेत यश के संयोग से अर्ध कुंकुम रूप विकार उत्पन्न हो गया है। इसीप्रकार चन्द्रोदय के संयोग से समुद्र आदि में उन्माद विकार को काव्य में वर्णित करना संयोग विकार है।

काव्यार्थ की परिधि : काव्य का क्षेत्र कितना व्यापक हो सकता है, इसकी चर्चा सब से पहले आचार्य द्रौहिणि ने की है। उनके मत से काव्य के पात्र दिव्य, दिव्यमानुष तथा केवल मानुष हो सकते हैं।

१. काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ४१। २ काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ४१।

राजशेखर ने अर्थ-व्याप्ति मात्र प्रकार की बतलाई है। द्रौहिणि-कथित तीन प्रकारों के अतिरिक्त पातालीय, मर्त्यपातालीय, दिव्यपातालीय और दिव्यमर्त्यपातालीय भेद से इसके निम्न सात प्रकार हो सकते हैं। वे हैं—(१) दिव्य, (२) दिव्य मानुष, (३) मानुष, (४) पातालीय, (५) मर्त्य-पातालीय, (६) दिव्य-पातालीय, (७) दिव्य-मर्त्य-पातालीय। दिव्य मानुष के चार अर्थ हैं—(१) दिव्य पुरुष का जन्म लेकर मर्त्य बन जाने पर, (२) मर्त्य पुरुष का प्राण त्याग कर दिव्य बन जाने पर (३) मर्त्य-पुरुष की दिव्य सबंधी कथानक कल्पना करने पर और (४) मर्त्य होकर भी अपने प्रभाव से दिव्य विभूति प्रकट करने पर (अन्य छै भेदों का अर्थ नाम से ही स्पष्ट हो जाता है।)

राजशेखर ने इन पात्रों के विवरण द्वारा नाट्यशास्त्र के विषय को अपने ग्रन्थ में उचित स्थान प्रदान किया है। उनकी मौलिकता का यह प्रबल प्रमाण है।

काव्य में सत्य शिव और सुन्दर की अभिव्यक्ति-काव्य पर दोषारोपण किया गया है कि (१) काव्य असत्य अर्थ का अभिधान करता है, (२) अशोभन वस्तु का उपदेश करता है, (३) असुन्दर, असभ्य अर्थों का भी वर्णन करता है। अतः काव्य का उपदेश मानव समाज के लिये अहितकर है—

'असत्यार्थाभिधायित्वात् नोपदेष्टव्यं काव्यम्।'

'असदुपदेशकत्वात् तर्हि नोपदेष्टव्यं काव्यम्।'

'असभ्यार्थाभिधायित्वान्नोपदेष्टव्यं काव्यम्।'[१]

कविवर राजशेखर इन आरोपों को कैसे सह सकते थे? तीनों का परिहार कर उन्होंने काव्य में सत्य शिव सुन्दर इन तीनों तत्वों को और समाहित कर दिया। प्रथम आरोप के परिहार के लिये वे कहते हैं कि काव्य में कोई भी वस्तु असत्य नहीं होती। जो असत्याभास प्रतीत होता है वह अर्थवाद है जो युगों युगों से वेदों की सूक्तियों में भी दिखाई देता है। इसे हम असत्य नहीं कह सकते। इस कथन की पुष्टि के लिये उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण तथा पातञ्जल महाभाष्य के पस्पशाह्निक से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। अतः जिस अर्थवाद का प्रयोग शास्त्र एवं श्रुति करते आये हैं, उन्हें कविजन अपने काव्य में प्रयुक्त करें तो वह कथमपि असत्य नहीं हो सकता। काव्य सदा सत्य की अभिव्यक्ति करता है।[२]

१. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २४, २६, २७।
२. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २७।

(२) काव्य में अनैतिक वस्तु का उपदेश दिया जाता है, इस कथन की पुष्टि मे उद्धृत श्लोक (जिस मे एक वृद्ध कुलटा अपनी पुत्री के कुलटानियम-विमुख आदर्शों की अवहेलना कर रही है) का आशय स्पष्ट करते हुए राजशेखर कहते हैं कि काव्य मे यह अशोभन बातें प्रस्तुत की गई हैं, किन्तु यह उपदेश निषेध्य रूप मे है, विधेय रूप मे नही है ।

'अस्त्ययमुपदेशः किन्तु निषेध्यत्वेन न विधेयत्वेन "[1]

समाज के चरित्र रक्षण के लिये ऐसे उपदेशों की नितांत आवश्यकता होती है । उसका उत्तरदायित्व कवि काव्य द्वारा पूर्ण करते हैं । तीसरा आक्षेप यह है कि काव्य मे असभ्य अर्थ का अभिधान उपलब्ध होता है । यायावरीय इसके उत्तर में कहते है कि ऐसे अर्थों का निबन्धन, वेद या शास्त्र मे भी प्रसगानुसार दिखाई देता है । अत यदि कवि प्रसगानुसार अर्थ को अभिव्यक्त करें तो वह नितान्त क्षम्य है, क्योकि काव्य का प्रयोजन सत्य शिव सुन्दर की अभिव्यक्ति है, असत्य, अशिव एवं असुन्दर का आलाप नही ।[2]

इन तीन आक्षेपो के परिहार द्वारा यायावरीय ने काव्य मे सत्यता शिवता एवं सुन्दरता का समर्थन किया है ।

कवि शिक्षा सम्प्रदाय

'कवि-शिक्षा-सम्प्रदाय' साहित्यशास्त्र के मान्य सम्प्रदायो (रस, अलकार, रीति एव ध्वनि) से नितान्त भिन्न है । इस सम्प्रदाय का ध्येय अन्य सम्प्रदायो की भाँति काव्य के आत्मतत्व की गवेषणा एव स्थापना नही है । इसका उद्देश्य है— कवि के व्यक्तित्व एवं कर्तव्य के विकास तथा सवर्धन के लिये उचित मार्गदर्शन करना । कवि-रहस्य अधिकरण का दो-तिहाई भाग कवि-शिक्षा से सबधित है । इस अधिकरण के तृतीय से पचम तथा दशम से अष्टादश अध्यायो तक का वर्ण्य-विषय कवि-शिक्षा है ।

राजशेखर ने 'कविशिक्षा' के अन्तर्गत (१) काव्यपुरुष, (२) कवि, (३) भावक,, (४) काव्यपाक, (५) काव्यानुहरण एव (६) कविसमय का विवेचन किया है ।

काव्यपुरुष : नवम शताब्दी से पूर्व साहित्य-शास्त्र काव्यपुरुष से अपरिचित था । सर्वप्रथम आचार्य दण्डी ने 'शरीर तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली'

१. काव्यमीमासा अ० ६ पृ० २६ ।
२. काव्यमीमासा अ० ६ पृ० २७ ।

कहकर काव्य-शरीर का निर्देश किया, किन्तु उसमें सजीवता लाने के लिए आत्मतत्त्व की प्रतिष्ठा का प्रयास आचार्य वामन ने किया। उन्होंने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। आचार्य आनन्दवर्धन रीति नामक आत्मतत्त्व से पूर्णतया असहमत थे। अत उन्होंने रीति के स्थान पर ध्वनि को काव्य की आत्मा सिद्ध किया। इस प्रकार राजशेखर के पूर्ववर्ती आचार्यों ने काव्य के शरीर एवं आत्मा का जो रूपक बाँधा था, उसकी पृष्ठभूमि में उन्होंने एक 'काव्यपुरुष' की केवल कल्पना की थी, किन्तु यह कल्पना कल्पना ही बनी रही। राजशेखर ने इस कल्पना को स्पष्ट और मूर्त रूप प्रदान किया। काव्यपुरुष के अवतरण की यही पृष्ठभूमि है। काव्यपुरुष का जन्म, भ्रमण एवं विवाह की रोचक कथा राजशेखर की प्रतिभा की देन है। कवि रहस्य अधिकरण का तीसरा अध्याय 'काव्यपुरुषोत्पत्ति' है[1] जिसमें वे कहते हैं—प्राचीनकाल में पुत्र प्राप्ति की इच्छा से सरस्वती ने हिमालय पर जाकर तपस्या प्रारम्भ की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने वरदान दिया। फलस्वरूप सरस्वती को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। यही काव्यपुरुष था। सरस्वती का पुत्र होने के कारण यह 'सारस्वतेय' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस पुत्र ने उठकर माता के चरणों का स्पर्श करते हुए छन्दोबद्ध भाषा में कहा—

"यदेतद्वाङ्मयं विश्वमर्थमूर्त्या विवर्तते—
सोऽस्मि काव्यपुमान् मातः पादौ वन्देय तावकौ।"[2]

इस प्रकार की छन्दोमयी वाणी केवल वेदों में दृष्टिगोचर होती थी। लौकिक संस्कृत में प्रथमत उसका आविष्करण सुनकर सरस्वती अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने पद्य की प्रथमत सृष्टि करने वाले उस बालक की निम्नलिखित शब्दों में प्रशंसा की—

'शब्दार्थौ ते शरीरं, संस्कृतं मुखं, प्राकृतं बाहुः, जघनमपभ्रंशः, पैशाचं पादौ, उरो मिश्रम्। समः प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि। उक्तिचणं च ते वचो, रस आत्मा, रोमाणि छन्दांसि, प्रश्नोत्तरप्रवहिलकादिकं च वाक्केलिः, अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलङ्कुर्वन्ति।'[3]

अर्थात् शब्द और अर्थ तुम्हारा शरीर है। संस्कृत भाषा मुख, प्राकृत भुजा, अपभ्रंश जघन, पैशाची चरण तथा मिश्र भाषा तुम्हारा वक्षस्थल है। सम,

1 सारस्वतेय पुरुष का उल्लेख अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है। वायुपुराण के ५७ वें अध्याय, शान्तिपर्व के २०९ वें अध्याय में, शल्यपर्व के ५१ वें अध्याय और हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास में।

2 काव्यमीमांसा पृ० ३१०६।   3 काव्यमीमांसा पृ० ३१०६।

प्रसन्न, मधुर उदार आदि गुणों से तुम युक्त हो । तुम्हारी वाणी उत्कृष्ट है । रस तुम्हारी आत्मा है । छन्द तुम्हारे रोम हैं । प्रश्नोत्तर, प्रवह्लिका आदि तुम्हारी वाक्-क्रीडा है । उपमा अनुप्रास आदि तुम्हें अलङ्कृत करते हैं । भावी अर्थ को बतलाने वाली श्रुति भी तुम्हारी वन्दना करती है ।

> *चत्वारि शृङ्गास्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोऽस्य त्रिधा बद्धो*
> वृषभो रौरवीति महादेवो मर्त्यानाविवेश ।।[1]

अर्थात् चार सींगों, तीन पैरों, दो सिरों एवं सात हाथों वाला, तीनों प्रकार से बंधा हुआ और शब्द करता हुआ यह महादेव मर्त्य लोक में अवतीर्ण हुआ है । पश्चात् एक सघन वृक्ष की छाया में स्थित शिला पर उसे लिटाकर एवं नवजात *शिशु-सदृश आचरण करने का* उपदेश देकर सरस्वती आकाश गंगा में स्नान के लिये चली गई । मध्याह्न में ताप से बिलखते हुए उस बालक को उशनस् मुनि ने देखा तो वह दयार्द्र होकर उसे अपने आश्रम में ले आये । आश्रम के उस प्रशान्त वातावरण में बालक ने उशनस् मुनि को छन्दोबद्ध वाणी में प्रेरित किया जिससे उन्होंने सरस्वती के स्तुतिपरक उद्गार अभिव्यक्त किये—

> "या दुग्धापि न दुग्धेव कविदोग्धृभिरन्वहम् ।
> हृदि न सन्निधत्तां सा सूक्तिधेनुः सरस्वती ।।[2]

अर्थात् जिसे कविगण, ग्वालों के समान दिन-रात दुहते रहते हैं, फिर भी जो बिना दुही-ही प्रतीत होती है, वह सूक्तियों की कामधेनु सरस्वती हमारे हृदय में निवास करे । इस छन्दोमय उद्गार के कारण उशनस् मुनि आदिकवि के रूप में प्रसिद्ध हुए । स्नान के उपरान्त सरस्वती बालक को ढूंढने निकली । उस समय वाल्मीकि ने उन्हें उशनस् के आश्रम का पता बतलाया । इस प्रकार वाल्मीकि सरस्वती के कृपा-पात्र बन गये । उन्होंने छन्दोबद्ध रचना के लिये सरस्वती का आशीर्वाद प्राप्त किया । फलस्वरूप एक दिन निषाद के द्वारा सहचरी के मारे जाने पर करुण विलाप करते हुए युवा क्रौंच को देखकर उनके शोक-सन्तप्त हृदय से यह वैखरी वाक् निकल पड़ी —

> "मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
> यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।[3]

---

१. ऋग्वेद ३-८-१०-३ (भिन्न-भिन्न भाष्यकारों द्वारा विविध प्रकार से व्याख्यात इस मन्त्र का उपयोग राजशेखर ने अपनी भावव्यञ्जना के अनुरूप कर लिया है ।)
२-३ काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० ७ ।

यह वाणी कवि के सारस्वत होने का आधार बन गयी। इस श्लोक का अध्ययन करने वाला कवि भी सारस्वत नाम से सम्बोधित होने लगा। इसी श्लोक को पढ़कर द्वैपायन मुनि ने शतसाहस्त्री महाभारत संहिता का निर्माण किया।

एक बार ब्रह्म-लोक में ऋषियों और देवताओं में किसी वैदिक विषय पर विवाद छिड़ गया। ब्रह्मा के आदेश से सरस्वती को निर्णयार्थ ब्रह्मलोक जाना पड़ा। सारस्वतेय भी साथ जाने के लिए तैयार हो गया। ब्रह्मा की अनुमति के बिना उसे ले जाना अनुचित समझकर सरस्वती उसे छोड़कर चली गयी। बालक भी पीछे-पीछे जाने लगा। उसे जाते हुए देखकर उसका मित्र कार्तिकेय रोने लगा। अतः उस बालक काव्यपुरुष को मनाने के लिए सरस्वती तथा पार्वती ने साहित्य-विद्या-वधू का सर्जन किया। उन्होंने काव्यविद्या-स्नातकों एवं साहित्य-विद्या-वधू को उनका कर्तव्य भी बतलाया।

साहित्य-विद्या वधू एवं काव्य-विद्या स्नातक काव्य-पुरुष की खोज में पूर्व की ओर चल पड़े। अंग बंग सुह्म एवं पुण्ड्र ब्रह्म आदि जनपदों में पहुँच साहित्य-वधू ने जैसी वेशभूषा धारण की, उसी का अनुकरण तद्देशीय स्त्रियों ने किया। पुरुषों ने काव्य-पुरुष की वेश प्रणाली का अनुकरण किया। जिस वचन-विन्यास का साहित्य-वधू ने प्रयोग किया उसी वचन-विन्यास क्रम को गौडीया रीति का नाम मिला। वधू ने काव्य-पुरुष के मनोरंजन के लिए जिस विलास का प्रदर्शन किया उस विलास विन्यासक्रम को भारती वृत्ति कहा गया तथा उसकी वेशभूषा औड्रमागधी प्रवृत्ति के नाम से विख्यात हुई। इसके अनन्तर काव्यपुरुष पांचाल की ओर चला जहाँ पांचाल शूरसेन, हस्तिनापुर, काश्मीर, वाहीक, वाह्लीक आदि जनपद है। इन प्रदेशों की स्त्रियों को भी साहित्य-वधू की वेशभूषा का अनुकरण पूर्वानुसार रुचिकर प्रतीत हुआ। काव्य-जगत में यह वेशभूषा सवलित प्रवृत्ति पांचालमध्यमा कहलाई। वधू की वचन शैली पांचाली रीति तथा विलास-विधि सात्त्वती वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध हुई। तत्पश्चात् काव्यपुरुष और साहित्य वधू अवन्ति की ओर गये, जहाँ अवन्ति, वैदिश, सुराष्ट्र, मालव, अर्बुद एवं भृगुकच्छ आदि देश है। वहाँ साहित्य-वधू ने विशिष्ट नेपथ्यविधान किया जिस में पांचाल देश और दक्षिण देशों के वेशों का मिश्रण था। उसका वचन-विन्यास एवं विलासक्रम भी यही प्रकट करता था कि पांचाल और दक्षिण का उन पर पर्याप्त प्रभाव है। यहाँ प्रदर्शित नेपथ्यविधि आवन्ति एवं विलासविधि सात्वती तथा कौशिकी नाम से प्रसिद्ध है।

इसके पश्चात् काव्यपुरुष दक्षिण दिशा की ओर गया, जहाँ मलय, मेकल, कुतल, केरल, पाल, मन्जर, महाराष्ट्र, गग और कलिंग आदि जनपद हैं। इन स्थानों पर साहित्य-वधू द्वारा अगीकृत वेश प्रणाली दक्षिणात्या कहलाई। उन्होंने नृत्य, गीत एव वाद्यादि की जिस शैली का प्रदर्शन किया वही कैशिकी वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध हुई। उन्होंने भाषण में जिस वचन-शैली का उपयोग किया वह *वैदर्भी रीति के नाम से प्रथित हुई। साहित्य-विद्या-वधू के वेश-वचन एव* विलास के प्रति क्रमश. आकृष्ट होते हुए काव्यपुरुष ने अपनी यात्रा स्थगित कर दी। विदर्भ देश में काव्यपुरुष ने साहित्य-वधू के साथ गान्धर्व रीति से विवाह किया।

काव्यपुरुष की सृष्टि का उद्देश्य : राजशेखर का उद्देश्य काव्यपुरुष की रोचक कथा प्रस्तुत करना ही नहीं है। साहित्य-शास्त्र में इस पुरुष की अवतारणा का लक्ष्य है—*काव्य का समग्र भव्य और आकर्षक रूप उपस्थित करना।* रीति का वृत्ति और प्रवृत्ति के साथ घनिष्ट सम्बन्ध व्यक्त करते तथा गौडीया, पाचाली और वैदर्भी की क्रमश. श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए साहित्य-विद्या-वधू द्वारा काव्यपुरुष की खोज में भारत-भ्रमण का आयोजन किया है। रीति वृत्ति एव प्रवृत्ति का अस्तित्व समाज में ही है, उसके बाहर नहीं, इस तथ्य की ओर भी राजशेखर ने सहृदय पाठक का ध्यान आकृष्ट किया है। काव्यपुरुष की आत्मा को रस सज्ञा देकर उन्होंने स्वय को रसवादी प्रमाणित किया है। उसी प्रकार काव्यपुरुष के अग-प्रत्यग का वर्णन करके उन्होंने समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। गद्य का अस्तित्व प्राचीनकाल से है किन्तु लौकिक सस्कृत में पद्य (छन्द) का प्रयोग काव्यपुरुष के अवतरण से ही आरम्भ हुआ, यह मत भी पूर्णत शास्त्रीय है। सामान्यतया वाल्मीकि आदि कवि के रूप में प्रसिद्ध है किन्तु उशनस को आदि-कवि कहकर उन्होंने गीता के 'कवीनामुशनाकवि' की पुष्टि की है।

राजशेखर ने काव्यपुरुष तथा साहित्य-विद्या का विदर्भ के वत्सगुल्म (वर्तमान वाशिम) नगर में मगल विवाह रचाकर यह सकेत किया है कि वे विदर्भ की मनोहरता एव सरसता के विशेष पक्षपाती थे।

कवि : सारस्वत-पथ पर चलने वाले पथिकों में प्रतिभा और व्युत्पत्ति से सम्पन्न, रस के उद्‌बोध में समर्थ, वर्णन में निपुण व्यक्ति ही 'कवि' सज्ञा का अधिकारी हो सकता है।[1] कविशब्दश्च कवृ वर्णे इत्यस्य धातोः काव्यकर्मणो रूपम्'

१. काव्यमीमासा अ० ३ पृ० ७।

और उस कवि का धर्म या गुण ही मान्य है। राजशेखर की काव्यमीमांसा में काव्यजगत के सचालक कवियों के भेदोभेद विस्तार से वर्णित किये हैं। इनके आधार भिन्न-भिन्न हैं। जिन आधारों के माध्यम से कवियों का विभाजन किया गया है वे निम्न हैं—

(१) प्रतिभा, (२) मौलिकता, (३) विषय, (४) हृदय और (५) मनोवृत्ति।

प्रतिभाजन्य कवि : राजशेखर ने प्रतिभा के दो भेद वर्णित किये हैं—कारयित्री और भावयित्री। इनमें कारयित्री प्रतिभा—सहजा, आहार्या और औपदेशिकी तीन प्रकार की होती है। सहजा प्रतिभा से सम्पन्न कवि सारस्वत, आहार्या प्रतिभा से युक्त आभ्यासिक तथा औपदेशिक प्रतिभा से सम्पन्न कवि 'औपदेशिक' कहलाता है। कवि की विशेषता यह है कि उसे जन्मान्तरीय संस्कारों से ही सारस्वत अनुभवों का बोध हो जाता है।[1] अत. उनकी रचना में प्रतिभा का स्वतन्त्र विकास दिखाई देता है। आभ्यासिक कवि की प्रतिभा इसी जन्म के अभ्यास से उद्भासित होती है।[2] अत इस कवि के लिए अभ्यास अत्यन्त उपादेय होता है। औपदेशिक कवि की स्थिति इन दोनों से भिन्न है। मन्त्र-तन्त्रादि के अनुष्ठान से उसमें कवित्व शक्ति का उद्भव होता है।[3] बुद्धिमान्, आहार्यबुद्धि एवं दुर्बुद्धि—इन तीनों प्रकार के शिष्यों में दुर्बुद्धि शिष्य ही औपदेशिक कवित्व का पात्र होता है।

आचार्यों का मत है कि औपदेशिक कवियों को छोड़कर शेष (सारस्वत और आभ्यासिक) कवियों को कवित्व शक्ति के उद्भावन के लिए मन्त्र-तन्त्र आदि के अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि जो द्राक्षाफल स्वय ही मधुर है वह फाणित सस्कार की अपेक्षा नहीं करता।[4] किन्तु राजशेखर आचार्यों की इस विचारधारा से पूर्णतया असहमत हैं। वे कहते हैं कि एक ही कार्य का सम्पादन करने वाले दो साधनों का यदि एक साथ प्रयोग कर लिया जाय तो क्रिया का फल द्विगुणित हो जाता है। अत सारस्वत और आभ्यासिक

---

१ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३—जन्मान्तरसंस्कारप्रवृत्त सरस्वतीको बुद्धिमान्सारस्वत।
२. काव्यमीमासा अ० ४ पृ० १३—इह जन्माभ्यासोद्भासितभारतीक आहार्यबुद्धिराभ्यासिक।
३. काव्यमीमासा अ० ४ पृ० १३—उपदेशितदर्शितवाग्विभवो दुर्बुद्धिरौपदेशिक.।
४ काव्यमीमासा अ० ४ पृ० १३—तस्मान्नैतयो तन्त्रोपमनुतिष्ठताम् नहि प्रकृतिमधुरा द्राक्षा फाणित-सस्कारमपेक्षते इत्याचार्या।

कवियों के लिए मन्त्र-तन्त्र का अनुष्ठान उपादेय ही है। आचार्य श्यामदेव का कथन है कि इन तीनों प्रकार के कवियों में क्रमश औपदेशिक से आभ्यासिक और आभ्यासिक से सारस्वत कवि उत्तरोत्तर कुशल होते हैं—'तेषामुत्तरोत्तरीयो गरीयान्' इति श्यामदेव.।[१] सारस्वत कवि की काव्यधारा नैसर्गिकी प्रतिभा के कारण निर्बाधगति से प्रवाहित होती है। आभ्यासिक कवि की रचना अभ्यास-जन्य होने के कारण परिमित क्षेत्र तक ही व्याप्त रहती है, और औपदेशिक कवि मन्त्र-तन्त्र के अनुष्ठान से कवित्व शक्ति को अर्जित करता है। अत वह कभी तो सरस और कभी नीरस रचना करता है।

राजशेखर को यह मन्तव्य अभीष्ट नहीं है। उन्होंने रचना के उत्कर्ष को श्रेष्ठता प्रदान की है, सारस्वत, आभ्यासिक एवं औपदेशिक नामों को नहीं। उनके मतानुसार गुणों की ही अधिकता से काव्य में उत्कर्ष होता है। जिस कवि में जितने अधिक गुण होंगे उतनी ही उत्कृष्ट उसकी रचना होगी। वे कहते हैं कि काव्य-रचना में उपकारिणी विद्याओं का प्रखर ज्ञान, काव्य-रचना का अभ्यास तथा गूढ कवित्व शक्ति—इन तीनों का एकत्र निवास दुर्लभ है। काव्य, काव्याङ्ग विद्याओं का पूर्ण अभ्यास तथा मन्त्र-तन्त्रादि के अनुष्ठान का रहस्य ज्ञान जिस कवि को है कविराजता उसके लिये अलभ्य नहीं है। कविराज राजशेखर की यह युक्ति इसी ओर इगित करती है कि वे आचार्य श्यामदेव के मत के समर्थक नहीं हैं। सारस्वत, आभ्यासिक अथवा औपदेशिक कवि में से किसी में भी यदि सर्वगुण विद्यमान है तो वही श्रेष्ठ कहा जा सकता है।

मौलिकता-जन्य कविभेद : राजशेखर ने रचना की मौलिकता की दृष्टि से कवियों की कतिपय श्रेणियाँ निर्धारित की हैं। वे है—(१) उत्पादक, (२) परिवर्तक, (३) आच्छादक, (४) सवर्गक। इस विषय में उनका निम्न कथन नितान्त युक्तियुक्त है—

नास्त्यचौर. कविजनो नास्त्यचोरो वणिग्जन ।
स नन्दति विना वाच्य यो जानाति निगूहितुम् ॥[२]

कवि और वणिग्जन चौर्य-कर्म के बिना रह नहीं सकते, परन्तु जो चोरी को छिपाना जानता है वह वस्तुत आनन्द से रहता है। मौलिक रचना करने वाले कवि नगण्य हैं। जो अपनी प्रतिभा से नवीन रचना करता है उसे उत्पादक कवि कहते हैं। दूसरे की रचना में कुशलता से परिवर्तन करके उसे अपनी बना

१ *काव्यमीमासा अ० ५ पृ० १७।* २. *काव्यमीमासा अ० ११ पृ० ६२।*

लेने वाला कवि परिवर्तक की श्रेणी में रखा जा सकता है। जो अपनी प्रतिभा से दूसरों की रचना पर इस तरह आवरण डालता है कि उस रचना के अन्यकृत होने का आभास ही नहीं हो पाता, ऐसा कवि आच्छादक कहा जा सकता है। दूसरे की कविता या काव्य को निर्भीकता से अपना कहकर प्रकट करने वाला कवि संवर्गक की कोटि में रखा जा सकता है। राजशेखर की इन दो पंक्तियों में उक्त कवि-श्रेणियों का बोध होता है—

उत्पादक कवि. कश्चित्कश्चिच्च परिवर्तक
आच्छादकस्तथा चान्यस्तथा सवर्गकोऽपर. ।[१]

विषयानुसार कवि-कोटियाँ : राजशेखर ने वाङ्मय के शास्त्र एवं काव्य इन भेदों के आधार पर कवियों के तीन वर्ग बनाये हैं। जिन कवियों का लक्ष्य अपनी रचना में काव्य को महत्व देना है वे काव्यकवि, जिनका प्रमुख उद्देश्य रचना में शास्त्र को अभिव्यक्त करना है वे शास्त्रकवि एवं जिनका लक्ष्य शास्त्र और काव्य दोनों को समान महत्ता स्थापित करना है वे उभयकवि कहलाते हैं। इस संदर्भ में राजशेखर ने श्यामदेवाचार्य का उल्लेख किया है, जिनके अनुसार शास्त्रकवि से काव्यकवि और काव्यकवि से उभयकवि-श्रेष्ठ माने जाते है।[२] राजशेखर इनसे असहमत हैं। उनके मतानुसार अपने-अपने विषय में प्रत्येक कवि श्रेष्ठ है। अत उनमें से किसी को ऊँचा या नीचा बतलाना ठीक नहीं। नीरक्षीर-विवेक में कुशल राजहंस भी चन्द्रिकापान में असमर्थ होता है और चन्द्रिकापान में दक्ष चकोर भी नीर-क्षीर विवेक में असमर्थ सिद्ध होता है। ठीक इसी प्रकार काव्यकवि और शास्त्रकवि के रचना क्षेत्र नितान्त भिन्न होने के कारण उनकी उच्चा-वचता का प्रश्न ही नहीं उठता? शास्त्रकवि रस-सम्पदा के द्वारा शास्त्र की जटिलता को शिथिल कर उसे रससिक्त करने का प्रयास करता है। काव्यकवि शास्त्र के तर्क-कर्कश अर्थों में भी उक्तिवैचित्र्य के द्वारा, मधुरता को स्पंदित करता है। उभयकवि दोनों प्रकार की विधियों में दक्ष होता है। अत राजशेखर का कथन है कि तीनों ही कवि अपने-अपने क्षेत्र में समान के हैं कम या अधिक नहीं। काव्य और शास्त्र की सापेक्षता के कारण दोनों के मध्य उपकार्य-उपकारक भाव रहता है। अत इन दोनों का सामंजस्य नितान्त अपेक्षित है। इन दोनों के महत्व का प्रतिपादन करने के पश्चात् राजशेखर ने शास्त्रकवि के तीन प्रकार वर्णित किये

१ काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ६१।
२ काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १७ लेपमुत्तरोत्तरीयो गरीयान् इति श्यामदेव ।

(१) काव्यविद्यास्नातक, (२) हृदयकवि, (३) अन्यापदेशी, (४) (४) सेविता, (५) घटमान, (६) महाकवि, (७) कविराज (८) आवेशिक, (९) अविच्छेदी तथा (१०) सत्रामयिता।

जो व्यक्ति कवित्व की कामना से काव्य की विद्याओं तथा उप-विद्याओं के ग्रहण करने के लिए गुरुकुल में जाकर निवास करता है, वही काव्य-विद्या-स्नातक है। (२) जो हृदय में ही कविता को छिपाये रहता है, वह हृदयकवि है। (३) स्वयं कविता करने के पश्चात् दोष के भय के कारण उसे दूसरे की रचना कहकर उसका प्रचार करता है वह अन्यापदेशी कवि है। (४) प्राचीन या पूर्ववर्ती कवियों की छाया को ग्रहण कर रचना करने वाला सेविता कवि है। (५) जो मुक्तक काव्य की रचना कर सकता है प्रबन्ध की नहीं, यह घटमान कवि कहलाता है। (६) प्रबन्ध-काव्य को रचना करने वाला महाकवि तथा (७) सब प्रकार की भाषाओं में विभिन्न रसों का आविष्करण करने में समर्थ कवि राजपद का अधिकारी होता है। (८) मन्त्र तन्त्र की उपासना से काव्य में सिद्धि पाने वाला कवि आवेशिक कहलाता है। (९) जो इच्छा होते ही बिना किसी अवरोध के रचना करता है, उसे अविच्छेदी कवि कहते है। (१०) जो स्वयं सिद्धमन्त्र होकर मन्त्र के बल पर कन्या या कुमारी में सरस्वती का सञ्चरण करता है उसे सत्रामयिता कहते हैं।

कवि की इन दस अवस्थाओं में प्रथम सात कवि के क्रमिक विकास की द्योतक है। आठवीं तथा दसवीं अवस्था का सम्बन्ध औपदेशिक कवि से है।

काव्य-कला के साधकों की मनोवृत्ति भी कवियों के काव्यभेदों का आधार बन सकती है। कुछ कवि एकाग्र चित्त से, भूमिगृह में बैठकर काव्य रचना में प्रवृत्त होते हैं। उन्हें असूर्यपश्य कवि कहते हैं। कुछ प्रसंग आने पर ही काव्य रचना करते हैं ऐसे कवि निषण्ण कहलाते है। कतिपय अन्य कार्यों से निवृत्त होने पर रचना करते हैं उन्हें दत्तावसर कवि कहा जाता है। किसी विशेष प्रयोजन से काव्य-सृजन करने वाले की प्रायोजनिक संज्ञा है।

राजशेखरकृत कवि का वर्गीकरण, उनके द्वारा वर्णित कवियों की दस अवस्थायें उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एवं पाण्डित्य की परिचायिका है। उन्होंने कवियों के भेदोपभेदों का जो वर्णन किया है वह उनकी मौलिकता का प्रमाण है। काव्य के अन्तस्तल तक पहुँचकर कवियों की मनोवृत्ति की सूक्ष्म व्याख्या उनकी विश्लेषण शक्ति को सूचित करता है। उन्होंने कवियों के समस्त प्रकारों की ही विवेचना नहीं की अपितु भिन्न देशीय कवियों की

काव्यपाठ-प्रणाली का भी विवेचन किया है। उन्होंने काव्यमीमांसा में कविचर्या का जो विस्तारपूर्वक निरूपण किया है, उससे प्रतीत होता है कि वे केवल कवि ही नहीं थे, कवियों के श्रेष्ठ मार्ग-दर्शक भी थे।

भावक : राजशेखर ने आलोचक या समीक्षक के लिए 'भावक' शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है (भावयतीति भावकः) कवि के श्रम तथा अभिप्राय की भावना करने वाला। द्विविध प्रतिभा में से भावयित्री प्रतिभा भावक की उपकारिणी होती है। कवि का काव्यतरु इसी प्रतिभा के बल पर फलित होता है।

भावक-भेद : राजशेखर ने भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भावकों के तीन भेद बतलाये हैं।[1] ये हैं—वाग्भावक, हृदय-भावक तथा अनुभाव भावक। वाणी द्वारा भाव प्रकट करने वाला वाग्-भावक कहलाता है। काव्यास्वादन या काव्यपरीक्षण करने के पश्चात् भी जो अपने भावों को हृदय में ही रखता है उसे हृदय-भावक कहते हैं। अनुभाव-भावक काव्य की श्रेष्ठता या प्रभमता को सात्विक एवं आंगिक भावों द्वारा प्रकट करता है।[2] इन तीन भेदों के अतिरिक्त भी राजशेखर ने भावकों की अन्य चार कोटियाँ वर्णित की हैं—अरोचकी, सतृणाभ्यवहारी, मत्सरी तथा तत्त्वाभिनिवेशी। अरोचकी तथा सतृणाभ्यवहारी भावक—कोटियों का उल्लेख राजशेखर के पूर्ववर्ती आचार्य मंगल ने भी किया है। इन्हीं दो को वामन[3] ने कवियों में परिगणित किया है।

राजशेखर का कथन है कि अरोचकी भावक उत्कृष्टतम रचना के प्रति भी अरुचि व्यक्त करते हैं। उनकी यह अरोचकता दो प्रकार की होती है—स्वाभाविकी एवं ज्ञानयोनि। स्वाभाविक अरुचि सैकड़ों संस्कारों से भी दूर नहीं हो सकती। जिस प्रकार अनेकों संस्कारों के पश्चात् भी राँगे की कालिमा नहीं मिट सकती। ज्ञानजन्य अरुचि के विषय में किञ्चित आशा दिखाई देती है क्योंकि उसमें विशिष्ट ज्ञेय वचनों से प्रभावित होने की उसमें संभावना रहती है।[4] सतृणाभ्यवहारी

१ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४—भावकस्योपकुर्वाणा भावयित्री। सा हि कवे श्रममभिप्राय च भावयति। तया खलु फलित कवेर्व्यापारतरु।

२. काव्यमीमांसा अ० ४. पृ० १५—वाग्भावको भवेत्कश्चित्कश्चिद्हृदयभावकः। सात्विकैराङ्गिकैः कश्चिदनुभा वैश्च भावक.

३ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४—ते च द्विधा अरोचकिन सतृणाभ्यवहारिणश्च इति मगल.।

४. काव्यलकारसूत्र—वामन—१, २—इह खलु द्वे कवय सम्भवन्ति। अरोचकिन. सतृणाभ्यवहारिणश्चेति।

भावक साधारण कोटि का कहा जा सकता है। प्रतिभा एवं विवेक से हीन होने के कारण उसमें गुण और दोष को पहचानने की क्षमता नहीं होती। अत अनेक अनुपयुक्त तत्वों का ग्रहण तथा उपादेयों का त्याग उसके लिए सामान्य बात होती है। विवेक का उदय होते ही बुद्धि का परिष्कृत होना प्रारम्भ हो जाता है तथा वह कल्याणकारी मार्ग ग्रहण करती है। तीसरे प्रकार का भावक मत्सरी है। शोभनीय से शोभनीय काव्य भी उसे नही सुहाता। दूसरे के गुणों का वर्णन करने मे उसकी वाणी कुण्ठित हो जाती है। तत्वाभिनिवेशी भावक हजारो मे एक होता है। यह काव्य रचना के परिश्रम को जानता है, शब्दो की रचना-विधि को भलीभाँति पहचानता है, सुन्दर उक्तियों मे आह्लादित होता है और काव्य के तात्पर्य को भलीभाँति समझता है। सचमुच ऐसा आलोचक बड़े ही पुण्य प्रभाव से मिलता है।[1] भावक की महत्ता कविगण ही जानते हैं, अत. भावक काव्यसौन्दर्य का ग्रहण कर दिग्दिगन्त में उसका प्रचार करता है। पुस्तकविन्यस्त काव्यबन्ध घर-घर मे मिल सकते हैं किन्तु सच्चा काव्य वही है जो भावक के हृदयपट पर अंकित हो जाय। भावक कवि का स्वामी, मित्र, मन्त्री, शिष्य, आचार्य सभी होने की क्षमता रखता है। काव्य का रस-ग्रहण करते समय उसके चेहरे पर जो अलौकिक भाव मुद्रित होते हैं, उनका अनुभव करने में सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा भी समर्थ नहीं है।[2]

कवि और भावक . कवि का सम्बन्ध कारयित्री तथा भावक का भावयित्री प्रतिभा से है, तथापि दोनो प्रकार की प्रतिभा का निवास एक ही व्यक्ति मे हो सकता है या नही? इस विषय को लेकर विद्वानो मे मतभेद दिखाई देता है। राजशेखर ने प्राचीन आचार्यों का मत उद्धृत किया है जो कवि और भावक की एकता पर विश्वास रखते हैं।[3] वे (आचार्य) कहते है कि कवि ही भावनासक्षम है और

१ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १५—शब्दानां विविनक्ति गुम्फनविधीनामोदते सूक्तिभि । सान्द्रं लेढि रसामृतं विचिनुते तात्पर्यमुद्रा न य । पुण्य सघटते विवेक्तुविरहादन्तर्मुखं ताम्यता। केषामेव कदाचिदेव सुधिया काव्यश्रमज्ञो जनः।

२ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १५— नीयन्ते भावकैर्यस्य न निबन्धा दिशो दश। सन्ति पुस्तकविन्यस्ता काव्यबन्धा गृहे-गृहे। द्वित्रास्तु भावकमन शिलापट्टनिकुट्टिता। स्वामी मित्रं च मन्त्री च शिष्यश्चाचार्य एव च। कवेर्भवति हि चित्रं किं हि तद्यन्न भावक.। सत्काव्ये विक्रिया काश्चिद्-भावकस्योल्लसन्ति ता। सर्वाभिनयनिर्णीतो दृष्टा नाट्यसृजा न य.।

३ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३—'क पुनरनयोर्भेदो यत्कविर्भावयति भावकश्च' इत्याचार्या।

भावक ही काव्य को सफल बनाते है । अतः भावयित्री प्रतिभा से युक्त कवि कभी भी अधमदशा प्राप्त नही कर सकता—

> प्रतिभातारतम्येन प्रतिष्ठा भुवि भूरिधा
> भावकस्तु कविप्रायो न भजत्यधमा दशाम् ।[१]

कवि कुलगुरु कालिदास की अनुभूति इन आचार्यों के मत के नितान्त विपरीत है । वे कवित्व और भावकत्व का वास एक ही व्यक्ति मे मानने के पक्ष मे नहीं हैं ।[२] उन्होंने कहा है—

> तंसन्त. श्रोतुमर्हन्ति सद सद्व्यक्तिहेतव[३]

उनके विचार से सद् और असत् काव्य की अभिव्यक्ति के उत्तरदायी सन्त ही होते हैं—

> एक सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षामोऽन्य ।[४]

एक पत्थर सुवर्ण उत्पन्न करता है और दूसरा उसकी परीक्षा करता है । इसी प्रकार एक वचन-रचना मे समर्थ होता है तो दूसरा कविता के गुणदोषों की विवेचना मे ।

आचार्य राजशेखर कालिदास के विचारों से पूर्णतया सहमत है। वे कहते है कि स्वरूप-भेद तथा विषय-भेद होने से भावकत्व भिन्न है, कवित्व से पृथक् हैं ।[५] अतः वे एक व्यक्ति मे उभयमुखी कवित्व और भावकत्व-प्रतिभा का निवास अगीकार नही करते ।

काव्य पाक : राजशेखर के कथनानुसार निरन्तर अभ्यास से सुकवि का वाक्य परिपक्वता को प्राप्त करता है । इसे ही काव्य-पाक कहते हैं ।[६] पूर्वाचार्य मंगल के मत को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा है कि मगल की सम्मति मे 'सुपा तिङ्गा च श्रवेण एषा व्युत्पत्ति' अर्थात् सुप् और तिङ् के परिज्ञान से परिपक्वता आती है, इसे व्युत्पत्ति भी कहते हैं । आचार्यों का मत है कि पदनिवेशनिष्कम्पता ही पाक-सज्ञा धारण कर सकती है। इस सदर्भ मे यायावरीय ने आचार्य वामन के

---

१. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ १३ । २ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४ ।
३. रघुवंश १ १३ । ४. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४ ।
५. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३ ।
६ काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० २०—सततमभ्यासवशत सुकवे वाक्य पाकमायाति।

मत का उल्लेख किया है। वामन ने पदपरिवृत्ति असहिष्णुता को शब्दपाक कहा है।[1] राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी वामन के कथन को मानने के पक्ष में नहीं है। राजशेखर ने उनके मत का भी उल्लेख किया है। वे कहती हैं कि यह पाक नहीं, अपितु कवि की अशक्ति है, क्योंकि महाकवियों द्वारा एक ही वस्तु के विभिन्न शब्दों द्वारा किये गये वर्णन परिपक्व होते हैं। इसलिए रसानुरूप शब्दार्थों में की गयी पद-रचना ही पाक है। "इयमशक्तिर्न पुन पाक. इत्यवन्तिसुन्दरी।"[2] आचार्य राजशेखर अवन्तिसुन्दरी के कथन से सहमत हैं किन्तु पाक के निर्णय का कार्य वे सहृदय आलोचकों को सौंप देना चाहते हैं। उनका कथन है कि जहाँ पदों के परिवर्तन की आवश्यकता हो वह शब्दपाकवाला काव्य है। जहाँ रस अलंकार और गुणों का सुन्दर क्रम हो वह वाक्य-पाक है। काव्यपाक का लक्षण देने के उपरान्त उन्होंने उसे ९ भदों में विभिक्त किया है। ये समस्त भेद ग्राह्य नहीं हैं। अत सरसता के आधार पर इन ९ भेदों को तीन भागों में रख सकते हैं—

मधुर या सरस	सरस-नीरस	नीरस
मृद्वीका	बदर	पिचुमन्द
सहकार	तिन्तिडीक	वार्ताक
नारिकेल	त्रपुस	क्रमुक

स्पष्ट है कि नीरस होने के कारण पिचुमन्द, वार्ताक और क्रमुक पाक सर्वथा त्याज्य है। बदर, तिन्तिडीक और त्रपुस मध्यम होने के कारण संस्कार द्वारा परिमार्जित किये जा सकते हैं। मृद्वीका, सहकार और नारिकेल पाक-मधुर या सरस होने के कारण ग्राह्य हैं। आचार्य भामह और वामन ने भी पाक को दो भागों में विभिक्त किया है—सरस और नीरस के कथन पर वे हृद्य और अहृद्य का प्रयोग करते हैं। कपित्थपाक को वे अहृद्य मानते हैं। वामन सहकार पाक को श्लाघ्य एवं वार्ताक को गर्हणीय बताते हैं।

राजशेखर प्रथम आलंकारिक हैं जिन्होंने काव्य-पाक की इतनी विस्तृत रूप से चर्चा की है।

---

१ काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० २०—पदपरिवृत्तिवैमुख्यं पाक इति वामनीया। [partly illegible: ...पदन्यासपर्याय... सहिष्णुता... परिवृत्तिवैमुख्य पाक : इति वामनीया।]

२. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० २०—इयमशक्तिर्न पुन पाक इत्यवन्तिसुन्दरी। यदेकस्मिन्वस्तुनि महाकवीनामनेकोऽपि पाठ परिपाकवान्भवति। तस्मा-द्रसोचितशब्दार्थ—सूक्तिनिबन्धन पाक।

काव्य-हरण : काव्य की चोरी को काव्यहरण कहते हैं । कहा गया है—

'नास्त्यचोर कविजनो नास्त्यचोरो वणिग्जन.
स नन्दति विना वाच्य यो जानाति निगूहितुम् ।[1]

काव्य-रचना करने वाले कवि और क्रय-विक्रय करने वाले व्यापारी—ये दोनों चोर न हों—ऐसा सभव नही है । इन सब मे चौर्यवृत्ति न्यूनाधिक मात्रा मे पायी जाती है, किन्तु जो चोरी की वस्तु पर स्वप्रतिभा की छाप लगाकर उसे स्वरचित प्रमाणित करने मे समर्थ हो, वही प्रशसनीय है । दूसरे की काव्य-रचना मे प्रयुक्त किये गये शब्दों या अर्थों को अपनी रचना मे प्रयुक्त करने का नाम 'हरण' है । कतिपय विद्वान् हरण को ग्राह्य मानते हैं और कतिपय त्याज्य । स्वय राजशेखर की विदुषी पत्नी का मत है कि काव्य-रचना के सौन्दर्य एवं प्रतिष्ठा की वृद्धि के लिए कवि द्वारा शब्दहरण और अर्थहरण उचित है । उस कवि के पद, शब्द या अर्थ का हरण ग्राह्य हैं जो अप्रसिद्ध या अप्रतिष्ठित हो, दूसरी भाषा का हो या दूसरे देश का निवासी हो, जिसकी काव्य रचना अधिक सरस न हो या जिसके काव्य को जानने वाले सभी मर गये हो अथवा जिसके काव्य का मूल नष्ट हो गया हो । राजशेखर अवन्तिसुन्दरी से, सहमत नही हैं ।[2] श्लेषसहित तीन पदो तक के हरण को मान्यता देने वाले आचार्यों के प्रति असम्मति प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि यदि पद दो अर्थों वाला हो तो उसे ग्रहण करने मे दोष नही है, परन्तु द्वयर्थक पद को छोड़कर अन्य पद का हरण करना उचित नही । राजशेखर ने शब्द हरण के पाँच भेद बतलाये हैं—

(१) पदहरण, (२) पादहरण, (३) श्लोकार्द्धहरण, (४) वृत्तहरण तथा (५) प्रबन्धहरण ।

राजशेखर के अनुसार पद यदि दो अर्थोंवाला हो तो उसका हरण उचित है, अन्यथा नही । उदाहरणार्थ—

दूरादृष्टशिलीमुखव्यतिकरान्तो किं किरातानिमा
नाराद्व्यावृतपीतलोहितमुखान्किं वा पलाशानरि ।

---

१ काव्यमीमासा अ० ११ पृ० ६३ ।

२. काव्यमीमासा अ० ११ पृ० ५७—अप्रसिद्ध अप्रतिधिमानहम्, प्रथम-प्रतिष्ठ. प्रतिष्ठावानहम्, अप्रभ्रान्तमिदमस्य सविधानक प्रभ्रान्त मम, गुडूची वचनोऽय, मृद्वीकावचनोऽहम्, अनादृतभाषाविशेषोऽयमहमादृत-भाषाविशेष', प्रशान्तज्ञातृकमिद, देशान्तरितकर्तृकमिद उच्छिन्ननिबन्धन मूलमिद, म्लेच्छितककोऽशनिबन्धनमूलमिदमित्येवमादिभि: कारणै. शब्दहरणे अर्थहरणे चाभिरमेत इति अवन्तिसुन्दरी ।

> पान्थाः केसरिणं न पश्यत पुरोप्येनं वसन्ते वने
> मूढा रक्षत जीवितानि शरणं यात प्रिया देवताम् ।[1]

अर्थात् हे पथिको ! जिन्होंने शिलीमुखी (बाणो और भ्रमरो) के समूहों को दूर से ही खींच रखा है—ऐसे इन किरातों (भीलों और फूले हुए चिरायतों) को क्या तुम नहीं देख रहे हो ? तथा उन पलाशो (पलाश वृक्ष और राक्षसो) को भी नहीं देख रहे हो जिन्होंने अपने मुखो की पीतिमा और लालिमा प्रकट कर दी है । फिर क्या तुम सामने ही वन में खड़े केसरी (नागकेसर और सिंह) को भी नहीं देख रहे हो ? हे मूर्खो ! अपने-अपने प्राणों की रक्षा करो और अपनी प्रिय (इष्ट प्रिया) देवता की शरण में जाओ ।)

इस श्लोक मे शिलीमुख शब्द बाण और भ्रमर के लिए, किरात शब्द भीलों और चिरायता के वृक्ष के लिए, पलाश शब्द पलाशवृक्ष और राक्षसों के लिए, केसरी शब्द नागकेसर और सिंह के लिए तथा प्रिय शब्द इष्ट और प्रिया के लिए प्रयुक्त है । निम्नलिखित श्लोकों के निर्माता कवि ने उक्त चार श्लिष्ट पदो मे से शिलीमुख और किरात इन दो पदो का हरण किया है—

> मा गा पान्थ प्रियां त्यक्त्वा दूराकृष्टशिलीमुखम् ।
> किरात पान्थानमार्गरुधं किं किरातं न पश्यसि ।[2]

हे पथिक ! तुम अपनी प्रिया को छोड़कर कहीं न जाओ । क्या तुम शिलीमुखों (बाणों और भ्रमरों) को आकृष्ट करते तथा मार्ग को रोककर खड़े हुए इन किरातों (भीलों और चिरायते के वृक्षों) को नहीं देख रहे हो ? शिलीमुख और किरात इन दो पदों का हरण होने के कारण यह हरण त्याज्य है ।

राजशेखर ने श्लिष्ट पद के एक देश के हरण को मान्यता दी है ।

> नाश्चर्यं सदाचरिता यत्पुरीमिव मयि ।
> मामोत्सवोग दुर्जीत कामुकेनि जन ।[3]

(अपने का दुष्ट व्यक्ति के साथ सम्पर्क हो जाने के कारण उसने मुझसे प्रेम करना छोड़ दिया, इसमें आश्चर्य ही क्या ? सुधा से रहित व्यक्ति भोग का उपयोग क्यों करेगा?)

यहाँ सुधाहित पद श्लिष्ट है । एक—इसके दो अर्थ हैं । पहला प्रकार का हिन्दी इस अर्थ को अभिव्यक्त करता है (सुधा से रहित) तथा दूसरा

---

1 काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६ । २. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६ ।
३ काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५६ ।

क्षुद्र-रहित-क्षुधा से रहित अर्थ को व्यक्त करता है। उसी प्रकार मासोपयोग पद श्लेष युक्त है। मासोपयोग (माम् सोपयोग का अर्थ है मेरे लिए उपयोगी) तथा सधियक्त मासोपयोग शब्द का अर्थ है मास का उपयोग। उक्त श्लोक में दूसरे कवि ने मासोपयोग में से केवल मास शब्द ग्रहण किया है—

कोपान्मानिनि किं स्फुरत्यतितरां शोणाधरस्तेऽधरः
किं वा चुम्बनकारणाद्दयित नो कार्योविचारादयम्।
तस्मात्सुमु सुगन्धिमाहितरसं स्निग्धं मजस्वादरा-
न्मुग्धे मासरसं ब्रुवन्निति तया गाढं समालिङ्गितः॥[1]

अतः यह हरण ग्राह्य है।

राजशेखर ने यमक अलंकार द्वारा पूरे श्लेषयुक्त पाद के हरण को भी हरण का एक भेद माना है—यथा

हलमपारपयोनिधिविस्तृत
प्रहरता हलिना समराङ्गणे।
निजयशश्च शशाङ्ककरामल
निरवधीरितमाकुलमासुरम्॥[2]

इस उदाहरण में 'निरवधीरितमाकुलमासुरम्' पद व्याकुल दैत्य सेना को मर्यादा से च्युत करने या कँपा देने के अर्थ से प्रयुक्त है। अन्य कवि ने इस पद के द्वारा यमक अलंकार की सृष्टि की है—

दलयता विशिखैर्बलमुन्मद
निरवधीरितमाकुलमासुरम्।
दशसु दिक्षु च तेन यशः सितं
निरवधीरितमाकुलमासुरम्॥[3]

श्लोक के द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में प्रथम श्लोक के 'निरवधीरितमाकुलमासुरम्' पाद का यमकरूपेण हरण है। इसी प्रकार—

यस्या मुजङ्गवर्गं कर्णायतेक्षणम् कामिनीवदनं च।[4]

चरण के 'कर्णायतेक्षणम्' पाद का हरण अन्य कवि ने अपने इस श्लोक में किया है।

किं करोतिक्वियत्कालं वेश्यावेश्मनि कामुकः
कीदृशं वदनं वीक्ष्य तस्याः कर्णायतेक्षणम्॥[5]

---

१. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ४६। २. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ४६।
३. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ४६। ४–५. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ४७।

श्रवण-मात्र से कर्ता का स्मरण हो जाय) पाद का ही नहीं पादश: हरण भी उचित है।[1] भारवि के किरातार्जुनीय के तीसरे सर्ग का दसवाँ श्लोक—'इत्युक्तवानुक्ति विशेषरम्यम्' पदावली से प्रारम्भ होता है। यह श्लोक इतना प्रसिद्ध है कि अन्य कवि अपने श्लोक में इस समूचे पाद का हरण कर लें तो कोई भी बता सकेगा कि पादहरण कहाँ से किया गया है, अत इसे हरण नहीं कह सकते। किन्तु जहाँ कवि-प्रतिभा का व्यय हो, ऐसे उल्लेखनीय पद का हरण गर्हित कहलायेगा। यथा—

नम संसारनिर्वाण विषामृतविधायिने ।
सप्तलोकीविभङ्गाय, शंकरक्षीरसिन्धवे ॥[2]

इस श्लोक मे शंकर को क्षीरसागर कहा है तथा उन्हें संसाररूपी विष और मो रूपी अमृत का जनक माना है। इसे दूसरे कवि ने अपने निम्न श्लोक मे अपने नाम से प्रकाशित किया है—

प्रसरद्बिन्दुनादाय शुद्धामृतमयात्मने ।
नमोऽनन्तप्रकाशाय शंकरक्षीरसिन्धवे ।[3]

यहाँ श्लोक के 'शंकरक्षीरसिन्धवे' पद का हरण किया गया है। यह सर्वथा अनुचित है, क्योंकि पहले श्लोक के निर्माण मे कवि की प्रतिभा का व्यय हुआ है।

आचार्यों का कथन है कि किसी श्लोक मे यदि किसी एक पाद के ही विपरीत पद का कारण बताकर ग्रहण किया जाय तो वह हरण नहीं अपितु स्वीकरण कहलायेगा।[4]

त्यागाधिका. स्वर्गमुपाश्नुवन्ते
त्यागेन हीना नरक व्रजन्ति ।
न त्यागिना किंचिदसाध्यमस्ति
त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ति ।[5]

अपने उत्तम त्याग के कारण उत्कृष्ट व्यक्ति, स्वर्ग को प्राप्त करते है और *त्यागहीन व्यक्ति नरक को जाते है। त्यागियो के लिए असाध्य कुछ भी नहीं है।* त्याग से सभी प्रकार के कष्ट दूर होते हैं।

---

१ काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८। २. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८।
३ काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८। ४. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८।
५ काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ५८।

उपर्युक्त श्लोक के 'त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ति' चरण को अन्य कवि ने ग्रहण किया है किन्तु विपरीत बनाकर—

त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ती-
त्यलीकमेतद् भुवि सम्प्रतीतम् ।
जातानि सर्वव्यसना नि तस्या
स्त्यागेन मे मुग्धविलोचनायाः ॥[1]

यहाँ 'त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ति' चरण विपरीत अर्थ का साधक है । 'त्याग सब कष्टों को दूर करता है, यह बात लोक में मिथ्या हो चुकी है । क्योंकि उस सरल नेत्रोंवाली प्रियतमा के त्याग से ही तो मुझे सारे कष्ट झेलने पड़ रहे हैं ।' आचार्य इस प्रकार के हरण को ग्राह्य मानते हैं ।

अर्थ-प्रयोग द्वारा हरण : राजशेखर इस कथन से सहमत नहीं हैं, उन्होंने इसे भी हरण की कोटि में रखा है । इस हरण के उन्होंने कतिपय भेद बतलाये हैं ।

पादस्ते नरवर दक्षिणे समुद्रे
पादोऽन्यो हिमवति हेमकूटलग्ने

आक्रामत्यलघु महीतलं त्वयीत्थं
भूपालाः प्रणतिमपास्य किन्तु कुर्युः
आक्रामत्यलघु महीतलं त्वयीत्थं
भूपालाः प्रणतिमपास्य किन्तु कुर्युः

इत्थं ते विघृतपदद्वयस्य राज-
न्नन्यत्कर्थमिव सीवनी न भिन्ना

इसमें पूर्व श्लोक के उत्तरार्द्ध का हरण किया गया है ।

(२) **ग्रस्त-व्यस्त रूप से हरण :**

तत्तावदेव शशिनः स्फुरति महीयो
यावन्न तिग्मरुचिमण्डलमभ्युदेति ।
यावन्नकिंचिदपि गौरतराहमन्ति
अभ्युद्गते सकलधामनिधातु
तस्मिन्नताभि पुनर्विहसताननपङ्कजाभि ।
इन्दो शिलाभरतलस्य च को विशेष ।

यहाँ पहले श्लोक के प्रथम और चतुर्थ पाद का हरण किया है ।

(३) एक ही पाद में परिवर्तन करके दूसरे छन्द का निर्माण भी हरण अन्तर्गत है—

अरण्ये निर्जने रात्रावन्तर्वेश्मनि साहसे
न्यासापह्नवने चैव दिव्या सम्भवति क्रिया ॥

1. काव्यमीमांसा अ० 11 पृ० 58 ।

निम्न श्लोकार्ध में ऊपर के उत्तरार्ध का हरण किया गया है—

तन्वङ्गी यदि लभ्येत दिव्या सम्भवति त्रिया ।

(४) पादत्रय का हरण : इसमें तीन पाद यथास्थान रखकर एक पाद को हटाकर एक नया पाद जोड दिया जाता है यथा—

यस्य केशेषु जीमूता नद्य. सर्वाङ्गसन्धिषु ।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मनेनम ॥

इस श्लोक के तीन पाद लेकर—

यस्य केशेषु जीमूता नद्य सर्वाङ्ग सन्धिषु ।
कुक्षा समुद्रा श्चत्वार स सहेत स्मरानलम् ॥

इस श्लोक की रचना की गई है । इसमे तस्य तोयात्मने नम :स पद को हटाकर और स सहेत स्मारनलम्' यह एक पद जोड दिया गया है ।

हरण में भी कवित्वः—

किमिह किमपि दृष्ट' स्थानमस्ति श्रुतं वा
व्रजति दिनकरोऽय यत्र नास्तं कदाचित्
भ्रमति विहगसार्थानित्थमा पृच्छमानो
रजनिविरहभीतश्चक्रवाको वराक ॥१॥

जयति मितविलोलव्यालयज्ञो पवीती ।
घनकपिल जटान्तभ्रान्तिगंगाजलौघ
अविदित मृगचिन्हा सिन्दुलेखा दधान
परिणतशितिकण्ठश्यामकण्ठ पिनाकी ॥२॥

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्ड
त्यजति मदमुलूकः प्रीतिमाश्चक्रवाक
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्त
हतविधिललितानां हि विचित्रो विपाकः ॥३॥

किमिह किमपि दृष्ट स्थानमस्ति श्रुत वा
घनकपिल जटान्तर्भ्रान्तिगगाजलौघ ।
निवसति स पिनाकी यत्र याया तदस्मिन्
हतविधिलजिताना हि विचित्रो विपाकः ॥४॥

यहाँ कवि ने चौथे उदाहरण में प्रथम श्लोक का प्रथम, दूसरे का दूसरा, तीसरे का चौथा चरण लिया है। केवल तीसरा चरण निजी प्रतिभा से निर्मित किया है। अत यह हरण नहीं कवित्व है।

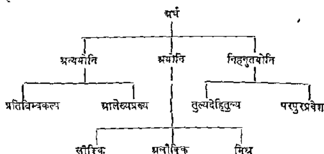
(२) या व्यापारवती रसान् रसयितु काचित्कवीना नवा
दृष्टिर्या परिनिष्ठितार्थविषयोन्मेषा च वैपश्चिती
ते द्वे अप्यवलम्ब्य विश्वमनिश निर्वर्णयन्तो वयं
श्रान्ता नैव च लब्धमब्धिशयन त्वद्भक्तितुल्य सुखम्।
लब्धमुत्पलदृशा प्रेम्ण समान सुखम्,

अब्धिशयन, त्वद्भक्तितुल्यमुखम् के स्थान पर उत्पलदृशा प्रेम्ण समान सुखम् जोड़ देने से यह भक्ति रसात्मक रचना शृगाररमयी हो गयी है।

(३) अमहकलहसितत्वात्क्षालितानीव कान्त्या
मुकुलितनयनत्वादव्यक्तकर्णोत्पलानि ।
पिबति (पिबतु) मधुसुगन्धीन्याननानि प्रियाणा
त्वयि (मयि) विनिहितभार कुन्तलानामधीश ।।

इस श्लोक के तृतीय चरण में पिबति के स्थान पिबतु तथा चतुर्थ चरण में त्वयि के स्थान पर 'मयि' कर देने से श्लोक प्रार्थनापरक हो गया है।

शब्दहरण की विवेचना करने के पश्चात् आचार्य अर्थहरण के भेद बतलाते हैं —



अर्थ तीन भागों में बटा है। अन्ययोनि, निह्नुतयोनि तथा अयोनि—अन्ययोनि तथा निह्नुतयोनि। प्रत्येक के दो स्थूल भेद है, जिन्हें क्रमश प्रतिबिम्बकल्प, आलेख्य-प्रख्य, तुल्यदेहितुल्य एव परपुरप्रवेश कहा गया है। इन चारों में प्रत्येक के आठ

भेदयुक्त होने के कारण अन्ययोनि तथा निह्नुतयोनि अर्थ ३२ उपभेदों मे विभक्त दिखाई देता है । निम्नतालिका मे ३२ भेदो के नाम दिये हैं —

अर्थ

अन्ययोनि		निह्नुतयोनि	
प्रतिबिम्बकल्प	आलेख्यप्रख्य	तुल्यदेहितुल्य	परपुरप्रवेश
व्यस्तक	समक्रम	विषयपरिवर्त	द्वन्द्वक
खण्ड	विभूषणमोष	द्वन्द्वविच्छिति	प्रतिकञ्चुक
तैलबिन्दु	व्युत्क्रम	रत्नमाला	वस्तुसचार
नटनेपथ्य	विशेषोक्ति	सख्योल्लेख	धातुवाद
छन्दोविनिमय	उत्तस	चुलिका	सत्कार
हेतुव्यत्यय	नटनेपथ्य	विधानापहार	जीवजीवक
सक्रान्तक	एकपरिकार्य	माणिक्यपुज	भावमुद्रा
सम्पुट	प्रत्यापत्ति	कन्द	तद्विरोधी

अन्योन्ययोनि के प्रथम भेद, प्रतिबिम्बकल्प का लक्षण है—

अर्थ स एव सर्वो वाक्यान्तरविरचनापर यत्र
तदपरमार्थविभेद काव्य प्रतिबिम्बकल्प स्यात् ॥[1]

जिस रचना मे किसी प्राचीन कवि का सारा अर्थ ले लिया गया हो । भेद केवल वाक्य विन्यास मे हो, कोई तात्विक-भेद न हो उसे प्रतिबिम्बकल्प कहते है ।

दूसरे काव्य का प्रतिबिम्ब होने से यह हरण सर्वथा त्याज्य है । इसके आठ भेद हैं—

(१) जिसमे पूर्व श्लोक के क्रम को बदल लिया जाय, अथवा श्लोक के पौर्वापर्य का विपर्यय कर दिया जाय उसे व्यस्तक कहते है ।
(२) विस्तृत अर्थ के खण्ड का प्रणयन खण्ड माना जाता है ।
(३) सक्षिप्त अर्थ को विस्तारपूर्वक वर्णित करना तैलबिन्दु है ।
(४) दूसरी भाषा की रचना का भाषान्तर करना नटनेपथ्य प्रकार कहा जाता है ।

१. काव्यमीमासा अ० १२ पृ० ६३ ।

(५) छन्द की परिवृत्ति छन्दोविनिमय भेद का निर्माण करती है ।
(६) कारण की परावृत्ति का ही नामान्तर हेतु-व्यत्यय है ।
(७) दृष्टि पदार्थ के धर्मों का दूसरे पदार्थ मे सक्रमण सक्रान्तक है ।
(८) दो पद्यों का अर्थ जहाँ मिश्रित किया जाय वह सकान्तक कहलाता है ।

अन्ययोनि अर्थ का दूसरा भेद आलेख्यप्रख्य है। यह प्राचीन काव्य से भिन्न न होने पर भी अनेक नवीन सामग्री से सस्कार युक्त होने के कारण ग्राह्य है यथा—

> कियतापि यत्र सस्कारकर्मणा वस्तु भिन्नवद् भाति
> तत कथितमर्थचतुरैरालेख्यप्रख्यमिति काव्यम् ।[1]

जहाँ प्राचीन कवि द्वारा प्रयुक्त वस्तु कुछ सस्कार कर देने से भिन्न प्रतीत हो उसे आलेख्यप्रख्य कहते हैं । इस आलेख्यप्रख्य के भी आठ भेद है—(१) सदृश उच्चारण समक्रम कहलाता है, (२) अलकृत उक्ति को अलकृत कर वर्णित करना विभूषणमोष है, (३) क्रम को विपरीत कर वर्णन करना व्युत्क्रम कहलाता है, (४) सामान्य को विशेष रूप मे कहना विशेषोक्ति कहलाता है, (५) गौण भाव को प्रधानता से कहना उत्तसभेद है, (६) प्रस्तुत को अन्ययारूप मे कहना नटनेपथ्य है, (७) जो कारण सामग्री प्राचीन उक्ति मे कही गई हो उसी सामग्री को किसी भिन्न कार्य के विषय मे कहना एकपरिकार्य है तथा (८) विकृत रूप से कही गई बात प्रकृत रूप मे कहना प्रत्यापत्ति कहलाता है । ये समस्त भेद अर्थ की समता होने पर भी वैचित्र्य उत्पन्न करते हैं ।

निह्नुतयोनि के दो भेद है—तुल्यदेहितुल्य तथा परपुरप्रवेश ।

तुल्यदेहितुल्य वह भेद है जिसमें शरीर की पृथकता होने पर भी दोनों उक्तियों की आत्मा एक समान ही रहती है । इसके भेद निम्न हैं—

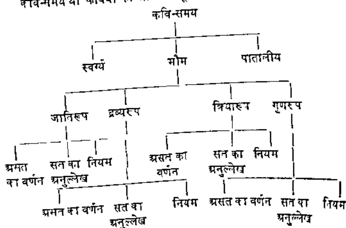
(१) विषय में विषयान्तर मिलाकर उसका स्वरूपान्तर कर देना विषयपरिवर्तन, (२) दो प्रकार से किये गये वर्णन को एक रूप मे ही कहना द्वन्द्वविच्छित्ति, (३) पूर्व अर्थों का अर्थान्तरों के द्वारा परिवर्तन रत्नमाला, (४) सकल वैधम्य के द्वारा अर्थ का प्रणयन सख्योल्लेख, (५) सम का विषम द्वारा अथवा विषम का सम द्वारा वर्णन चूलिका, (६) निषेध का विधि रूप में वर्णन विधानापहार (७) बहुत अर्थों का एकत्र उपसहार माणिक्यपुञ्ज तथा समष्टि का व्यष्टि रूप से वर्णन करना कन्द कहलाता है ।

---

१ काव्यमीमांसा अ० १२ पृ० ६२ ।

काव्यालङ्कारसूत्र में पाया जाता है जिसमें पुनरुक्ति, परित्याग, सन्धिनित्यता, लघु-गुरु भाव, पादादि में खलु आदि का निषेध, बहुव्रीहिपरक कर्मधारय का निषेध, नञ् का प्रयोग, विशेषण का प्रयोग, सर्वनाम से समानगत का परामर्श परम्परा-सम्बन्धपरक षष्ठी, देशज पदों का प्रयोग, प्रचलित लिङ्ग और अध्याहार, प्रचलित लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग, लक्षण प्राचुर्य का निषेध एवं जाति-व्यक्ति के भेदाभेद का विवेचन किया है। वामन के पूर्ववर्ती आचार्य भामह और दण्डी ने काव्य-समय का प्रयोग नहीं किया किन्तु आचार्य भामह ने स्पष्ट रूप से दोष प्रकरण में देश, काल, कला, न्याय और आगम विरोधी तथा प्रतिज्ञा हेतु और दृष्टान्त से हीन वर्णन की दोषों में गणना की है। आचार्य दण्डी ने भी देश-काल-कला-लोक-न्यायगत विरोधी अर्थ को दोष रूप में मान्यता दी है। आचार्य वामन ने लोक-विरुद्ध और विद्या-विरुद्ध वाक्य और वाक्यार्थ को शुद्ध कहा है। संक्षेप में पूर्ववर्ती आचार्य शास्त्र और लोक से रहित, बातों के उल्लेख को दोष मानते हैं। ऐसी दोषयुक्त वस्तु का उल्लेख वे उचित नहीं समझते थे। यायावरीय राजशेखर कहते हैं कि इसके द्वारा कवियों का उपकार होता है। यह काव्यमार्ग का प्रदर्शक है। अतः यह दोष नहीं है।

कवि-समय या कवियों का आचार स्थूल रूप से तीन प्रकार का है—



भौम कवि-समय १२ प्रकार का है जिसका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है।

असत् का वर्णन : जो पदार्थशास्त्र में या लोक में देखा या सुना न गया हो काव्य-रचना में उसका उल्लेख करना असत् का निबन्धन है। जाति, द्रव्य, क्रिया और गुणानुसार यह चार प्रकार का है।

जातिगत : नदियों में कमल कुमुद आदि का वर्णन, सभी जलाशयों में हंस सारस आदि पक्षियों का वर्णन, सभी पर्वतों में सुवर्ण रत्न आदि की खानों का वर्णन जातिगत असत् वर्णन के अन्तर्गत आता है। कालिदास ने मेघदूत में शिप्रा नदी के प्रवाह में हंस और कमल का वर्णन किया है। कवि-समय के अन्तर्गत ही यह माना जा सकता है अन्यथा नदी प्रवाह में हंस कमल आदि कैसे हो सकते हैं।

द्रव्यगत : अन्धेरे को मुष्टि से ग्रहण करने योग्य या सूची से भेदन करने योग्य कहकर वर्णन करना, चाँदनी का घड़ों में भरा जाना आदि द्रव्यगत असत् के वर्णन कवि-समय के अन्तर्गत आते हैं। राजशेखर ने विद्धशालभंजिका में अन्धकार के सूचिभेद्य होने तथा चन्द्रिका के घड़े में भरने योग्य होने का वर्णन किया है।

रात्रि में चकवा-चकवी का जलाशय के भिन्न-भिन्न तटों पर पृथक् रहना, चकोरों का चन्द्रिकापान करना क्रियागत असत् अर्थ के उदाहरण हैं।

गुणगत : यश का श्वेत एवं अयश का कृष्ण होना, अनुराग की रक्तवर्णता और क्रोध की श्यामवर्णता गुणगत असत् के उदाहरण हैं।

सत् का अनुल्लेख : लौकिक जगत में विद्यमान, दृश्य वस्तुओं का कवि जगत् में उल्लेख न करना, सत का अनुल्लेख कहलाता है। यह भी जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया के भेदानुसार चार प्रकार का है—

जातिगत अनुल्लेख : (१) वसन्त में मालती का अनुल्लेख (२) चन्दन-वृक्ष का पुष्परहित होना, (३) अशोक के फलों का वर्णन न करना आदि।

द्रव्यगत अनुल्लेख : (१) कृष्णपक्ष में चाँदनी का वर्णन न करना, (२) *शुक्लपक्ष को अन्धकार हीन बताना आदि।*

क्रियागत अनुल्लेख : (१) दिन में कमलों का विकास न होना, (२) रात्रि में शेफालिका के कुसुमों का डाल से न गिरना आदि।

गुणगत अनुल्लेख : (१) कुन्दकलिका एवं कामिनियों के दाँतों का रक्तवर्ण, (२) कमल-कलिका का हरितवर्ण तथा (३) प्रियगु पुष्पों का पीतवर्ण आता है।

उपर्युक्त वर्णनों से सत् के अनुल्लेख की प्रतीति होती है।

नियम : राजशेखर ने कवि-समय का तीसरा आधार "नियम" बतलाया है। नियम से तात्पर्य है—किसी वस्तु का किसी विशेष स्थान के प्रसंग में ही वर्णन करना। और उसके अन्यत्र मिलने पर भी उस विशिष्ट स्थान के प्रसंग

"कवि-समय" का विवेचन भी इसी प्रसग मे वर्णित है । इस प्रकार कवियो के लिए उपकारक समस्त विषयो का विवेचन इस 'कवि शिक्षा सम्प्रदाय' मे उपलब्ध है ।

काव्य-शास्त्रीय सम्प्रदाय एवं राजशेखर

रस-सम्प्रदाय एवं राजशेखर : नाट्याचार्य भरत रस-सम्प्रदाय के प्रणेता माने जाते हैं । उन्होंने रस को नाटक का प्राण स्वीकार किया है । उनके अनुसार नाटक का प्रयोजन चार प्रकार के अभिनयों द्वारा प्रेक्षको मे रस उत्पन्न करना है । इस प्रकार भरत ने रस का विवेचन नाटक के सदर्भ मे ही किया है, प्रमुख विवेच्य के रूप मे नही ।

आचार्य अभिनव गुप्त भरत से पूर्णतया सहमत हैं । जिस प्रकार माला सूत्र मे पिरोयी रहती है, उसी प्रकार नाट्यकृति रस में अनुविद्ध रहती है ।[1] इस प्रकार भरत और अभिनव गुप्त के रस-सिद्धात प्रमुखत नाट्यशास्त्र से और गौण रूप मे काव्यशास्त्र से सम्बन्धित है ।

राजशेखर ने काव्यमीमासा के प्रथम अध्याय मे भरत को रूपक-निरूपणकर्त्ता तथा नन्दिकेश्वर को रस का आद्याचार्य कहा है । नन्दिकेश्वर के नाम से यद्यपि कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही है, तथापि वात्स्यायन के कामसूत्र से पता चलता है कि वे महादेव के अनुयायी थे, तथा उन्होने एक हजार अध्यायो मे कामशास्त्र की रचना की थी । सम्भवत इन्होंने प्रमुखत शृगार रस का ही प्रतिपादन किया होगा, जो आगे चलकर नाट्याचार्य भरत के द्वारा विशेष रूप से विवेचित हुआ ।

आचार्य अभिनव गुप्त ने नन्दिकेश्वर द्वारा वर्णित रोचित अलकार पर एक पद्य उद्धृत किया है ।[2] शायद उन्हें भी नन्दिकेश्वर की कोई कृति उपलब्ध न हो सकी थी । शारदातनय के भाव-प्रकाशन के तृतीय अध्याय मे उल्लेख है *कि नन्दिकेश्वर ने भरत को नाट्य की शिक्षा दी और उन्हें आदेश दिया कि वे* अन्य भरतो को प्रशिक्षित करें । प्राध्यापक मनमोहन घोष ने अभिनव-दर्पण नामक ग्रन्थ का ३२४ पद्यो मे सम्पादन किया । उन्होने नन्दिकेश्वर को अभिनव दर्पण का रचयिता बताया है । इस ग्रन्थ मे भरत के अनेक सिद्धान्तो का उल्लेख है । कहीं-कहीं भरत से भिन्नता भी दिखाई देती है । अत उल्लेखो के आधार पर *यह रचना भरत के पश्चात् प्रतीत होती है ।* इसी सन्दर्भ मे भरतार्णव नामक

---

१ एक एव तावत्परमार्थतोरस सूत्रस्थानीयत्वेन रूपके प्रतिभाति–अभिनव भारती, भाग १ पृष्ठ २७३ ।

२. अभिनवभारती, गायकवाड ओरियण्टल सीरीज—खण्ड १ पृ० १७१ ।

ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। जिससे ज्ञात होता है कि सुमति नामक किसी विद्वान ने नन्दिकेश्वर का सारांश लेकर भरतार्णव ग्रन्थ की रचना की थी।[1] संगीत रत्नाकार मे नाट्य से सबन्धित अनेक देवताओ, मुनियो तथा विद्वानो का उल्लेख है। उसमे नन्दिकेश्वर का नाम भी है।[2]

वात्स्यायन, अभिनव गुप्त एव प्रो० मनमोहन घोष के कथन तथा भरतार्णव एवं संगीत-रत्नाकार के साक्ष्य से नन्दिकेश्वर का आचार्यत्व तथा उनका रसाविष्कर्ता होना निस्सन्देह सिद्ध होता है। राजशेखर भी नन्दिकेश्वर को आदि रसाचार्य मानते हैं। अत नन्दिकेश्वर को रसाचार्य मानना समीचीन होगा। दुर्भाग्यवश यह नन्दिकेश्वर का काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ, काल के गर्त मे लीन हो गया।

आचार्य राजशेखर की रस-सिद्धान्त विषयक मान्यतायें यथोलिखित हैं—

१ रस काव्य की आत्मा है।

२ काव्य मे सरस अर्थ का निबन्धन होना आवश्यक है, नीरस का नही।

३ सरसता या नीरसता वस्तुनिष्ठ नही है, व्यक्तिनिष्ठ है।

काव्यमीमासा के कवि-रहस्य अधिकरण के तीसरे अध्याय मे राजशेखर ने काव्यपुरुष के सजीव वर्णन के माध्यम से रस को काव्य की आत्मा सिद्ध किया है—'शब्दार्थौ ते शरीर, सस्कृत मुख, प्राकृत बाहु, जघनमपभ्रश पैशाच पादौ, उरो मिश्रम्। सम. प्रसन्नो मधुर ओजस्वीचासि। उक्तिचरण च ते वचो, रस आत्मा, रोमाणि छन्दासि, प्रश्नोत्तरप्रवह्लिकादि च वाक्केलि अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलकुर्वन्ति।[3] भविष्यतोऽर्थस्याभिधात्री श्रुतिरपि भवन्तमधिस्तौति।' राजशेखर से पूर्व भी काव्य की आत्मा का निर्णय अनेक सम्प्रदायों द्वारा किया गया, किन्तु पूर्ववर्ती आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा के रूप मे मान्यता नही दी थी। आचार्य राजशेखर उन आचार्यो मे से हैं जिन्होंने काव्य के प्राणविधायक के रूप मे रस को अङ्गीकार किया।

राजशेखर के चार शताब्दी पश्चात् कविराज विश्वनाथ ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" लिखकर राजशेखर के मत को ही पुष्ट किया। अलकारशेखरकार को भी यह विचार मान्य था—'अलकारस्तु शोभाया रस आत्मात्र परे मन.'

१ काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० पी० वी० काणे—पृ० २, ३।
२ संगीत रत्नाकर—१-१५, १९।
३ काव्यमीमासा अ० ३ पृ० ६।

अग्निपुराणकार ने भी रस को ही काव्य का जीवन माना है—"वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ।"

राजशेखर ने अर्थव्याप्ति नामक अध्याय मे आचार्य आपराजिति का उदाहरण देकर रस की महत्ता का पुनः प्रतिपादन किया है । वे कहते है—'अस्तु नाम निःसीमार्थसार्थः किन्तु रसवत् एव निबन्धो युक्तो न नीरसस्य । अर्थ समूह भले ही असीम हो, किन्तु निबन्ध (काव्य) मे सरस अर्थ का होना अत्यावश्यक है, नीरस का नही ।

भौतिक जीवन के पदार्थ स्वरूपतः रमणीय दिखाई देते हैं, किन्तु उनके वर्णन मे रसानुकूलता अवश्य होनी चाहिये । रसानुकूलता का तात्पर्य रसातिशयोक्ति से नही है और न असमीचीन रसाभिव्यक्ति से । लोल्लट भट्ट इस प्रसग मे अपना विचार प्रगट करते हुए कहते हैं कि मज्जन (जलक्रीडा) पुष्पावचय, सन्ध्या, चन्द्रोदय आदि का वर्णन सरस होने पर भी अधिक मात्रा मे तथा प्रस्तुत प्रसग एव रस के विरुद्ध नही होना चाहिए । कविगण नदी, पर्वत, समुद्र, नगर, घोडे, हाथी, रथ आदि के वर्णनो मे जो प्रयास करते हैं, वह उनकी कवित्व शक्ति का द्योतक मात्र है । सुधीजन उसे उचित नही समझते ।[1] आचार्य लोल्लट के इस कथन से राजशेखर ने—'आम् इति यायावरीयः' कहकर अपनी सहमति प्रगट की है । अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे कहते है—"अस्ति चानुभूयमानो रसस्यानुगुणो-विगुणश्चार्थः । काव्येषु कविवचनानि रसयन्ति विरसयन्ति च, नार्थाः । अन्वयव्यतिरेकाभ्या च इदमुपलभ्यते ।" अनुभव द्वारा यह सिद्ध है कि कोई अर्थ रस के अनुकूल होता है और कोई उसके प्रतिकूल, किन्तु काव्य में अर्थ सरसता या नीरसता उत्पन्न नही करता, रसाविष्कर्ता तो वास्तव मे उसका कवि होता है, उसके वचन होते हैं । उदाहरणार्थः निम्नोक्त नदी वर्णन मे रसवत्ता की सुन्दर अभिव्यक्ति हो रही है,—

एता विलोक्य तलोदरि ताम्रपर्णी-
मम्भोनिधौ विवृतशुक्तिपुटोद्धृतानि ।
यस्याः पयासि परिणाहिषु हारमूर्त्या-
वामभ्रुवां परिणमन्ति पयोधरेषु ॥[2]

१. काव्य मीमासा-अ०९ मज्जनपुष्पावचयन-सन्ध्या-चन्द्रोदयादिवाक्यमिह नातिबहुलं प्रकृतरसानन्वितं रचयेत् । यस्तु सरिदद्रिसागरपुरतुरगरथ दिवर्णने यत्न, कविशक्तिख्यातिफलो सुधियां नो मतः स इह ॥

२. काव्यमीमासा-अध्याय ९ पृ० ४५ ३ काव्यमीमासा-अध्याय ९ पृ० ४५

हे इन्दीवरि! समुद्र में मिलती हुई इस ताम्रपर्णी नदी को देखो। मोतियों के सम्पुट में निकाले गये जिसके जल-कण, सुन्दरियों के विशाल स्तन-तटों पर मोतियों के हार के रूप में शोभा पाते हैं।

यहाँ कवि ने अपनी प्रतिभा द्वारा सुन्दरियों के पयोधरों पर सुशोभित जल-बिन्दुओं को हार के रूप में परिणत कर उद्दीपन विभाव प्रदर्शित किया है।

राजशेखर ने रसानुभूति के इस प्रसग द्वारा भारतीय रस-शास्त्र के जिस महत्वपूर्ण तत्व का आविष्करण किया है वह है प्रकृति के रमणीय दृश्यों के वर्णन में मानव-भावना के सम्पर्क द्वारा रसोत्पत्ति। वस्तु का सौन्दर्य तभी निखर सकता है, जब भाव-सौन्दर्य से उसका मार्जन किया जाय।

राजशेखर ने रस की व्यक्तिसापेक्षता का भी विशुद्ध विवेचन किया है और इस प्रसग में उन्होंने जैन आचार्य पाल्यकीर्ति एवं अवन्तिसुन्दरी के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

आचार्य पाल्यकीर्ति का मत है कि "यथा तथा वास्तु वस्तुनोरूपम् वक्तृप्रकृति विशेषायत्ता तु रसवत्ता। तथा च यमर्थं रक्तः स्तौति त विरक्तो विनिन्दति मध्यस्थस्तु तत्रोदास्ते।"[1] वस्तु का रूप चाहे जैसा भी हो, सरसता तो कवि की प्रकृति के आधार पर ही होती है। यदि कवि का मन सरस है तो नीरस वस्तु भी सरस हो जाती है और यदि उसका मन ही नीरस हो तो सरस वस्तु भी नीरस प्रतीत होती है। अनुरक्त व्यक्ति जिस वस्तु की स्तुति करता है विरक्त व्यक्ति उसी की निन्दा करता है और मध्यस्थ व्यक्ति उस सम्बन्ध से उदासीन रहता है।

तीन प्रकृतियों के तीन व्यक्ति चन्द्र के प्रति अपना भाव प्रगट करते हैं। जिसे प्रियतमा का सान्निध्य प्राप्त है, उसे चन्द्रमा शीतल प्रतीत होता है। विरही मनुष्य को वही चन्द्रमा अगार की भाँति दाहक लगता है, सयोग-वियोग की भावना से निरपेक्ष व्यक्ति के लिए चन्द्रमा न सुखद है न दुःखद न उष्ण है न शीत। उसके लिए वह शीशे के समान शोभित हो रहा है।

> येषा वल्लभया समक्षणमिव स्फारक्षपा क्षीयते
> तेषा शीततर शशी विरहिणामुल्केव सन्तापकृत्।
> अस्माक न तु वल्लभा न विरहस्तेनोभय भ्रशिना–
> मिन्दु राजति दर्पणाकृतिरय नोष्णो न वा शीतल ॥[2]

---

1 काव्यमीमासा अ० ९ पृ० ४६। 2 काव्यमीमासा अ० ९ पृ० ४६।

इन्होंने रस का अन्तर्भाव रसवत् अलकारों में किया । भामह का कथन है—'न कान्तमपि निर्भूषविभाति वनितामुखम्'[1] रमणी का सुन्दर मुख भी आभूषण रहित होने पर शोभित नही होता वैसे ही अलकार-विहीन काव्य रुचिकर नहीं माना जा सकता । यह वक्रोक्ति है, जो काव्यों में प्राणों का सचार करती है ।[2]

राजशेखर के समय तक अलकार सम्प्रदाय का पूर्ण विकास हो चुका था । राजशेखर उसके महत्व से पूर्ण परिचित थे । यहाँ सम्प्रदाय के विषय मे उनकी मान्यताओं का निर्देश किया जा रहा है ।

(१) 'उपकारकत्वादलकार सप्तमङगम् इति यायावरीय ।'[3]

अलकार शास्त्र वेदो के छ अगो के समान उनका सातवाँ अग है ।

(२) आनुप्रासिक प्रचेता, यमो यमकानि, चित्र चित्रागद, शब्दश्लेष शेष वास्तव पुलस्त्य, औपम्यमौपकायन, अतिशय पाराशर, अर्थश्लेषमुतथ्य ।[4]

अनुप्रास, यमक, चित्र शब्दश्लेष, वास्तव, औपम्य, अतिशय तथा अर्थश्लेष क्रमश प्रचेता, यम, चित्रागद शेष पुलस्त्य, औपकायन, पाराशर तथा उतथ्य द्वारा प्रतिपादित किये गये है ।

(३) अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलकुर्वन्ति ।[5]

काव्य को अनुप्रास उपमा आदि अलकार अलकृत करते है ।

(४) काव्य-कवि की आठ श्रेणियाँ है । अलकार-कवि उनमे से एक है । अलकार के शब्द और अर्थ-भेद से द्विविध होने के कारण अलकार-कवि भी दो प्रकार के होते है ।

(५) गुणवदलकृतञ्च वाक्यमेव काव्यम्[6] —गुण और अलकारो से युक्त वाक्य ही काव्य कहलाता है ।

वेद के शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छ अग हैं । राजशेखर ने अलकार को सातवाँ वेदाग कहा है और काव्य मे ही नहीं अपितु शास्त्र में भी इसकी अनिवार्यता सिद्ध की है । पूर्ववर्ती आचार्य भामह दण्डी, उद्भट और रुद्रट अलकारों को महत्व देते है । उनके महत्व का क्षेत्र काव्य तक ही सीमित है।

---

१ काव्यमीमासा अ० ९ पृ० ८६ सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते-यत्नोऽस्या कविना कार्य कोऽलकारोऽनया विना २।८५। २ काव्यमीमासा अ० २ पृ० ३। ३ काव्यमीमासा अ० १ पृ० १। ४ काव्यमीमासा अ० २ पृ० ३। ५ काव्यमीमासा अ० ६ पृ० २४। ६ (उपमा रूपक चैव दीपक यमक तथा काव्यस्यैतेह्यलङ्काराश्चत्वार परिकीर्तिता —नाट्यशास्त्र १६ ४३।

राजशेखर की दृष्टि काव्य पर ही जाकर नहीं रुकी। वे सम्पूर्ण वाङ्मय में अलंकार की प्रभुता को स्वीकार करते हैं। अलंकार क्षेत्र में उनकी यह मौलिक स्थापना है। नाट्यशास्त्र में उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक इन चार अलंकारों का ही वर्णन है।[1]

आचार्य भरत द्वारा निर्दिष्ट चार अलंकारों में प्रथम तीन उपमा रूपक और दीपक अर्थालंकार की श्रेणी में आ सकते हैं। यमक शब्दालंकार है। भरत ने अलंकारों का शब्दालंकार और अर्थालंकार यह वर्गीकरण नहीं किया।

आचार्य भामह ने अड़तीस अलंकारों का वर्णन किया है। किन्तु उन्होंने भी शब्द-मूलक एवं अर्थ-मूलक अलंकारों का विभाजन नहीं किया। वामन के ग्रन्थ में दो शब्दालंकारों तथा इकत्तीस अर्थालंकारों का स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। दो इन्होंने अलंकारों को शब्द और अर्थ के भेद के अनुसार वर्गीकृत किया।[2] पश्चात्वर्ती आलंकारिकों ने इनमें दो को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है।

भट्ट, उद्भट ने अलंकारों की संख्या ४१ बतायी है। इन्होंने पुनरुक्त-वदाभास, काव्यलिङ्ग, छेकानुप्रास, दृष्टान्त और संकर इन पाँच नवीन अलंकारों की स्थापना की। ये पाँचों अलंकार, भामह और दण्डी के ग्रन्थों में नहीं पाये जाते हैं।

अलंकार क्षेत्र में रुद्रट का नाम महत्वपूर्ण है। पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा से हटकर इन्होंने वैज्ञानिक आधार पर अलंकारों का विभाजन करने का प्रयास किया है। इनके अलंकार के चार विभाजन-आधार हैं—वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष, जिनकी संख्या क्रमशः २३, २१, १२ और १० है। इन्होंने कतिपय अलंकारों को नवीन नाम दिया है। जैसे भामह वर्णित व्याज-स्तुति को व्याज श्लेष स्वभावोक्ति को जाति, और उदात्त को अवसर। रुद्रट ने कतिपय नवीन अलंकारों का भी निर्देश किया—वे हैं (१) मत, (२) साम्य, (३) पिहित और (४) भाव।

कवि रहस्य नामक अधिकरण के प्रथम अध्याय में राजशेखर ने कुछ अलंकारों तथा उनके प्रतिपादनकर्त्ताओं के नाम दिये हैं। इस विषय में वे रुद्रट से अत्यधिक प्रभावित हैं। उन्होंने रुद्रट के वही नाम ज्यों के त्यों ले लिये हैं—जैसे वास्तव, औपम्य, अतिशय और अर्थश्लेष को राजशेखर ने भी यही नाम दिया है।

---

१. तत्र शब्दालंकारौ—४-१-०; ४-१-१—वामन काव्यालंकारसूत्र सम्प्रत्यर्थालंकाराणां प्रस्तारः ४-२-२। २. वही।

भरत से लेकर राजशेखर तक अलकारों का विवेचन करने वाले आचार्यों में राजशेखर ही प्रथम है जिन्होंने अलकारो के साथ उनके प्रतिपादनकर्त्ताओं का भी नामोल्लेख किया है ।

रुद्रट ने वक्रोक्ति की गणना अलकारो मे की है । राजशेखर वक्रोक्ति को अलकार मानने के पक्ष मे नही है । उन्होंने उसे पाठ-धर्म के रूप मे स्वीकार किया है ।

अलकार के महत्त्व के विषय मे राजशेखर और उनके पूर्ववर्ती आचार्यों का मत समान है । भामह, दण्डी, वामन आदि के साथ राजशेखर भी अलकारो को काव्य का मण्डन मानते है । काव्य-पुरुष के चित्रण मे उन्होंने अनुप्रास, उपमा आदि को उसके अलकरणों के स्थान पर ही रखा है ।

शास्त्र सग्रह नामक अध्याय मे उन्होंने श्लेष अलकार के ही अर्थ-श्लेष और शब्द-श्लेष ये दो भेद माने है किंतु अलकार कवि की परिभाषा देते समय उन्होंने शब्दालकारिता और अर्थालकारिता के विभाजन का समर्थन किया है ।

काव्य के दो अनिवार्य तत्वो मे एक तत्व अलकार है, ऐसी उनकी मान्यता है ।

राजशेखर एवं रीति-सम्प्रदाय

राजशेखर ने काव्यमीमासा मे सुवर्णनाभ को रीति-निर्णय का जनक माना है । काव्यमीमासा का रीति-निर्णय अधिकरण अनुपलब्ध है । फिर भी इतना स्पष्ट है कि इस अधिकरण की रचना राजशेखर ने की थी । उनका यह कथन कि "रीतयस्तु तिस्रस्तास्तु पुरस्तात् तथा वृत्तिरीतिस्वरूप यथावसर वक्ष्याम." इस तथ्य की पुष्टि करता है ।

काव्यमीमासा मे तीन रीतियो का उल्लेख मिलता है । वे हैं—वैदर्भी, गौडीया और पाञ्चाली । रीति-रूप वाक्य भी तीन प्रकार के होते है ।[1] वामन ने भी रीतियो की सख्या तीन ही बतलायी है—वैदर्भी, गौडीया, और पाञ्चाली ।[2] राजशेखर ने कर्पूरमजरी मे जिन रीतियो का नामोल्लेख किया है, वे है—वैदर्भी, मागधी और पाञ्चालिका । राजशेखर के पश्चात् भोज ने मागधी का नामोल्लेख खण्ड रीति मे किया है ।

---

१ काव्यमीमासा अ० ७ पृ० ३१—तत्र त्रिधा रीतिप्रभेदेन वैदर्भी गौडीया पाञ्चालीचेतरीतिर्यस्तिस्र ।

२. काव्यालकार सूत्र-वामन १२९—सा त्रेधा वैदर्भी गौडीया पाञ्चालीचेति'

बालरामायण में राजशेखर ने मैथिली रीति का भी उल्लेख किया है। इसकी विशेषता है, अर्थातिशयता (अर्थ चमत्कार) के साथ स्वाभाविकता एवं पूरे प्रबन्ध में सन्दर्भ तथा समास का अल्प प्रयोग और योग परम्परा के अनुरूप उक्ति।

यत्रार्थातिशयोऽपि सूक्तिजगन्मर्यादया मोदते
सन्दर्भश्चसमासमागनवदप्रस्तारविस्तारितः।
उक्तिर्योगपरम्परापरिचिता काव्येषु चक्षुष्मता
सा रम्या नवचम्पकाभिभवतु त्वन्नेत्रयो प्रीतये।[1]

राजशेखर द्वारा मैथिली रीति की उद्‌भावना सर्वथा नवीन है। राजशेखर के पश्चात् श्री पाद नामक लेखक ने इसका वर्णन किया है, यद्यपि उसने इसे मागधी का पर्याय माना है। केशव मिश्र ने, अलंकार-शेखर में श्रीपाद के मत का उल्लेख किया है, वहाँ मैथिली रीति वैदर्भी रीति के समान अल्प-समासवाली कही गयी है। इस प्रकार राजशेखर ने रीति के वैदर्भी, पाञ्चाली, गौड़ीया, मागधी, तथा मैथिली ये भेद माने हैं।

रीति का उद्‌भव : कहा जा चुका है कि काव्य-पुरुष की खोज में उनकी प्रियतमा साहित्य-विद्या-वधू चारों दिशाओं में जाती है। वह उसे आकर्षित करने के लिए विशेष स्थानों में विशिष्ट वेषभूषा धारण कर लेती है, अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए नवीन शैली के वचन-विन्यास का भी आश्रय लेती है तथा मनोरंजन के लिये विविध विलासों का प्रदर्शन करती है। इस प्रकार साहित्य-संसार में प्रवृत्ति, रीति और वृत्ति का उद्‌भव होता है।

पूर्ववर्ती आचार्य भामह, दण्डी, रुद्रट, वामन तथा आनन्दवर्धन ने रीतितत्व की मान्यता दी है, किन्तु रीति का उद्‌भव किस प्रकार होता है इसकी चर्चा किसी ने भी नहीं की है। आचार्य भरत ने केवल, प्रवृत्ति तथा वृत्त का वर्णन किया है।[2] इनके मतानुसार पृथ्वी पर के नाना देशों के वेश, भाषा तथा आचार की व्याख्या का स्थापना करने वाली प्रवृत्ति होती है।

रीति के साथ प्रवृत्ति तथा वृत्ति के सामंजस्य के लिए राजशेखर भरत के ही ऋणी हैं। उन्होंने '*वचनविन्यासक्रम रीतिः*' अर्थात् *वचन के विन्यास की* शैली को रीति कहा है। यह परिभाषा पूर्ववर्ती आचार्य वामन की परिभाषा

१ बालरामायण—१०।९५।

२ नाट्यशास्त्र—पृथिव्या नानादेश-वेषभाषाचारवार्ता. ख्यापयतीति प्रवृत्ति.

'पदरचना रीतिः' से भिन्न नहीं है। केवल शब्दों का अन्तर है। वचन का अर्थ है—शब्द या पद और विन्यास का अर्थ है रचना। काव्यपुरुष के रूपक में रीति का प्रसंग होने के कारण राजशेखर ने वाणी से सम्बन्धित शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने पद के स्थान पर वचन और रचना की जगह विन्यास क्रम-शब्द रख दिये हैं।

आचार्य वामन के पूर्ववर्ती भामह और दण्डी ने भी रीति की चर्चा की है, परन्तु दोनों में से किसी ने भी रीति की परिभाषा नहीं दी। वामन ने काव्यालंकार-सूत्र में विशिष्ट पद-रचना को रीति कहा है।[१] विशिष्ट पद से उनका तात्पर्य गुणसम्पन्नता है। काव्यशोभाकारक धर्म को वे गुण कहते हैं। इस प्रकार वे काव्य के शोभाकारक शब्द और अर्थ के धर्मों से युक्त पदरचना को रीति मानते हैं।

आनन्दवर्धन ने पद-सघटना को रीति नाम दिया है। पद सघटना वाक्य में पदों की स्थिति या क्रम को कहते हैं। वामन का पद-रचना और आनन्दवर्धन का सघटना शब्द दोनों पर्याय है। हाँ, दोनों के मान-दण्ड भिन्न हैं। आनन्दवर्धन के अनुसार रीति रसाश्रयी है। वामन के समक्ष कोई स्वतन्त्र मानदण्ड न था। अर्थगत और शब्दगत सौंदर्य को ही उन्होंने महत्वपूर्ण समझा।

रीति की परिभाषा में आचार्य कुन्तक ने एक क्रान्ति उपस्थित की। कवि के मानस पक्ष को महत्व देते हुए उन्होंने रीति को कविप्रस्थान हेतु कहा है। भोज के मतानुसार रीतिशब्द गत्यर्थकरीङ् धातु से व्युत्पन्न हुआ है।[२] कुन्तक ने जिस कविगमन मार्ग को कविप्रस्थानहेतु कहा है, वही भोज के शब्दों में रीति है।

पूर्वाचार्यों द्वारा वर्णित तीन रीतियों के लिए मम्मट ने वृत्ति शब्द का प्रयोग किया है "वृत्तिर्नियतवर्णगतो रस-विषयो व्यापारः' अर्थात् रीति वर्ण-गुम्फन का नाम है। उस में वर्ण नियत होते है और वे रस के सहायक होते हैं।

विश्वनाथ ने मम्मट के वर्ण-व्यापार के साथ-साथ पद-सघटना को महत्व दिया। पदों की सघटना का नाम रीति है जो अगसस्थान की भाँति[३] है।

रीति का मूल-तत्व : रीति के विषय में राजशेखर ने नवीन तत्वों की उद्भावना की है। उन्होंने समास के साथ-साथ अनुप्रास को रीति का मूल-तत्व माना

---

१. वामन—काव्यालंकारसूत्र—१ २ ७ विशिष्ट पदरचनारीतिः (२) विशेष-गुणात्मा। १ २ ८।

२. रङ्गतावेति धातोः सा व्युत्पत्या रीतिरुच्यते।

३. पदसघटनारीतिरगसस्था-विशेषवत्-उपकर्त्री रसादीनाम्।

है। इसके अतिरिक्त उन्होंने तीनों रीतियों के नये आधार-तत्व की भी कल्पना की है। यथा गौडीया समासवती, अनुप्रासवती, योगवृत्तिपरम्परागर्भा पाञ्चाली ईषदसमासा, ईषदनुप्रासा, उपचारगर्भा। वैदर्भी-स्थानानुप्रासवती-असमासा योग वृत्तियमा—उनके मतानुसार गौडीया रीति में योगवृत्तिपरम्परा तथा समास और अनुप्रास का प्रचुर रूप में होना पाया जाता है। पाञ्चाली में उपचार-गर्भता तथा समास और अनुप्रास की अल्पता होती है। वैदर्भी में योगवृत्ति का सद्भाव, समास का अभाव और स्थानानुप्रास होता है।

भोज ने राजशेखर का अनुसरण किया है। उन्होंने रीति के मूलतत्वों में समास और गुण दोनों की गणना करते हुए राजशेखर के योगवृत्ति नामक आधारभेद को और व्यापक कर दिया है। पूर्ववर्ती आचार्यों में दण्डी ने गुणों को रीति का मूलतत्व माना है। वामन भी इसी मत के समर्थक हैं।

वामन के पश्चात् रुद्रट ने समास को रीति का मूलतत्व माना। उन्होंने पाञ्चाली को लघुसमासा, लाटीया को मध्यसमासा, गौडीया को दीर्घसमासा तथा वैदर्भी को असमासा कहकर रीति के मूल में समास को स्वीकार किया है। आनन्दवर्धन ने प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणों को रीति के आन्तरिक तत्व और समास को बाह्य तत्व माना है।

ध्वनि-सम्प्रदाय तथा राजशेखर

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में ध्वनि-सम्प्रदाय का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया, तथापि उसके सिद्धान्तों को यथास्थान उद्धृत किया है। उनके समय तक ध्वनि-सम्प्रदाय की स्थापना हो चुकी थी।

काव्यमीमांसा के प्रथम अध्याय में औक्तिक प्रकरण का उल्लेख है। सम्भवतः राजशेखर इस प्रकरण में ध्वनि-सम्प्रदाय सम्बन्धी अपना मन्तव्य प्रकट करना चाहते थे। उनकी सम्मति में औक्तिक प्रकरण के आद्याचार्य उक्ति-गर्भ थे।

राजशेखर ने कविरहस्य प्रकरण के पाँचवें अध्याय में प्रतिभा और व्युत्पत्ति के विषय में आनन्दवर्धन के विचार लिये हैं। "प्रतिभाव्युत्पत्त्योः प्रतिभा श्रेयसी इत्यानन्दः।" अर्थहरण प्रकरण में—"महात्मनां हि संवादिन्यो बुद्धय एकमेवार्थमुपस्थापयन्ति, तत्परित्यागाय तानाद्रियेत इति च केचित्।" अर्थात् सूक्ष्मदर्शी महात्माओं की बुद्धि समान प्रकार की होती है। अतः उन्हें समान रूप से ही अर्थ-विशेष की प्रतीति होती है। इसलिए एक ही प्रकार के भाव

प्राचुर्य है । अतः इस भणिति को कसौटी मानकर ही वे इस रचना का मूल्यांकन करें ।

राजशेखर का वक्रोक्ति क्षेत्र आचार्य कुन्तक की तुलना में कहीं अधिक व्यापक है । उन्होंने वक्रोक्ति का साम्राज्य विस्तार, लोक, काव्य और शास्त्र तीनों में माना है, जबकि आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति को काव्य तक ही सीमित रख पाये हैं ।

साहित्य-शास्त्र को राजशेखर की देन

संस्कृत साहित्य-शास्त्र के विकास के कई सोपान हैं । समय-समय पर इस शास्त्र को विभिन्न नाम दिये गये । आरम्भ में काव्य-सौंदर्य की परख करने वाले इस शास्त्र को काव्य-शास्त्र कहा गया । भामह, रुद्रट, उद्भट, वामन आदि के कथन इसके साक्षी हैं । दूसरे चरण में काव्य-शास्त्र का नाम पड़ा अलंकार-शास्त्र । अलंकारों का प्राधान्य इस नामकरण के मूल में था । तीसरी अवस्था में यह शास्त्र काव्यशास्त्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ । इसी युग के पूर्ववर्ती आचार्यों में भामह, वामन, रुद्रट आदि ने काव्य को शब्दार्थमय स्वीकार किया था । किन्तु किसी ने साहित्य शब्द का प्रयोग अपने ग्रन्थों में नहीं किया । वर्तमान अर्थ में साहित्य शब्द का प्रथम प्रयोग काव्यमीमांसा में मिलता है ।

प्राचीन आचार्यों ने चार विद्याएँ मुख्य बताई हैं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति । राजशेखर की स्थापना है कि इन चारों विद्याओं का निष्यन्द-सार होने के कारण साहित्य पञ्चमी-विद्या है । "पञ्चमी साहित्य विद्या । साहित्यतसृणामपि विद्यानां निष्यन्द. ।" शब्दार्थयोर्यथावत् सहभावेन विद्या साहित्यविद्या । साहित्यविद्या में शब्द और अर्थ का यथार्थ रूप में समन्वय होता है ।

काव्यपुरुष की उत्पत्ति के विषय में रोचक आख्यान प्रस्तुत करते हुए उन्होंने काव्य और साहित्य विद्या का मंजुल सामंजस्य व्यक्त किया है । परवर्ती साहित्यकारों ने आचार्य की इस स्थापना को पैतृक निधि के रूप में ग्रहण किया । इनकी मौलिकता का दूसरा उदाहरण है, साहित्य-शास्त्र के उद्गम की गवेषणा । इन्होंने बतलाया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने इस काव्य-विद्या का उपदेश परमेष्ठि वैकुण्ठादि चौसठ शिष्यों को दिया था । उनमें से प्रथम शिष्य स्वयंभू-ब्रह्मदेव ने इस विद्या का दूसरी बार उपदेश अयोनिज ऋषि को दिया । इन शिष्यों में सरस्वती का पुत्र 'काव्य-पुरुष' भी था । ब्रह्मदेव ने उसे भू भुव: और स्व तीनों

लोकों में रहने वाली प्रजा को काव्य-विद्योपदेश देने का आदेश दिया। काव्यपुरुष ने इसका सर्वप्रथम उपदेश महस्राक्षादि दिव्य काव्य-विद्या-स्नातकों को किया। प्रत्येक शिष्य ने अठारह भागों में से एक एक विषय पर विशेषता प्राप्त करके पृथक् पृथक् ग्रन्थों की रचना की। यह आख्यायिका पौराणिक शैली की जान पड़ती है। परन्तु इस प्रकार का उल्लेख अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता है।

काव्यपुरुष का अवतरण

ऋग्वेद में वेद-पुरुष का वर्णन मिलता है। वेद अपौरुषेय माने गये हैं। अतः वेद-पुरुष भी दिव्य है। साहित्यशास्त्र में काव्य का लक्षण निर्धारित करते हुए आचार्य दण्डी ने शब्द और अर्थ दोनों के संयोग को ही काव्य का शरीर माना है। आचार्य भामह के 'शब्दार्थौ' से विदित होता है कि वे शब्द को काव्यशरीर मानते हैं। आचार्य वामन ने शरीर की ओर दुर्लक्ष्य करके काव्य के आत्मतत्व की खोज की। आचार्य आनन्दवर्धन ने इस दिशा में वामन के पथ का अनुसरण किया। अन्तर इतना ही है वामन ने रीति को काव्य की आत्मा कहा, आनन्द ने ध्वनि को काव्य का जीवनविधायक तत्व माना। इस प्रकार आचार्य भामह से आनन्दवर्धन तक काव्य-शास्त्र में काव्य के शरीर तथा आत्मा-तत्व की स्थापना हो चुकी थी। साहित्य क्षेत्र में काव्यपुरुष की कल्पना को स्पष्ट और मूर्त रूप प्रदान करने का श्रेय राजशेखर को ही है। उनके मत में काव्यपुरुष का शब्दार्थ शरीर है, संस्कृत मुख, प्राकृत बाहु, अपभ्रंश जघन, पैशाच पैर तथा मिश्र भाषा उसका उर है। उसका स्वभाव सम प्रसन्न, मधुर, उदार तथा ओज आदि-गुणों से युक्त है। उक्ति वैशिष्ट्य उसके रोम हैं। उसकी वाक्क्रीडा में प्रश्नोत्तर एवं प्रवह्लिकादिक है। अनुप्रासादिक उसके अलंकार है तथा रस उसकी आत्मा है। काव्यपुरुष का ऐसा चित्र साहित्य के क्षेत्र में सर्व-प्रथम राजशेखर ने ही उपस्थित किया। यह उनकी मौलिकता का प्रमाण है।

रीति-वृत्ति प्रवृत्ति का सामञ्जस्य

आचार्य भरत ने वृत्ति और प्रवृत्ति का नाट्य की दृष्टि से विवेचन किया है। भामह, वामन, दण्डी, आनन्दवर्धन, रुद्रट आदि ने अपनी अपनी दृष्टि से रीति का विवेचन साहित्यशास्त्र के सन्दर्भ में किया है। परन्तु राजशेखर ही वे प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने प्रवृत्ति का सामञ्जस्य किया।

भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में रीति की चर्चा की है। वामन और आनन्दवर्धन ने रीति का लक्षण निरूपित किया है किन्तु रीति के उद्गम का

विस्तृत विवेचन केवल राजशेखर ने ही किया है। काव्यपुरुष को आकर्षित करने के लिये साहित्यविद्या-वधू ने जिस वचन, वेश और विलास का आश्रय लिया वे वचन, वेश और विलास क्रमशः रीति, प्रवृत्ति और वृत्ति नाम से साहित्य जगत में प्रसिद्ध हुए। राजशेखर की यह उद्भावना काव्यशास्त्र के इतिहास में सर्वथा नवीन है।

राजशेखर की रीति-सम्बन्धी एक और मान्यता है। भरत, भामह, वामन और दण्डी के मतों से स्पष्ट है कि आरम्भ में प्रवृत्तियों या रीतियों का वर्गीकरण प्रदेशानुसार ही हुआ था। इस प्रादेशिक विभाजन से राजशेखर भी पूर्ण सहमत थे। इन्होंने प्रदेशों की सीमा-रेखा और भी स्पष्ट कर दी है।

गौडी रीति का क्षेत्र, अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, ब्रह्म, पुण्ड्र आदि देशों तक विस्तृत है। पाञ्चाल, शूरसेन, हस्तिनापुर, काश्मीर, वाहीक, बाह्लीक, बाह्लवेय आदि जनपद पाञ्चाली के सीमाक्षेत्र हैं। मलय, कुन्तल केरल, पालक, मञ्जर, महाराष्ट्र, गंगा, कलिंग आदि जनपद वैदर्भी के कार्यक्षेत्र हैं।

रीति निरूपण में समास के साथ अनुप्रास तथा योगवृत्ति, उपचार-योगवृत्ति परम्परा को रीति का आधार मानना उनकी निजी कल्पना है।

पञ्चदशं काव्यं विद्यास्थानम्।
उपकारकत्वाद् अलङ्कारः सप्तममङ्गम्'

साहित्य क्षेत्र में काव्य को पञ्चदशवी विद्या का स्थान, अलङ्कार को सप्तम, वेदाङ्ग का तथा साहित्य को पञ्चमी विद्या का स्थान देने का प्रशंसनीय कार्य राजशेखर द्वारा ही सम्पन्न किया गया है। काव्य की महनीयता से प्राय सभी आचार्य सहमत हैं किन्तु केवल राजशेखर ने ही 'पञ्चदश' काव्यम् विद्यास्थानम्' कहा है।

अलङ्कारों को भामह, वामन, दण्डी, रुद्रट आदि ने काव्य को शोभाप्रदान करने वाले तत्व माना है। राजशेखर भी अलङ्कारों को काव्य के शोभाकारक धर्म मानते हैं। अलङ्कार-शास्त्र का उद्गम उसका नामकरण तथा उस शास्त्र का समुचित स्थान निर्धारित करने का कार्य राजशेखर ने किया। वास्तव में किसी आचार्य ने इस प्रश्न को हल करने का प्रयत्न नहीं किया। 'अलङ्कारः सप्तमङ्गम्' इस स्थापना में अलङ्कार का अर्थ अलङ्कार शास्त्र है। जिसके बिना वेदार्थ भी विनष्ट हो जाता है। अतः शास्त्रों का भी उपकारी होने के कारण उन्होंने अलङ्कार-शास्त्र को षड्वेदाङ्गों के पश्चात् सातवें वेदाङ्ग का स्थान दिया।

अलंकार क्षेत्र में मौलिकता

अलंकार क्षेत्र में उक्त नवीनताओं के अतिरिक्त कतिपय मौलिकतायें भी आचार्य राजशेखर ने दी है—जैसे

वक्रोक्ति आद्याचार्य भामह ने वक्रोक्ति अलंकार को अलंकारों का जीवन विधायक तत्व माना है । वे ऐसे अलंकार की कल्पना ही नहीं कर सकते जो वक्रोक्ति से रहित हो । आचार्य दण्डी ने भी समस्त वाङमय को दो भागों में बाटा है—स्वभावोक्ति तथा वक्रोक्ति । उनके अनुसार अतिशय कथन वक्रोक्ति का मूल है । उसमें श्लेष की विद्यमानता उसे और भी निखार देती है । भामह की वक्रोक्ति का क्षेत्र व्यापक है । दण्डी ने उसे भामह की तुलना में संकुचित किन्तु विशिष्ट स्थान दिया है । आचार्य वामन ने वक्रोक्ति को अर्थालंकार कहा है । उनके मत से वक्रोक्ति सादृश्य के ऊपर आश्रित होने वाली लक्षणा है । लक्षणा के अनेक आधार हो सकते है । परन्तु सादृश्य के आधार पर होने वाली लक्षणा वक्रोक्ति कही जा सकती है । आचार्य रुद्रट के समय में यह शब्दालंकार बन गई । रुद्रट कहते हैं—'काकुवक्रोक्तिर्नामशब्दालंकारोऽयम्' वक्रोक्ति शब्दालंकार है, जिसे काकु कहते हैं—

'अभिप्रायवान्पाठधर्मः काकुः स कथमलंकारः स्यात् ।

राजशेखर के इस वाक्य में वक्रोक्ति सम्प्रदाय का बीज निहित है । वे कहते हैं—साभिप्राय पठन अर्थात पढ़ने का या बोलने का प्रकार काकु है । वह अलंकार कैसे हो सकता है ? आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति सम्प्रदाय के जनक माने जाते है उन्होंने वक्रोक्ति को 'वैदग्ध्य-भंगी भणिति' अर्थात कहने का लौकिक प्रकार से भिन्न ढंग कहा है । निःसंदेह लगभग एक शताब्दी पश्चात वक्रोक्ति को काव्य का मूलतत्व मानने वाले आचार्य कुन्तक ने राजशेखर के इन्हीं वचनों का दोहराया है किसी नवीन विचार की उद्भावना नहीं की । साहित्यशास्त्र में वक्रोक्ति सम्प्रदाय की नींव डालने का महत्व कार्य राजशेखर ने ही किया था ।

श्लेष-यमक : भरत भामह दण्डी वामन आदि सभी आचार्यों ने यमक अलंकार का निरूपण किया है । रुद्रट ने ५८ श्लोकों में यमक का विस्तृत विवेचन किया है । उन्होंने श्लेष के भी आठ प्रकार बताये है किन्तु उनके पूर्ववर्ती या परवर्ती किसी साहित्यकार ने इतना की दृष्टि से श्लेष तथा यमक अलंकारों का वर्णन नहीं किया । राजशेखर ने शब्दहरण प्रकरण में श्लेषयुक्त पूरे एक पद का यमक अलंकारों द्वारा हरण तथा यमकालंकार का यमक द्वारा

हरण एवं श्लेष का श्लेष द्वारा ही हरण करने का उदाहरण देकर अलंकारों की दिशा में नवीनता का सृजन किया है ।

वाङ्मय-विभाजन : प्राच्य और पाश्चात्य दोनों श्रेणियों के ही विद्वानों ने साहित्य को कई भागों में बाँटने की चेष्टा की है । आचार्य दण्डी ने वाङ्मय को स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति में विभक्त किया है । किन्तु उनका दृष्टिकोण सीमित है । भारत में इस प्रकार का प्रयत्न सबसे पहले राजशेखर ने अपनी काव्य-मीमांसा में किया है । साहित्य को उन्होंने दो भागों में विभिक्त किया है—

'शास्त्रं काव्यं चेति वाङ्मयं द्विधा'

वाङ्मय या साहित्य शास्त्र और काव्य भेद से दो प्रकार का होता है । साहित्य का यह विभाजन अंग्रेज विद्वान डिक्विन्सी से मिलता है जिसने साहित्य को ज्ञान और शक्ति के रूप में विभक्त किया है ।

राजशेखर ने केवल शास्त्र और काव्य का ही उल्लेख नहीं किया । उन्होंने समग्र शास्त्रों का संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट रूप से वर्णन किया है, जो इतर साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं पाया जाता ।

काव्यस्रोतों में मौलिकता . पूर्ववर्ती आचार्यों ने काव्यवस्तु के स्रोतों का वर्णन किया है । राजशेखर भरत, भामह, रुद्रट आदि द्वारा वर्णित काव्यार्थों से पूर्णतया सहमत है, किन्तु इन बारह काव्यार्थों[1] के अतिरिक्त उन्होंने स्वप्रतिभाजन्य अन्य चार काव्यार्थों की भी कल्पना की है । वे हैं उचित संयोग, योक्तृ-संयोग, उत्पाद्यसंयोग और संयोग-विकार ।

आचार्य द्रौहिणि ने काव्यार्थ की व्यापकता को परिमित करने का प्रयास किया है । उन्होंने कथानक के पात्रों का दिव्य, दिव्यमानुष और मानुष होना बतलाया है । पश्चात् आचार्य राजशेखर ने इनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया । उन्होंने इन तीन भेदों के अतिरिक्त *पातालीय, मर्त्यपातालीय, दिव्यपातालीय,* और *दिव्यमर्त्यपातालीय भेदों का वर्णन कर अर्थव्याप्ति की सीमा विस्तृत कर दी* है । *पूर्ववर्ती आचार्य उद्भट ने अर्थराशि को विचारितसुस्थ* और अविचारित-रमणीय विभागों में रखा है । अविचारित रमणीय कविकल्पित होता है उसमें वास्तविकता कोसों दूर रहती है । राजशेखर इससे असहमत हैं । उन्होंने

---

१ काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ३५—"श्रुति स्मृति इतिहास पुराणं प्रमाणविद्या राजसिद्धान्तत्रयी लोको विरचना प्रकीर्णक च काव्यार्थानां द्वादश योनयः" *इति आचार्याः ।*

उद्भट की समस्या का निराकरण किया । उनके मतानुसार कवि वैज्ञानिक वस्तु की वास्तविकता को प्रतिभा के पुट से लोक-रंजना मे परिवर्तित करता है । शास्त्र विश्लेषणात्मक होते है, काव्य सश्लेषणात्मक । राजशेखर का यह मन्तव्य आधुनिक पाश्चात्य विद्वानो को सर्वथा मान्य है ।

कवि कर्म ही काव्य कहलाता है । अलकार शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय काव्य ही है । कवि का जितना विस्तृत विवेचन राजशेखर ने किया है उतना किसी पूर्ववर्ती या परवर्ती आचार्य ने नहीं । आचार्य वामन ने अरोचकी तथा सतृणाभ्यवहारी कवियो के ये दो भेद गिनाये है, किन्तु राजशेखर ने भिन्न-भिन्न आधारो को लेकर कवियों के २७ भेद बतलाये है । ये उनकी सूक्ष्म विचार शक्ति के परिचायक है । अवस्थाजन्य कविश्रेणी भी साहित्य क्षेत्र में नवीन है ।

कवि-शिक्षा भामह से राजशेखर पर्यन्त आलकारिको ने काव्य-विषय का मथन किया है, किन्तु कवि के मानसिक पक्ष की ओर किसी भी दृष्टि नही गई। राजशेखर अलकार क्षेत्र मे प्रथम आचार्य है जिन्होंने काव्यमीमासा मे कवि शिक्षा विषयक तत्वों के बीज का वपन किया । परवर्ती आचार्यों के लिये यह धरोहर स्वरूप है। कवि-शिक्षा सम्प्रदाय के जनक के रूप मे राजशेखर काव्य-जगत मे अमर रहेंगे। कवि-शिक्षा के अन्तर्गत जिन तत्वो का प्रथमावतार राजशेखर ने किया है वे हैं —

(१) कविचर्या (२) काव्यगोष्ठी (३) कवि-सम्मेलन (४) काव्य पाठ (५) अनुहरण (५) कवि-समय ।

वात्स्यायन ने कामसूत्र मे "नागरक-वृत्ति" शीर्षक के अन्तर्गत नागरिको के रहन-सहन, निवास-स्थान एव नियमबद्ध दिनचर्या का सुविस्तृत विवेचन किया है । साहित्यशास्त्र मे हमे ऐसा वर्णन कही भी उपलब्ध नहीं होता । राजशेखर ही प्रथम आचार्य है, जिन्होने वात्स्यायन की नागरिकचर्या को सामने रखकर कवि-चर्या पर विस्तार से प्रकाश डाला है ।

काव्यगोष्ठी की उद्भावना साहित्य क्षेत्र मे नूतन नही है किन्तु राजशेखर की लेखनी ने उसका अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है। राजा के सभापतित्व मे काव्यगोष्ठी की आयोजना परिकल्पित करके उन्होने उसे सम्मान प्रदान करने की प्रेरणा दी है। राजा के नेतृत्व मे आयोजित कवि-सम्मेलन सामान्य सभा-मण्डप मे नही हो सकता। अत उस सम्मेलन के लिये उन्होने विशिष्ट मण्डप की रचना का निर्देश दिया है। इस कवि-भवन मे सोलह खम्भे चार दरवाजे और आठ मत्तवारणी है। उस के बीच मे एक हाथ ऊँची चार खम्भों वाली एक मणि-वेदिका बनायी

जाय। इस मणिवेदिका पर राजा का सिंहासन हो। राजा के चारों ओर भिन्न-भिन्न भाषाओं के गुणी तथा कविजन बैठें। राजा के उत्तर की ओर संस्कृत भाषी पूर्व की ओर प्राकृतभाषी, पश्चिम की ओर अपभ्रंश भाषी तथा दक्षिण की ओर पैशाची-भाषी कवि बैठें। ऐसी सजी हुई सभा में बैठकर राजा काव्य-गोष्ठी का सभापतित्व करे।

महर्षि पाणिनि ने वर्णों के उच्चारण की विधि बतलाते हुए लिखा है कि जिस प्रकार व्याघ्री अपने पुत्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने दाँतों से दबाकर लेजाती है और दाँतों से उन्हें किसी प्रकार की पीडा नहीं पहुँचाती क्योंकि वह डरती है कि कहीं बच्चे मर न जायें या दाँत उनसे छुट न जायें। उसी प्रकार वर्णों के उच्चारण करने वालों को भी सावधान होना चाहिये कि कहीं वर्ण उसके मुँह से गिर न जाय और कहीं कोई वर्ण मुँह के भीतर ही रहकर अनुच्चारित न रह जाय। इसी को आधार मानकर राजशेखर ने कवि रहस्य अधिकरण में काव्य पाठ के चार भेद बतलाये है—

गभीरत्वमनैश्वर्यनिर्व्यूढिस्तारमन्द्रयोः
संयुक्तवर्णलावण्यमिति पाठगुणाः स्मृताः।
विभक्तयः स्फुटाश्चैव, समासाश्च कदर्थिताः।
अम्लानः पदसन्धिश्च तत्र पाठप्रतिष्ठितः॥
न व्यस्तपदयोरैक्यं न भिदा तु समस्तयोः।
न चाख्यातपदम्लानिं विदधीत सुधीः पठन्॥

अर्थात् गम्भीरता, सम्वरता, ऊँच नीच स्वर का निर्वाह और संयुक्त वर्णों के पढ़ने में विशेष सुन्दरता ये पाठकों के गुण माने गये हैं। सुन्दर पाठ वह है जिसमें विभक्तियाँ स्पष्ट हों, समास भी स्पष्ट हों और पदों की संधि भी स्पष्ट हो। बुद्धिवान् को पाठ करते समय न तो व्यस्त पदों को मिलाना चाहिये और न समस्त पदों को अलग करना चाहिये। आख्यात पदों को भी विकृत या मलिन नहीं करना चाहिये। यही उनकी पाठ प्रतिष्ठा का आधार है।

वाराणसी, मगध, गौड, कर्नाट, द्रविड, लाट, सुराष्ट्र, स्रवण, कश्मीर और पाञ्चाल जनपद के काव्य पाठ की प्रणाली का वर्णन उनकी अपूर्व देन है। सर्वप्रथम राजशेखर ने ही रीति के अपने प्रान्तीय प्रणाली के आधार पर काव्य पाठ का वर्णन किया है। उन्होंने प्रायः सभी प्रान्तों की कवि-पाठ प्रणाली का उल्लेख किया है।

अनुहरण

सर्वप्रथम आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक में अनुहरण की एक झलक मिलती है। किन्तु इसका विस्तृत तथा विशिष्ट अनुशीलन राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में किया है। पूर्वकथित सिद्ध तुतयोनि के दूसरे भेद परपुरप्रवेश एवं उसके आठ भेदों की उद्भावना राजशेखर की अपनी है। अनुहरण विषयक कवि की धारणायें साहित्य-जगत में नूतन ही हैं।

कवि-समय : आचार्य वामन ने काव्यालंकार सूत्र में प्रायोगिक नामक पञ्चम अधिकरण में काव्य-समय का उल्लेख किया है, जिसमें व्याकरण-नियमों की रूपरेखा दी गयी है यद्यपि काव्य में तो कवि-समय का प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग हुआ, किन्तु काव्य-शास्त्र में कवि-समय का विवेचन प्रथमतः आचार्य, राजशेखर ने किया है।

आलोचक भेद : पूर्ववर्ती आचार्य मंगल ने आलोचक के दो प्रकार बताये हैं—अरोचकी और सतृणाभ्यवहारी। आचार्य मंगल के इन कथन-प्रकारों से सहमत होते हुए आलोचक के दो अन्य प्रकार भी राजशेखर ने माने हैं। वे हैं–तत्वाभिनिवेशी एवं मत्सरी। इस प्रकार आचार्य मंगल के विभाजन को राजशेखर ने मनो-विज्ञान का पुट देकर व्यावहारिकता के समीप लाने का प्रयास किया है।

काव्य-पाक काव्य-पाक के क्षेत्र में आचार्य भामह एवं वामन का नाम उल्लेखनीय है, किन्तु इन आचार्यों ने काव्य-पाक को दो भेदों तक सीमित कर दिया। आचार्य राजशेखर ने इसका परिवर्धन किया तथा काव्य-पाक को नौ भेदों में विभाजित किया। इस प्रकार राजशेखर ने वर्तमान भारतीय समीक्षा का वास्तविक सूत्रपात किया।

काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में औपनिषदिक एवं वैनोदिक ये दोनों प्रकरण अत्यन्त नवीन हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र में औपनिषदिक प्रकरण मिलता है। राजशेखर औपनिषदिक कवि में सम्बन्धित जानकारी इस प्रकरण में देना चाहते होंगे। उनके कथन से लगता है कि वे इन प्रकरण में कलाओं का वर्णन भी करना चाहते थे।

काव्यमीमांसा ऐसा ग्रन्थ है जिसमें पूर्ववर्ती ज्ञात तथा अज्ञात आचार्यों के केवल नामों का नहीं, अपितु सिद्धान्तों का भी उल्लेख मिलता है। ज्ञात आचार्यों में रुद्रट, आनन्द, उद्भट के अनुयायी, वामन के अनुयायी (वामनीया) अवन्तिसुन्दरी, अपराजित, कालिदास, द्रौहिणि एवं पाल्यकीर्ति की गणना की जा सकती है।

मंगल, श्यामदेव और सुरानन्द आदि अज्ञात आचार्यों का उल्लेख राजशेखर ने पहली बार किया। उन्होंने जहाँ पूर्ववर्ती आचार्यों की उद्भावनाओं का उपयोग

लिया है वहां अपनी मौलिकता की भी छाप लगा दी है। उन्होने कभी भी पूर्ववर्तियों की पुनरावृत्ति नहीं की। जिस विषय पर उन्हें कोई मौलिक बात नहीं कहनी होती है, उसे वे छोड देते हैं।

उनकी सबसे महत्वपूर्ण स्थापना है साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों की रूपरेखा में ग्रामूल परिवर्तन। अब तक के ग्रन्थो मे अलकार शास्त्र के किसी एक विषय पर विशेष रूप से बल दिया जाता था किन्तु इस काव्यमीमांसा मे सभी विषयों का सामञ्जस्य करने का प्रयास किया गया है। समन्वयवादी ग्रन्थ-रचना की परिपाटी राजशेखर ने ही आरम्भ की।

सस्कृत आलकारिक काव्य के तात्विक सिद्धान्तो से परिचित थे किन्तु उन्हें व्यावहारिक शिक्षा देने का श्लाघनीयकार्य राजशेखर ने किया है। अपनी मौलिक उद्भावनाओ के द्वारा राजशेखर युग-प्रवर्तक सिद्ध होते हैं। उनकी ये उद्भावनायें साहित्य जगत मे प्रकाश-स्तम्भ की भाँति आचार्यों एव कवियों का मार्गदर्शन करती रहेंगी।

खण्ड ४

राजशेखर-कालीन भारत

"पूर्वापरयोः समुद्रयोर्हिमवद्विन्ध्ययोश्चान्तरमार्यावर्तः।
तस्मिंश्चातुर्वर्ण्यं चातुराश्रम्यं च। तन्मूलश्च सदाचारः॥"

राजशेखर-कालीन भारत

राजशेखर ने भारतवर्ष को उत्तरापथ, दक्षिणापथ, पूर्वदेश, पश्चाद्देश और मध्यदेश इन पाँच खण्डों में विभक्त कर तत्कालीन भारत की समग्र झाँकी प्रस्तुत की है, जो संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपूर्व है। उनके इस विभाजन का केन्द्र-बिन्दु कान्यकुब्ज था।

भौगोलिक सीमाएँ

उत्तरापथ : महोदय केन्द्र में था। पृथूदक से आगे शक, केकय, वोक्काण हूण, वाणायुज, काम्बोज, वाह्लीक, वह्लव, लिम्पाक, कुलूत, कीर, तगण, तुषार, तुरुष्क, बर्बर, हरहूरव, हूहुव, सहुड, हंसमार्ग, रमठ और करकण्ठ जनपद उत्तरापथ खण्ड का निर्माण करते थे।

पूर्वदेश : वाराणसी से आगे के अंग, वंग, कलिंग, कोसल, तोसल, उत्कल मगध, मुद्गर, विदेह, नेपाल, पुण्ड्र, प्राग्ज्योतिष, ताम्रलिप्तक, मलद, मल्लवर्तक, सुह्म और ब्रह्मोत्तर आदि जनपद पूर्वदेश के अन्तर्गत आते थे।

पश्चाद्देश : देवसभा से आगे, देवसभ, सुराष्ट्र, दशेरक, त्रवण, भृगुकच्छ, कच्छीय, आनर्त, अर्बुद, ब्राह्मणवाह और यवन प्रदेश पश्चाद्देश कहलाते थे।

दक्षिणापथ : माहिष्मती से आगे दक्षिणापथ का भू-भाग प्रारम्भ हो जाता था। महाराष्ट्र, माहिषक, अश्मक, विदर्भ, कुन्तल, क्रथकैशिक, सूर्पारक, काञ्ची, केरल कावेर, मुरल, वनवासक, सिंहल, चोड, दण्डक, पाण्ड्य, पल्लव, गाङ्ग, नासिक्य, कोंकण, कोल्लगिरि, वल्लूर, आदि जनपद दक्षिणापथ के अंग थे।

मध्यदेश : इन चार खण्डों के मध्य का देश "मध्यदेश" कहलाता था। राजशेखर ने मध्यदेश के जनपदों, पर्वतों, नदियों और उपज के अतिप्रसिद्ध होने के कारण उनकी नामावली नहीं दी है। उन्होंने मनु द्वारा निर्दिष्ट सीमारेखा को मान्यता दी है, जिसके अनुसार हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य में विनशन से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम का भू-भाग मध्यदेश कहलाता था।

नदियाँ : राजशेखर के मतानुसार उत्तरापथ की प्रमुख नदियाँ गंगा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, इरावती, वितस्ता, विपाशा, कुहू और देविका थी। पूर्व देश की गंगा और करतोया थी। पश्चादेश की सरस्वती, श्वभ्रवती, वार्तघ्नी, मही और हिडिम्बा एवं दक्षिणापथ की नर्मदा, तापी पयोष्णी, गोदावरी, कावेरी, भीमरथी, वेणा, कृष्णावेणा, वंजुरा, तुंगभद्रा, ताम्रपर्णी, उत्पलावती और रावणगंगा थी।

पर्वत : उत्तरापथ मे हिमालय, कलिन्द, इन्द्रकील, चन्द्राचल, पूर्वदेश मे बृहद्गृह, लोहितगिरि, चकोर, दर्दुर, नेपाल और कामरूप, पश्चाद्देश मे गोवर्धन, गिरिनगर, देवसभ, माल्यशिखर, अर्बुद तथा दक्षिणापथ मे विन्ध्य-दक्षिणपाद, महेन्द्र, मलय, मेकल, पाल, मंजर, सह्य और श्रीपर्वत थे।

इन जनपदो, कतिपय नदियों और कुछ पर्वतो के आधुनिक नाम निम्न है:—

उत्तरापथ :

शक—भारत के सीमान्त के पास का सीदिया क्षेत्र।
केकय—झेलम और व्यास नदी के मध्य-भू-भाग मे स्थित जलालपुर।
हूण—रशिया के आसपास का प्रदेश।
वाणायुज—अरब प्रदेश।
काम्बोज—हिमालय का रामपुर।
वाल्हीक—बलख।
वह्लव—पंजाब का वाहीक प्रदेश (पूर्वी पंजाब)
लिंपाक—लघमन।
कुलूत—कांगड़ा जिले का कुलू प्रदेश।
कीर—पंजाब का कीर ग्राम।
तंगण—गढ़वाल जिले का तंगणपुर।
तुषार—बलख और बदख्शाँ प्रदेश।
तुरुष्क—तुर्किस्तान का पूर्वी-भाग।
बर्बर—अफ़ग़ानिस्तान का उत्तर प्रदेश।
हरहूरव—सिन्धु और झेलम के मध्य का प्रदेश।
हूहूक—काश्मीर का हूणपुर।
सहुड—नक्शबन्द और मलक-बाजार के पास का प्रदेश।
रमठ—रोमश पर्वत के पास का प्रदेश।

पूर्वदेश :

अंग—भागलपुर, मुंगेर जिलों के आसपास का प्रदेश।

कलिंग—उड़ीसा से विजगापट्टम तक का प्रदेश।

तोसल—पुरी जिले का धौली प्रदेश।

मगध—आधुनिक पटना और गया।

विदेह—तिरहुत।

पुण्ड्र—बोगरा जिले का महा स्थान।

ताम्रलिप्तक—दक्षिणी पश्चिमी बंगाल का तमलुक प्रदेश।

मल्लवर्तक—विहार के हजारीबाग और मानभूमि जिलों का भाग।

ब्रह्मोत्तर—वर्मा के आस-पास का प्रदेश।

हममार्ग—उत्तरी-पश्चिमी आसाम का हूमजा प्रदेश।

करकण्ठ—बन्नू जिले का कारापथ प्रदेश।

वंग—बंगाल।

कोसल—रायपुर, विलासपुर और सम्बलपुर।

उत्कल—मिदनापुर जिले का पश्चिम भाग।

मुद्गर—मुंगेर।

नैपाल—नैपाल।

प्राग्ज्योतिष-गोहाटी

मलद—शाहाबाद।

पश्चाद्देश :

देवसभा—देवास।

सुराष्ट्र—दक्षिण काठियावाड़।

दशेरक—राजपूताने का मारवाड़ प्रदेश।

भृगुकच्छ—भड़ोच।

कच्छीय—कच्छ की खाड़ी के आसपास का प्रदेश।

आनर्त—द्वारका के आसपास का प्रदेश।

अर्बुद—आबू पर्वत के आसपास का प्रदेश।

ब्राह्मणवाह—सिन्धु के पूर्वतट का प्रदेश।

यवन—भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा से मिला प्रदेश।

दक्षिणापथ :

महाराष्ट्र—महाराष्ट्र।

माहिष्क—माहेश्वर या मान्धाता।
अश्मक—निजामाबाद का बोधन प्रदेश।
विदर्भ—बरार।
कुन्तल—कनारा जिले का उत्तरी भाग।
सूर्पारक—केरल से अपरान्तक का भाग।
काची—काजीवरम्
केरल—केरल (मालाबार ट्रावणकोर और कोचीन प्रदेश)।
कावेर—कावेरी नदी के पास का प्रदेश।
मुरल—मुरला नदी के समीप का प्रदेश।
वानवासक—उत्तर कनारा का वनवासी प्रदेश।
सिंहल—सिलोन।
चोल—तजौर और त्रिचनापल्ली के आसपास का प्रदेश।
दण्डक—दिण्डीवन।
पाण्ड्य—मदुरा, तिनावेली जिलो एव रामनद, त्रावणकोर कोचीन राज्यो का भाग।
पल्लव—काची के चारो ओर का भाग।
गाग—गागो प्रदेश।
नासिक्य—नासिक।
कोकण—परशुराम क्षेत्र कोकन।
कोल्लगिरि—कोल्हापुर।
वल्लर—वेंकटगिरी, चित्तूर, वैलूलोरी प्रदेश।

नदियाँ—जिन नदियों के नाम बदल गये हैं वे नदियाँ और उनके आधुनिक नाम निम्नलिखित हैं—

शतद्रु—सतलज।
विपाशा—व्यास।
देविका—दीग।
कुहू—काबुल।
मार्तघ्नी—साबरमती की सहायक शाखा।
चन्द्रभागा—चिनाव।
इरावती—रावी।
वितस्ता—झेलम।
श्वभ्रवती—साबरमती।
पयोष्णी—पेनगगा।
हिडिम्बा—धर्मवती, चम्बल

पर्वत : इसी प्रकार हिमालय की जिस श्रेणी विशेष से यमुना का उद्गम होना वह कलिंद, ब्रह्मपुत्र का उद्गम स्थल लोहितगिरि है। इसके अतिरिक्त इन्द्रकील

और कामरूप हिमालय की शाखाएँ हैं। दृहद्गुरु ही माउण्ट एवरेस्ट है। चन्द्रभागा जिस पर्वत से निकलती है वह चन्द्राचल, अमरकटक की वह श्रेणी, जिसमे नर्मदा का उद्‌गम होता है मेकल, विन्ध्याचल की देवगढ स्थित श्रेणी दर्दुर, आसाम स्थित हिमालय की श्रेणी कामरूप और मिर्जापुर का चुनार पर्वत चकोर कहलाता है। अन्य पर्वतो के नाम समान हैं।

राजशेखर से पूर्व भारत के जनपदों, ग्रामों नदियो एवं पर्वतो का उल्लेख कालिदास की रचनाओं तथा पातञ्जल महाभाष्य में मिलता है किन्तु वैज्ञानिक ढग से भारत का पाँच खण्डो मे विभाजन राजशेखर के सूक्ष्म भौगोलिक ज्ञान का ही परिणाम है। सातवी शताब्दी में भारत में भ्रमण करने वाले चीनी यात्री ह्वेनत्साग ने भी भारत को (Five Indies) पाँच खण्डो मे विभक्त किया है। वे पाँच खण्ड हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और मध्यदेश। प्रतीत होता है कि भारत को पाँच खडो मे वर्गीकृत करते समय इन सभी के विचार राजशेखर के मस्तिष्क में थे। *उन्होंने सबका मनन कर समयोपयोगी एव अधिक स्पष्ट रूपरेखा को अपने* ग्रन्थ मे प्रस्तुत किया है।

उन्होंने इन जनपदो के अतिरिक्त अनेक नगरों का भी उल्लेख किया है। वे हैं—मिथिला, लंका, अयोध्या, चेदि, अवन्ति, कुशस्थली, लाट, ओड्र, प्रयाग, महोदय कान्यकुब्ज, गाधिपुर, वाराणसी एव मालव आदि।

देशानुसार वेश-प्रणाली

राजशेखर ने भारत के विभिन्न देशो के विभिन्न परिधानों की एक झलक *काव्यमीमांसा में दी है—*

पूर्वदेश—अग वग, सुह्म, ब्रह्म तथा पुण्ड्र आदि जनपदो की स्त्रियाँ उत्तरीय वस्त्र इस प्रकार धारण करती थी जिसमें घूँघट मस्तक का चुम्बन करते थे और बाहूमूल का स्पष्ट रूप से प्रदर्शन होता था।

पाञ्चाल, *शूरसेन, हस्तिनापुर, काश्मीर, वाहीक, वाह्लीक, वाह्लवेय,* आदि देशों की स्त्रियो का आधा वस्त्र जघन से लेकर घुटने तक लटका रहता था अर्थात् वहाँ की स्त्रियाँ कमर से लेकर घुटने तक लटकते हुए सारगर्भ घाँघरे पहनती थी।

दक्षिणापथ की-मलय, मेकल, कुन्तल, केरल, पाल, मजर, महाराष्ट्र, गंग और *कलिंग जनपद की कामिनियाँ भुजाओं के नीचे से कमर तक साड़ियाँ ओढ़ती थीं।*

अवन्ति, प्रदेश की स्त्रियाँ कभी घुटनो तक लटकने वाले घाँघरे तथा कभी भुजाओं के नीचे से कमर तक साड़ियाँ धारण कर आकर्षण का केन्द्र बनी रहती थीं।

शिक्षा का केन्द्र : उज्जयिनी तथा पाटलिपुत्र ये दोनों शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। जहाँ काव्यकारों एवं शास्त्रकारों की परीक्षा होती थी। उज्जयिनी में कालिदास, भर्तृमेण्ठ, अमर, उपवर्ष, आर्यसूर, भारवि, हरिश्चन्द्र, और चन्द्रगुप्त आदि परीक्षा में सम्मिलित होकर सफल घोषित हुये थे। फलस्वरूप उन्होंने पट्टबन्ध का गौरव भी प्राप्त किया था। उज्जयिनी केवल काव्यकारों की परीक्षा का केन्द्र थी।

पाटलिपुत्र में शास्त्रकारों की परीक्षा होती थी। जहाँ से आचार्य उपवर्ष, पाणिनि, पिंगल, व्याडि, वररुचि, तथा पतञ्जलि परीक्षित हुए थे तथा पट्टबन्ध से गौरवान्वित भी।

राजशेखर और परवर्ती साहित्य

नाट्य साहित्य : राजशेखर के पश्चात् स्फूर्ति तथा प्रेरणा प्राप्त कर सट्टक का जिन्होंने निर्माण कार्य किया, वे हैं १—नयचन्द्र २—रुद्रदास।

रुद्रदास : चन्द्रलेखा के कर्ता रुद्रदास सन् १६६० के आसपास के हैं। इन्होंने इस सट्टक में मानवेद तथा चन्द्रलेखा के प्रणय का वर्णन किया है। चन्द्रलेखा की शैली कर्पूरमंजरी की शैली से बहुत कुछ मिलती है। कर्पूरमंजरी पर ही यह आधारित है। भावों एवं शब्द का साम्य भी पर्याप्त मात्रा में दिखायी देता है। यथा—

कर्पूरमंजरी	चन्द्रलेखा
रइरहसकला लोलचोलाप्पिआणं[1]	एदे चूसिअ-चोल-बाल महिला मालि-दुमेआअया।[1क]
दो आगद दे अण्णाएण पडितए[2]	जदो पुरुव एव्व अम्हाण पुण परपराए मग्गअ पडिमत्तण।[2क]
माह एक्क कण्णारअण दिट्ठ, तामिहाणीअदु[3]	इह महिअले जा कण्णाआण रअण भूआ कण्णआ त पुरदो दंसेहि[3क]
कञ्च माणिक्क च मम आहरणे पउजीअदि[4] ।	माणिक्क-मणिति काअ विक्किणी आदि[4क] ।
सहअ णाचिदव्व[5] ।	सट्टओ णट्टिदव्वो[5क] ।
एत्थ सहअवरे[6]	अस्सिं खु सहअ वरे[6क] ।
अह वड्ढावअोतुज्झ । तुय वड्ढाविआ मज्झ[7] ।	दाणि अह वड्ढावइस्स मयुयउत, अहं हि तुम वड्ढावइस्स[7क] ।

१ कर्पूरमंजरी १—१५ १क. चन्द्रलेखा १—१३ २ कर्पूरमंजरी १—१८
२क चन्द्रलेखा १—२६ ३. कर्पूरमंजरी १—२५ ३क चन्द्रलेखा १—२९
४. कर्पूरमंजरी १—२० ४क चन्द्रलेखा २—९ ५. कर्पूरमंजरी १—४
५क चन्द्रलेखा १—४ ६ कर्पूरमंजरी १—७ ६क. चन्द्रलेखा १।२३—२४
७. कर्पूरमंजरी १—१२ ७क. चन्द्रलेखा १—१२

जदोण कत्थूरिम्रा कुग्गामे वणे वा विक्किणीम्रदि[1] ।

एद जेव म्राम्रछदि
देवी ता कुज्जवामणकिरादवरिसवर
सोविदल्लाण एमो हलवोलो[2] ।

विहिंगिम्रा—म्रपच चामलग्गाहिणीम्रो पुव्व दुवारामि तिस्मे रक्ख कादुं ठाविम्राम्रो ।

कलहामिम्रा—पच सेरधीम्रो उत्तरदुवाराम्मि पोमिदाम्रो

मुन्दमाला—तम्बोलकरक्वाहिणीम्रो पच्छिमदिमाए ठाविदाम्रो—म्रणगकेली—मज्जणपालीम्रो उत्तरदिमाए म्राण्ताम्रो ।

मन्दारवदी—मुहासिदपडिमाम्रो म्रग्गम्रकखीकिदाम्रो—[3]

कि कत्थूरी पक्कणे विविक्कणी म्रदि[1क]

एमा खु देवी इदो एव्व म्राम्रच्छदि
त्तिसे कुज्ज किराम्र वारिसवर वामन
पुरस्सरम परिवार म्रणस्म एसो कलकलो[2क] ।

म्रणगसेना—न्ति पच चामरधारिणाम्रो—रक्खानिमित्तहे पुव्व दिसाए णिउत्ताम्रो ।

म्रणगसेना—पच सेरन्धीम्रो दक्खिणादिसाए णिवेसिदाम्रो ।

पत्तलेहा—म्र पच तम्बोल दाइणीम्रो—सठाविम्राम्रो तमालिम्रा—णहाणोवम्ररण सपादणीम्रो पच्छिम दुवारम्मि पेरिदाम्रो ।

मदरिम्रा—दाहिण दुवारम्मे णिम्रोईदाम्रो—[3क] ।

जयचन्द्र-रम्भामंजरी : नायक जैत्रचन्द्र और रम्भा के प्रणय पर आधारित इस सट्टक पर राजशेखर की छाप स्पष्ट दिखायी देती है । अपनी रम्भामजरी को उन्होंने कर्पूरमजरी की अपेक्षा श्रेष्ठ कहकर गर्वोक्ति की है किन्तु वस्तुत उसमे राजशेखर का अनुकरण ही लक्षित होता है ।

राजशेखर की अनुकृति निम्न अशो से स्पष्ट हो जाती है—

कर्पूरमजरी	रम्भामजरी
पिए विब्भमलेहा। एक्को मह वड्ढावम्रो तुज्झ एक्का तुम वड्ढाविम्रा मज्झ। कि उन दुवे वि म्रम्हे वड्ढाविम्रा वचणवण्ड[4] ।	देवी—वर्द्धापयसे—ता म्रहपि पडिवर्द्धायिष्यामि पडिवस्तुमिच्छामि प्रिये वसन्तमेने नाह वर्धापकस्तव नापि त्वमपि वर्द्धापिका मम । किन्तु मावयोवर्धापक परमहमो[4क]।

[1] कर्पूरमजरी १–१८ [1क]. चन्द्रलेखा २–९ [2] कर्पूरमजरी ३–३४
[2क]. चन्द्रलेखा ३–२४ [3]. कर्पूरमजरी ४–९ [3क]. चन्द्रलेखा ४–२६
[4]. कर्पूरमजरी १।१६ [4क] रम्भामजरी पृ० ११–१२

विदूषक-तुम्हाण सव्वाण मज्झे अहम् एको कालक्खरिग्रो जस्स मे 'ससुरस्स ससुरो पडिग्रघरे पुत्थि ग्राइ वहन्तो ग्रासि'[1]	जस्स मे पाणवल्लहाए पियामहो पाण्डियाण पुत्थयवाहग्राणाण—विचारगे ग्रासि[1a]
तदो ग्रागद दे ग्रण्णएण पंडित्तए[2]।	ग्रहो पारपज्जेणेव पवाहिदा तुम्हाण कुले विज्जा[1b]।
ण वत्थूरिया कुणयें वने ना विक्कीणी ग्रदि।[3]	ण रयणं वत्थूरिग्रा कुगामे विक्कग्रदि।[3] ग्रा. मह ईहि राउले ग्रागच्छन्तस्स ज जीवयव्वहरो स्थामिराउले—दासीग्रो ग्राणिज्जन्ति दासिग्रो पूइज्जति उत्तमाण मभण्णं—ण कोवि वुज्झेदि।[4]
ईदिसस्स राग्रलउलस्स भद् भोदु जहि चेडिग्रा वग्गेणेण समं समतीसिग्राए दीग्रदि—[4]	
णिग्रगेहणीए—गेहे जेव्व णिठिठस्स ण हु व हु ग्रागमिस्स।[5]	ता भद भोदु स्यस्स रायकुलस्स णियवल्लहाए—णिहज्जेव चिट्ठिसं इह नागमिस्सं।[1c]

विश्वेश्वर-सिङ्गारमञ्जरी : १८ वी शताब्दी के विश्वेश्वर ने राजा राजशेखर और शृंगारमंजरी के प्रणय की कथा सिंङगारमंजरी सट्टक में वर्णित की। सिङ्गारमंजरी में कर्पूरमंजरी के भाव और वर्णन की छाया स्पष्ट दिखायी देती है।

इन परवर्ती साहित्यकारों ने केवल कर्पूरमंजरी का ही अनुकरण नहीं किया। इस सन्दर्भ में विद्धशालभंजिका भी दृष्टव्य है। कश्मीरी कवि बिल्हण की कर्णसुन्दरी नाटिका की कथावस्तु एवं वर्णन शैली आदि पर विद्धशालभंजिका का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है।

(कर्णसुन्दरी) नायक स्वप्न में किसी अनन्यसुन्दरी को देखता है। वह सुन्दरी शीघ्र ही चली जाती है। राजा उसी का स्मरण करके अधीर होता है।

१. कर्पूरमंजरी १।१६–१७	१क. रम्भामंजरी पृ० १८–१।३१
२. कर्पूरमंजरी १–१८–१९	१ख. रम्भामंजरी १–३३–३४
३. कर्पूरमंजरी पृ० २३	२ग. रम्भामंजरी पृ० १६
४. कर्पूरमंजरी पृ० ३०	४ग. रम्भामंजरी पृ० १६१ व पृ० २०
५. कर्पूरमंजरी पृ० ३२	५ग. रम्भामंजरी पृ० २०

उसका मित्र विदूषक उसे मदनोद्यान चलने के लिए कहता है जिससे विरही राजा का मन स्थिर हो। प्रकृति शोभा का निरीक्षण करते हुए वे तरंगशाला पहुँचते हैं वहाँ भित्ति पर उसी स्वप्नदृष्टा नायिका की प्रतिकृति चित्रित है। नायिका उस नायिका के सौन्दर्य के वर्णन में मग्न है इसी समय देवी अपनी सखी हारलता के साथ प्रवेश करती है। राजा से यह पूछने पर कि वह किसके गुणों का गान कर रहा है—रानी का कहार रानी को निःशंक करती है। किन्तु वह चित्र स्पष्ट रूप से कर्णसुन्दरी का है। अतः रानी राजा की मन स्थिति समझ जाती है।

दूसरे अंक में विदूषक के कथन से ज्ञात होता है कि राजा कुपिता रानी को मनाने में सफल हो गया है। प्रमुख दृश्य में विरहाकुल राजा को तरंगशाला में सुन्दरी का चित्र देखकर मन बहलाने की सलाह विदूषक देता है। दोनों तरंगशाला में पहुँचते हैं। राजा उसे प्रत्यक्ष देखने के लिए उत्सुक है। उन्हें नायिका लीलावन के सरोवर में स्नान करती हुई दिखायी देती है। मज्जनोमज्जन क्रिया का वर्णन करते हैं। नायिका स्नान के पश्चात् लता गुल्म में प्रवेश करती है और विदूषक उसका अनुसरण करते हैं। नायिका भी मदनझरोखे से राजा का स्मरण करती हुई वह विरहदाह को न सह सकने के कारण मूर्छित हो जाती है। गुल्म में छिपा हुआ राजा शीघ्र वहाँ पहुँचता है। चेतनालब्ध नायिका एवं नायक के मिलन की वार्ता देवी को ज्ञात होती है। रानी की शंका से नायिका रानी के आने के पूर्व ही वहाँ से प्रस्थान कर देती है।

तृतीय अंक में रानी कर्णसुन्दरी का वेश धारण कर तथा सखी हारलता कर्णसुन्दरी की सखी का रूप धारण कर राजा के समक्ष उपस्थित होती है। राजा के मन का रहस्य जानने के बाद वह अपना वास्तविक रूप दिखाती है। राजा अपराधी की भाँति उसके चरणों पर अपना मस्तक झुकाने की कोशिश करता है किन्तु क्रुद्धा रानी भर्त्सना करती हुई चली जाती है।

चतुर्थ अंक में नायिका कर्णसुन्दरी का विवाह नेपथ्य से अलंकृत कर, वरवेष में राजा को भी सुशोभित कर रानी दोनों का पाणिग्रहण कराती है। इसी समय राजा के दूत का आगमन होता है जो राजा के चक्रवर्ती होने की घोषणा करता है। भरतवाक्य के पश्चात् पात्र चले जाते हैं।

इस नाटिका में यद्यपि रत्नावली का अनुकरण है, (वासवदत्ता सागरिका के वेश में राजा से मिलने जाती है। इस नाटिका में रानी कर्णसुन्दरी के वेश में) तथापि विद्धशालभंजिका का प्रभाव अधिक लक्षित होता है।

पर्याप्त साम्य के स्थल निम्न हैं —

विद्धशालभंजिका	कर्णसुन्दरी
स्वप्नः सिमेर्गास्म् सविस्मितुगाशात् मानं स्मिते दुभवाम्मरः मन्यदेव। दृष्टो—रत्नायचाली प्रत्यान्तरे वलिनहारलता निलम्ब मनाहन-स्पन्दित वेगतरङ्गितादी। देवी प्यसस्य सदनं धनमाननन्तु रन्तपुर गतवती सह सौविदल्लैः।[1]	स्वप्नोऽपी निपुणेन्दु...भार मवा-दीनि न पत्य—दृष्टा मुर-गेशा —संविदिन्नह शासारं निगदित नो दर्शितः मधमः। कामाविन्युपहासगा-मिनन्या प्रस्तोऽपि नाविदूनः। नियाग परिवृन्त कि तु ग्रागरैः स्वामीकृतप्रत्यागमना-नारन्नमयप्रदीप किरणश्रेणि-विमुक्तस्तवा।
पणभायामंजगामनमहम्मथ धन्याण मउत्रामम् उअसीअ क्षमिण खिडाचिसपादुवारेण पमोमउम्याण-पविसिम[2]	इदो सेवागदणविन्दमहम्मसकिण्ण विनाम गाचिमनेन्नोरमुन्दरजण सत्याणगण परिहरिअ रण-चडुआ रिसाए खिडकिआदो पीसरीआ[3]

किसी भी कवि का व्यक्तित्व कितना उच्च एवं महान् है इसका महत्वपूर्ण संकेत इस बात से मिलता है कि उसने उत्तरवर्ती कवियों अथवा काव्यरूपों पर अपनी कितनी तथा कैसी छाप छोड़ी। उपर्युक्त चर्चा से राजशेखर के नाट्य-साहित्य की महत्ता स्पष्ट हो जाती है।

काव्यशास्त्रीय साहित्य

काव्यमीमांसा में संस्कृत साहित्य शास्त्र की सुदीर्घ परम्परा के परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप का दर्शन होता है। पूर्ववर्ती आचार्यों के विचार, उनका

१ विद्धशालभंजिका १–२१, कर्णसुन्दरी १–३१।
२ विद्धशालभंजिका १–१९, कर्णसुन्दरी १–४०।
३. विद्धशालभंजिका १–१२, कर्णसुन्दरी १–४८।

यथावसर समर्थन एवं खण्डन काव्यमीमांसा ग्रन्थ में विद्यमान है, किन्तु कवि-शिक्षा-सम्प्रदाय काव्यशास्त्र के लिए सर्वथा नवीन है । राजशेखर की इसी मौलिकता का प्रभाव परवर्ती आचार्यों पर स्पष्ट देखा जा सकता है । कतिपय आचार्यों ने इस सम्प्रदाय के कुछ विषय शब्दशः ग्रहण किये हैं ।

चतुर्दश, पञ्चदश एवं षोडश अध्यायों में वर्णित कवि-समय को जिन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है, वे आचार्य हैं—१. जिनसेन, २. अमर, ३. देवेश्वर, ४ केशव मिश्र, ५ हेमचन्द्र एवं ६. वाग्भट ।

आचार्य हेमचन्द्र एवं आचार्य वाग्भट ने राजशेखर वर्णित अर्थव्याप्ति, हरण, देश-विभाग एवं काल-विभाग विषयों को शब्दशः उद्धृत करने में गौरव समझा है । परिशिष्ट में संलग्न सूची से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी । यहाँ केवल अध्याय एवं पृष्ठों का निर्देश किया जा रहा है[1] ।

विषय	काव्यमीमांसा राजशेखर	काव्यानुशासन-विवेक हेमचन्द्र	काव्यानुशासन-वृत्ति वाग्भट
काव्यार्थ योनि.	अ० ८ पृ० ३५-४१	अ० १ पृ० ५, ६, ७, ११	अ० १ पृ० ५, ६,
अर्थव्याप्ति	अ० ९ पृ० ४२-४८	अ० ३ पृ० १२२, १२३	अ० ४ पृ० ६०-६१
हरण	अ० ११-१२-१३ पृ० ५६ ६४	अ० १ पृ० ८-१०	अ० १ पृ० १२-१३
देश विभाग	अ० १७ पृ० ८९ ९८	अ० ३ पृ० १२६-१३०	अ० १ पृ० ३-४
काल-विभाग	अ० १८ पृ० ९८ ११२	अ० ३ पृ० १३०, १३५	अ० ४ पृ० ६५-६७

राजशेखर एवं विश्वनाथ

काव्य-पुरुष के अङ्ग-प्रत्यङ्गों का निर्देश करते समय राजशेखर ने रस को काव्य की आत्मा माना है । परवर्ती आचार्यों में विश्वनाथ भट्ट राजशेखर से सर्वाधिक प्रभावित हुए । उन्होंने काव्य लक्षण में ही 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कहकर रस की अनिवार्यता को स्पष्ट किया है । राजशेखर द्वारा प्रणीत काव्यमीमांसा की समन्वयात्मक रचनाशैली की अनुकृति मम्मट के ग्रन्थ में उपलब्ध होती है । आचार्य विश्वनाथ का नाम भी साहित्य दर्पण में समन्वयात्मक प्रणाली का प्रणयन करने के कारण उल्लेखनीय है । दोनों ही आचार्य राजशेखर के ऋणी हैं ।

ही का स्थान ऊँचा ठहरता है । परन्तु भर्तृमेण्ठ की एक मात्र कृति 'हयग्रीववध' अनुपलब्ध है । अत. सस्कृत साहित्य मे हम उनका स्थान, अथवा राजशेखर से उनकी तुलना करने मे असमर्थ है ।

भवभूति एवं राजशेखर : कहा जा चुका है कि राजशेखर अपने को भवभूति का अवतार मानते हैं । यह सत्य भी है क्योंकि 'बालरामायण' मे महावीरचरित से समानता रखने वाली इतनी अधिक पक्तियाँ उपलब्ध है कि लगता है कि भवभूति ही पुन राजशेखर के रूप मे अवतरित हो गये है । कवि के काव्य-कौशल, अभिव्यञ्जना एव शिल्प आदि पर भवभूति की अमिट छाप दिखायी देती है ।

कालिदास एवं राजशेखर : राजशेखर ने कविकुलगुरु कालिदास के भावो को भी यथास्थान ग्रहण किया है। जिनका निर्देश नाटक के प्रसग मे हो चुका है । कालिदास के काव्य मे प्राय कोमल तथा ललित उपादानो की 'अभिव्यजना' हुई है । प्रकृति-वर्णन मे भी वे प्रकृति के सौम्य रूप का ही चित्रण करते है । राजशेखर ने केवल सौम्यरूप का ही वर्णन नही किया अपितु वे प्रकृति के रौद्ररूप की भी झाँकी प्रस्तुत करते है । कालिदास व्यजना-प्रिय है । राजशेखर अभिधा प्रेमी हैं । वे अपनी शाब्दी ध्वनि के श्रवण मात्र से ही दृश्य को नेत्र के सामने उपस्थित कर देने की क्षमता रखते है ।

वाल्मीकि से प्रेरणा पाकर, मेण्ठ की वक्रोक्ति को अगीकृत कर तथा स्वय को भवभूति मे विलीन कर राजशेखर ने 'बालरामायण' की सर्जना की । इसके अतिरिक्त नाटिका एव सट्टक नामक उपरूपक का भी उन्होंने प्रणयन किया ।

राजशेखर की उपलब्धि

सस्कृत-साहित्य मे नाटिकाओ का शुभारम्भ श्रीहर्ष ने किया है । उनकी 'रत्नावली' एव 'प्रियदर्शिका' परवर्ती नाटिकाकारो के लिए आदर्श बन गयी है किन्तु इन नाटिकाओ पर कालिदास के मालविकाग्निमित्र की छाया स्पष्ट झलक रही है । इनके अध्ययन से विदित होता है कि अन्त पुर की प्रणयलीलाओ का उद्घाटन इनका प्रमुख लक्ष्य है । अत अन्त पुर से सम्बन्धित पात्रो की सख्या एव उनके कार्य नियत होते है । नायक-नायिका के अतिरिक्त राजा-रानी के परिचारकगण, विदूषक, राज्य के कर्मचारी, मत्री तथा स्त्री-पात्रो मे महादेवी की प्रमुख भूमिका के साथ दूती, प्रतिहारी परिचारिका आदि का नियोजन किया जाता है । राजशेखर ने इस परिपाटी का पालन किया है किन्तु प्रसगानुसार परम्परा मे मौलिकता का भी आविष्करण किया है । हर्ष एव कालिदास

अध्याय में अलंकार-शास्त्र की षडङ्ग के समकक्ष प्रतिष्ठा, काव्य की पन्द्रहवीं विद्या के रूप में स्थापना, साहित्य की पञ्चमी विद्या में गणना, काव्यपुरुष की अवतारणा, साहित्य विद्या-वधू द्वारा काव्य-पुरुष की खोज में रीति-वृत्ति-प्रवृत्ति की गवेषणा, कवि की दिनचर्या, कवि-भेद,काव्यार्थ योनियों में चार अन्य स्रोतों का प्रवेश, हरण एवं कविसमय का विस्तृत विवेचन आदि समस्त विषय राजशेखर के उर्वर मस्तिष्क की उपज हैं । जिन विषयों का केवल संकेत-मात्र है, वे हैं— वैनोदिक एवं औपनिषदिक प्रकरण । इनके संकेत मात्र से मौलिकता की प्रतीति होती है । इस प्रकार शास्त्रीय विश्लेषण में राजशेखर ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है ।

राजशेखर एक स्वतन्त्रचेता आचार्य थे । उन्होंने, भरत, वामन, उद्भट, रुद्रट एवं आनन्दवर्धन की मान्यताओं को परिमार्जित एवं प्रतिष्ठापित करने का श्रमसाध्य कार्य भी किया था । उनकी यह विशेषता उनकी समन्वयात्मक प्रणाली में दृष्टिगत होती है । आनन्दवर्धन ने प्रतिभा को श्रेयस्कर माना है । वे कहते हैं कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों ही समान रूप से श्रेयस्कर है । "*प्रतिभाव्युत्पत्ती मिथः समवेते श्रेयस्यौ इति यायावरीयः ।*"[1] इसी प्रकार रस के विषय में पाल्यकीर्ति और अवन्तिसुन्दरी के विभिन्न मतों का उन्होंने मंजुल समन्वय किया है ।

कुछ विद्वान् एक लोक की, कुछ दो की, तीन की और कुछ तो सात से इक्कीस लोकों तक की कल्पना करते है । राजशेखर ने "सर्वमुपपन्नम्" कहकर सभी को स्वीकृति प्रदान की है । उनका जिस स्थल पर आचार्यों में मतभेद है वहाँ वे स्पष्ट शब्दों में असहमति प्रकट करते हैं । वे किसी भी बात को अपनी तर्कबुद्धि की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार करते हैं ।

भरत मुनि को आचार्यत्व प्रदान करने वाला रस-सिद्धान्त है । किन्तु यह सिद्धान्त केवल नाट्य-रस से सम्बद्ध है । राजशेखर ने भरत मुनि के इस सूत्र पर रस-सम्प्रदाय का भव्य प्रसाद खड़ा करने की योजना बनायी । उन्होंने आचार्य भामह और दण्डी के शब्दार्थमय शरीर को काव्यपुरुष के रूप में मूर्त स्वरूप दिया है । वे वामन की रीति विषयक मान्यताओं से सहमत हैं तथापि उन्होंने रीति, प्रवृत्ति और वृत्ति के उद्गम की कल्पना प्रस्तुत कर वामन की रीति को और भी परिमार्जित कर दिया है । साहित्य-शास्त्र के क्षेत्र में इनका महनीय कार्य

१ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १६ ।

परिशिष्ट १

राजशेखर की पुनरुक्तियाँ

श्लोक	बाल-रामायण	बाल-भारत	विद्धशाल-भंजिका	कर्पूर-मंजरी	काव्य-मीमांसा
१ अकरुणमकुण्डलम्			३।१२	३।२६	
२. अनुकूल हिर्दैव	१।५–६		४।२०–२१		
३. अयि पिबत चकोरा	५।७५		३।१५		
४. आपन्नार्तिहर	१।१८	१।११			
५. आद्य कन्दो वेद–	१।१४	१।३			
६ उत्तालालक भजनानि	२।२३		२।५		
७. कण्ठे मौक्तिकदाम–		१।२७	३।१६		
८. कर्णे स्मेरशिरीषम्	५।२६				१८।१११
९ गत स कालो	३।२				७।२१
१० गर्भग्रन्थीषु वीरुधाम्	१।२३		१।२३		१८।१०८
११. तद्वक्त्र यदि मुद्रिता–	२।१७		१।१४		
१२ तनुलग्ना इव ककुभा			३।६		
१३ तरगय दृशो मनाक्	३।२५		३।२७		
१४ दन्तोलूखलिभि	१०।५८	१।१९			
१५ द्विर्व्योम्नि पुराण–			१।११		१७।१५
१६ धत्ते यत्निन	७।३८, १०।४४				९।४५
१७ धृया हि नाम नाट्यस्य	१।१९–२०	१।१३–१४			
१८. निर्यद्भामर जीवपौष्ट–		१।२२	२।२२		
१९. पातु श्रोत्ररसायनम्	१।१७		१।७		
२० पाणिग्रस्थैवंकुल–	३।२९	१।६५			
२१. प्रेयान् मे दलितस्न–	८।११		४।२३		
२२. प्रथयति पात्रविशेषान्	१।२०	१।१४			

२३. बभूव वाल्मीकि–	१।१६	१।१२		
२४. ब्रह्मोभ्य. शिवमस्तु	१।१०	१।५		
२५. मया मूर्धि प्रह्ने	६।११– १६		४।६	
२६. मयि शिशिरतरो:	१।४–२७		४।५	
२७. मृल बालधि वीरधाम्			४।५	१७।१६
२८ यादामि हे चरत	७।४५			
२९ या स्त्रीणामपि	७।३९,१०।४६			
३०. यत्खात मगरेण	७।३१,७।४३			१४।८०–
३१. यन्त्रद्रावित–	३।१४			८१
३२. येमीमन्तितगात्र–		१।२		१३।७१
३३ योगीन्द्रश्छन्दसा	१।९	१।१५		
३४ राजसूयव्रतोर्यज्वा	२।७	२।१३		१८।१९
३५. लम्पाकीना किरन्त.	५।३५			
३६ वीराचण्डमिदण्ड	३।४८,७।६८			
३७ धिय प्रभूते		१।९	१।८	८।३८
३८ तमव्यायाम्याम्	१।२८			
३९ सपदि सखीनिभुनम्	५।४१		१।२४	
४० मद्यश्चन्दनपक–	१०।४०		३।२	१८।१७–
४१. साम्य सम्प्रति	५।४०		१।२५	१०९
४२ मूत्रधारचलद्–	५।६,७।७७		३।२	
४३ सौधादुद्विजते	५।१०			
४४. हारोऽय केरल–		२।१५	१।१७	

२ अन्य ग्रन्थों मे राजशेखर का उल्लेख तथा उद्धरण ·

(१) अभिनवभारती . अभिनव गुप्त — भ २ पृ० ३२०

१ यथा बानराभायणे इत्यादिना। — भ २ पृ० २९५

२ राजशेखरेण युवनामित्यर्थ। — भ १ पृ० २९

३ शत्रुहृदय महत् इत्यादौ

पृष्ठ

(२) दशरूपक : धनजय

(३) वक्रोक्तिजीवित कुन्तक

(८) अलंकारसर्वस्व : रुय्यक

१. इन्दुलिप्त इव — १९२
२. इन्दोर्लक्ष्म — २०८
३ कर्पूर इव — २३५
४. चकोर्य एव — ११९
५ दाहोऽम्भ. प्रमृतिम्पच — १०७
६. दृशा दग्धम् — २५८
७. न्यचतकुश्चित– — २९४
८. पृथ्वि स्थिरा भव — २०३
९. लोकोत्तरं चरित– — २०२

(९) काव्यानुशासन वाग्भट

१. व्युत्पत्ति (काव्यार्थ योनि) — अध्याय १ ५,६
२. प्रकृति (अर्थव्याप्ति) — " ४ ६०,६१
३. हरणम् — " १ १२,१३
४ कविसमय — " १ ७ से १२
५. देश. — " १ ३-४
६. काल — " ४ ६५,६७

(१०) काव्यानुशासन · हेमचन्द्र

१. व्युत्पत्ति (काव्यार्थयोनय) — " १ ५,२८
३०,१६,१७
२ प्रकृति (अर्थव्याप्ति) — " ३ १२२,१२३
३ हरणम् (उपजीवन शिक्षा) — " १ ८,१०
४. कविसमय — " १ ११ से १६
५. देश — " १२६,१३०
६. काल — " ३ १३०,१३५

(११) काव्यकल्पलता · अरिसिंह एव अमर

१. कविसमय — ३०,३१

(१२) अलंकारचिन्तामणि . जिनसेन

१. कविसमय — ७,८

(१३) काव्यकल्पलता—देवेश्वर

१. कविसमय — ४०,४२

राजशेखर

(१४) साहित्यदर्पण · विश्वनाथ

		३।१६५
१.	सद्य. पुरीपरिसरेऽपि	३।२३४
२.	भो लकेश्वर	४।१०
३.	आहारे विरति.	६।२०
४.	श्रवणं. पेयमनेकै.	६।२०७
५.	कालरात्रिकरालेऽयम्	६।२०८
६.	अत्रासीन् पणंपाश–	७।८
७.	चापाचार्यस्त्रिपुर–	७।११
८.	उदन्वच्छन्ना भू	१०।३६,१०।५
९	आज्ञा शक्रशिखामणि–	१०।३६,१०।५
१०.	दशादग्घ	१०।६९
११.	चर्वार्य एव	१०।५८
१२	इन्दुलिप्त इव	१०।६१
१३	पृथिव स्थिरा भव	१०।८३
१४.	तद्वत्त्र यदि	

(१६) अलकारमहोदधि नरेन्द्र प्रभसूरि

		१५७
१	आज्ञा शक्रशिखा–	२६६
२.	आहारे विरति	७०
३	इन्दुयदने शशिनि	२८३
४	इन्दुलिप्त इव	२९१
५	इन्दोर्लक्ष्म त्रिपुरजयिन	१३३
६	उदन्वच्छन्ना भू	३४८
७	कपाले मार्जार	२९,६,५
८.	कर्पूर इव	२६,१५६
९	चापाचार्य	१८८
१०.	चिते यद्यपि	१३७
११.	ज्योत्स्ना गिर्मा	१३६
१२	नगराय इत्यादनने	

१३. दृशा दग्धम्	३०३
१४. गाहन्ता महिषा	१३४
१५. निर्माल्य नयनश्रिय.	९७
१६. फुल्लुक्कर कलमकूर	१७०
१७. अच्चन्द्रकोटिकर	१९५
१८. श्यामा श्यामलीमान.	८४,१६१
१९. सवधी रघु–	२४८
२०. श्रोणीबन्ध–	३०२

(१५) अलंकार कौस्तुभ . विश्वेश्वर पण्डित

१. अकुकुमचन्दनम्	३१३
२ इन्दुर्लिप्त इव	२८७
३. दूरे किज्जहु	३९१
४. दृशा दग्धम्	४०८
५. पर जोण्हा	३२२
६. यद्बोताजन–	३५२
७ किसलयकरण–	३३२

(१६) कुवलयानन्द . अप्पयदीक्षित

१. इन्दोर्लक्ष्म	२३१
२ दृशा दग्धम्	१७३
३ श्रोणीबन्ध	१८०
४ सुधाबद्ध–	४६

(१७) चित्रमीमासा · अप्पयदीक्षित

१. सुधाबद्ध–	१६३
२ स. व पायादिन्दु	२७८
३. दाहोऽम्भः	३२०
४. कपाले भार्जार	२२०
५ अस्मद् विषम–	२५२
६. इन्दुर्लिप्त इव	२५१

३. राजशेखर द्वारा अन्य ग्रन्थों के उद्धरण

	ग्रन्थ	ग्रन्थकार	काव्यमीमांसा पृष्ठ संख्या
१	ऋग्वेद	—	६,२८
२.	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास	१२,२४
३	रघुवंशम्	कालिदास	१२,४१,७६,८५
४	कुमारसंभवम्	कालिदास	१२,४०,४४,४८,८१,८४,९६
५.	वेणी संहारम्	भट्टनारायण	१९,३२
६.	एतरेय एवं शतपथ		२५,३५
७	निरुक्तम्		२८
८	किरातार्जुनीयम्	भारवि	३२,५८,७०,८५
९	महानारायणोपनिषद्	—	३५
१०.	सूर्यशतकम्	मयूरभट्ट	३५,९५,९९,
११.	विक्रमोर्वशीयम्	कालिदास	३५
१२	रामायणम् (किष्किन्धा-काण्ड)	वाल्मीकि	३६
१३	जानकीहरणम्	कुमारदास	३६
१४	वायुपुराणम्	—	३६
१५	शिशुपालवधम्	माघ	३६,४२,४२,५४,६०,८६
१६	भगवद्गीता	व्यास	३७
१७	महिम्न स्तोत्रम्		३७
१८	कामसूत्रम्	वात्स्यायन	३९,६७
१९	मालतीमाधवम्	भवभूति	४८,८६
२०	अमरशतकम्	अमरुक	४७
२१	वृन्दावन यमककाव्यम्		५७
२२.	नारदस्मृति		५९
२३	गोडवहो	वाक्पतिराज	६२
२४	विज्जका		६७
२५.	कादम्बरी	बाणभट्ट	७६,८८
२६.	मेघदूतम्	कालिदास	८६,९६
२७	तैत्तिरीय संहिता		९९

४. राजशेखर के नाटकों के सुभाषित

प्राकृत-सुभाषित

१. अण्णोण्णमिलिदस्स मिथुणस्स मअरद्धअसामण्णेण पच्छ पणअग्गठि प्रेम्म ति छइल्ला भणन्ति ।
२. अण्ण णिमित्तमिह किं पि तमत्थि मण्णे जेणगणाओ हिअहिअण ओमरन्ति।
३ अहिदेवअ व्व णिवमइ तह विहु तास्णाए लच्छी ।
४ आरभरमणिज्जाइ कल्लाणाइ होन्ति ।
५ अहवा का वण्णणा वडलावली गधभारवई
६ अदेव देवउन, अनक्खरो लेहो, जदो न दीसदि सा ।
७ एद त सीमे सप्पो देसतरे वेज्जो ।
८. कद्य अज्ज वि सो ज्जेव मिरिताली पत्तसचओ ताओ ज्जेव सक्खरपन्तीओ ।
९. को अण्णो चदाहितो समुद्दवडण विअडो ।
१०. कि तुम भज्जाजिदो विअ किंपि किंपि कुरकुरामन्तो चिट्ठासि ।
११ किं ण् वक्त्र अणभिण्णसि वदप्पचरिआण । ज दाणि णव णव कोउहल कामिजणे ।
१२ कि गदे सलिले सेदुवधेण कि वा वुत्ते विवाहे नक्खत्तपरिक्खाए ।
१३. कि उव्वेल्लदि केलिदलीए करिशुण्डादडविडो ।
१४ कि विअ मक्कडो वरिट्ठाणं करणिज्ज पुच्छदि ।
१५ कघ महाभाअघेअजणकज्जसिद्धि विअ चिन्तनोवणदा पिअसही ।
१६. तुम भण दाव उण अह भणिस्स । पडिम गहप्पारमजरी ।
उव्विज्जईपच्छा तु कलकठी मुह मिहिलेदि ।
१७ ण हु गोवाणवनिभतरेण वनही समारोहो ।
१८. मुणिणो वि एवमुमरन्ति, पादाहितो वहूण पडिस्समति सम्ब ।
१९ तुम ज्जेव्व सव्वदो भार उव्विसि । हसो ज्जेव जलेहि दुद्धमुद्धेरहि ।
२०. पुराणपत्तमणिबन्धनिअ गो पल्लवो समुल्लसदि । ण अ-तुण्णदिवस्स अक्कदली कमलणलुद्धो गंधहत्थि मदणवेदारिआए अहिरमदि ।
२१ केअई कुसुमवासिदम्स गदिरम्स अण्णे गधुमारो ।
२२ ता मम विच्छुरदि तुण्डरण्ड ।
२३ पारअरसकुविअ विअ गुवण मे सावण्ण ।
२ मते बल्लमट्ठीए गुरागइमलेसो कुसुमेसु मअरागदुगारेहि ।

२६ ण हि मिणहो जुत्ताजुत्तमनुन्धेदि ।

२७. कथं विग्र सहग्रारलट्ठीए कलकठा कुठिदप्पणग्रा होदि ।

२८ तहा वि भणीग्रदि, सुदमतमखग्रणं कखु कज्जसिद्धीए कारणम् ।

२९ कथ विग्र जीग्रलादो किकलामादो सिरसुवण्ण पावीग्रादि ।

३०. ण कखु मिग्रलछणमुज्झीग्र ग्रण्णेण ममिकलपुत्तलिग्रावद्धणिज्झरा वज्झरइ ।

३१ ण विण चद मेहालिग्राए विग्रसति कुमुमाइ ।

३२. ता चिरपाइदव्वा जुण्णमज्जरी दुद्ध त्ति कजिग्र ।

३३ पोम्मराग्रमणि एव्व एग्रावलि ग्रलकरेदि ।

३४ गहु ग्रण्णी डिग्रो सहग्रारपिट्ठगठी रमसव्वस मुचदि ।

३५ एसो ग्रवरो गडस्स उवरि फुडिउब्भेदो ।

३६ कोञ्चिर वा चदे पमादिदकरे ग्राविमट्टकदोट्टा णीलुप्पलिपी चिट्ठदि ।

३७ घर तक्कालोवगदा तित्तिरी ण उण दिग्रहतरिदा मोरी ।

३८ महि कोसल्ले ण सव्वो रामभद्दो णग्ररे णग्ररे केकेयी ।

३९ हत्थे कंकण किं दप्पणेण ।

४० धावतस्स तुरगमस्स णिग्धत्तणे किं साक्खिणो पुच्छीग्रति ।

४१ ण वत्थूरिग्रा कुग्गामे वणे वा विक्कीणग्रदि, ण सुवण्ण कसवट्टिग्र विणा कसीग्रदि ।

४२ णिसगचगस्स वि माणुसस्स सोहा समुम्मीलइ भूसणेहि ।

४३ णहु विदुरभूमि ग्रन्तरेण वेरुलिग्रमणिसलाग्रा णिप्पज्जदि ।

४४ दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए ।

४५ हरिग्रदगुरीव दिण पणट्ठा घ ।

४६ दरविग्नालिग्रपणीसु पुणो विवमई ममरद्धमरहस्स ।

४७ रित्तणदावग्गी विरमउ कमलाग्रइक्खत्तरिसेण ।

४८ रडी वा खडणा ।

४९ छेग्रा पुणो पमडचगिमभाविणिज्जा ।

५० जादिसो चितपरो तादिसो चित्तसम्मरपमोहो, जादिसो कई तादिसो कव्वबन्धछ मत्ति ।

संस्कृत-सुभाषित

१. ग्रनभिज्ञमन्दा हि गुणवत्ता वर्णादानाम् ।

२. रमन्तरणे तुषा कि परदर्शनाटनम् ।

३. सविघ्नविघ्नप एव काम्यक्रियारम्भाः ।

४. अनिर्वेदः सिद्धेर्मूलम् ।

५. अनुकूलं हि दैवं सर्वस्मै स्वस्ति करोति ।

६. अविमृश्यकारिता हि पुंसः परं परिभवस्थानम् ।

७. क्व नु पुनः सर्वत्र सर्वे गुणाः ।

८. सुप्ततप्तकुपितानां हि भावज्ञानं द्रष्टव्यम् ।

९. सत्यं सत्यमिदं गीयते दुस्त्यजा प्रकृतिरिति ।

१०. हन्त हन्त नैकप्रकारो मदन-व्यापारः ।

११. न प्राणनिर्याणेऽप्यनुचितभावा भवन्ति भृत्याः ।

१२. अतिक्रान्ते वस्तुनि साक्षिप्रत्ययपरतन्त्रा व्यवहाराः ।

१३. आत्मवधः प्रथमः पातकेषु ।

१४. असतामपि महापुरुषशुश्रूषा किमपि कामदुघा ।

१५. आयुधनिषेध्या रिपवो न मामसाध्याः ।

१६. न विना हिमानीमचण्डो मार्तण्डः ।

१७. निरंकुशा कविवाचः ।

१८. स हि चन्द्रमसोऽनुभावो यदस्य ग्रावाणोऽपि निस्यन्दन्ते ।

१९. न च सदेहदेहो वीरव्रतनिर्वाहः ।

२०. अनाकलितसारा हि वीरप्रकाण्ड-प्रसूतिः ।

२१. सेयं कवीनां वचनकामधेनुः । यदसनभूतमपि सूते ।

२२. डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम् ।

२३. न हि तरणि किरणस्पर्शादन्यो व्याधिरिन्दीवरवनस्य ।

२४. काललाभो हि नयविदां प्रयोगग्राम कदलयति प्रयोग परतन्त्रा च कार्य-सिद्धिः ।

२५. ईर्ष्यायित हि स्त्रीणां प्रकाशकं प्रेमभरस्य ।

२६. किं हि दुष्करं साधुमेते किमसाध्यं वैदग्ध्यस्य ।

२७. अयमपरः क्षते क्षारावसेकः ।

२८. देवि, दैवं शिक्षयति ।

२९. न. शक्तिमानपि मृगारिमूर्त्ति शिलां पट्टके पिनष्टि ।

३०. सुप्तस्यापि महान् निनदः प्रतिबोधहेतुः ।

३१. अहो सर्वंकोटराण्यन्वेषमाय ।

३२. स कन्दकस्कान्तमणेः प्रभावो यदसौ द्रवति ।

३३. किमन्याम्भं जलदनिरसकरिणी मार्तण्डमण्डलमन्तरयति ।

३४ परिपालना हि भृत्यान् स्वामिन. स्मारयति न गुणग्राम' ।
३५ सर्वो गुणेषु रज्यते न शरीरेषु ।
३६ प्रकृष्ट हि तप. कामदुघम् ।
३७ आलिप्यते आनृगाले मर्त्याण्ण सोऽपि चन्द्रमा. ।
३८. एकविषयाभिलाषो हि वैरकन्द कन्दलयति ।
३९. अनूचानो हि यद्वूते सा स्वयभू. सरस्वती ।
४०. यत्सत्यं मदिरा विनैव मदनो यूना मनोन्मादभू: ।
४१. अहो महात्मनामपि कैतवानुगृहीता वृत्तय ।
४२. संशये न च सतां प्रवृत्तय' ।
४३. शरीरधना हि राजान' ।
४४. किन्च एकस्मिन्नपराद्धेऽपि तत्सहचारिणोऽप्यपराद्धार. ।
४५. आकृतिमनु गृह्णान्ति गुणा ।
४६. न प्रेम नव्य सहतेऽन्तरायम् ।
४७ वैषम्यमेव वा विष विषस्य
४८ न चित्रशिखण्डिदाम्ना विना चकास्त्युदीची ।
४९. लेखमुखा एव लेखवाहा भवन्ति ।
५०. को हिनाम द्यूतजितानामुद्विजते मौर्ख्येण ।

नाट्यकृतियों मे प्रयुक्त छन्द

			बाल-रामायण	बाल-भारत	कर्पूर-मञ्जरी	विद्धशाल-भञ्जिका	सख्या
१.	शार्दूलविक्रीडित		२०८	४१	२४	३९	३१२
२.	वसन्ततिलका		१६३	२५	२३	११	२२२
३.	अनुष्टुभ्	.	१२८	२५		३	१५६
४	स्रग्धरा	.	९४	१२	११	१०	१२७
५	मन्दाक्रान्ता		६९	५	५	३	८२
६	मालिनी		३८	५	७	१२	६३
७	आर्या	..	१६	२	३२	१२	६२
८	पृथ्वी	.	७	७	७	६	२७
९	रथोद्धता	.	१	१२	९		२२
१०.	इन्द्रवज्रा		९	१	४	५	१९
११.	वंशस्थ	.	१३	१	१	१	१६
१२.	उपजाति	..	८	.	७	.	१५
१३.	पुष्पिताग्रा	.	५		२	२	९
१४.	उपेन्द्रवज्रा	..	३	..	३	२	८
१५	स्वागता	..	१	..	४	१	६
१६.	शालिनी	..	४	१	१	..	६
१७.	शिखरिणी	..	४	..	१	..	५

१८	हारिणी	..	२	१	..	१	४
१९.	प्रहर्षिणी	..	४	..	..	..	४
२०.	रुचिरा	..	३	..	..	..	३
२१.	गीति	..	१	..	२	२	५
२२.	उपगीति	..	१	..	१	१	३
२३.	हरिगीति	..	..	..	..	१	१

बालभारत

छन्दो विवरण

	छन्द का नाम		अंक १	अंक २
१.	शार्दूलविक्रीडित	..	२, ५, ६, ११, १६, १९, २२, २३, २६, २७, २९, ३३, ३४, ३५, ३८, ५०, ५२, ५५, ६२,६२,७०,७१, ७७, ७८, ८२, ८५ ।	२, ४, ८ , १०, ११, १४, १७, २३, २७, २९, ३१, ३४, ३९, ४३, ५० ।
२.	वसन्ततिलका	..	३७, ४१, ४४, ४७, ४९, ५३, ५७, ५९, ६८, ७२, ७४, ७६ ।	९, २२, २४, २५, २६, २८, ३०, ४१, ४५, ४७, ४९, ५३, ५४ ।
३.	अनुष्टुभ्	..	१, ४, १०, १५, १८, ३६,४०, ४३, ४६,६१, ६४,६७, ८१, ८६,८८ ।	७, १२, १३, १६, १८, ३२, ३५, ३६, ४२, ४४ ।
४.	रथोद्धता	..	८, २४, ३९, ४२, ४५, ४८, ५१, ५४, ६०, ६३, ६६, ६९ ।	..
५.	स्रग्धरा	..	२५, ७३, ७५, ८४ ।	१, १५, ३६, ३८, ४६, ४८, ५१ ।
६	पृथ्वी	..	३१, ८९ ।	३, १९, २०, २१, ५२ ।
७.	मालिनी	..	६,२१,३२,५६,८०,८७ ।	..
८	मन्दाक्रान्ता	..	२८, ६५, ७९, ८३ ।	४० ।
९.	उपेन्द्रवज्रा	..	९, २० ।	..
१०	आर्या	..	१०, १४ ।	
११.	इन्द्रवज्रा	..	१७ ।	..
१२.	हारिणी	..	३० ।	..
१३	वंशस्थ	..	१२ ।	..
१४	शालिनी	..	३ ।	..

विद्धशालभञ्जिका

छन्द का नाम		अंक १	अंक २	अंक ३	अंक ४	कुल
१. शार्दूलविक्रीडित		३, ७, १०, ११, १४, १५, २२, २३, २५, २९, ३३, ३९, ४०, ४३.	१, ५, ११, १२, १४, २०, २१, २२, २३.	१, २, १०, ११, १३, १४, १६, १९, २२.	५, ८, ९, १४, २०, २५, २६.	३९
२. आर्या	..	१६, २४, २६, २८.	१५, १६, १७, १८, १९.	६.	१५, १६.	१२
३. मालिनी	.	१, १८, ३०, ३६.	१०.	३, १५, १७.	२, ७, १७.	१२
४. वसन्ततिलका	..	१०, १९, २१, ३२, ३८, ३७, ३८, ४१.	३, ६, ९.	२१, २३.	..	११
५. शिखरिणी		२०, ३१, ४४.	७.	९.	३, १२, १८.	८
६. स्रग्धरा		९, १२, १७, २७.	८.	७.	२१, २२, २३, २४.	१०
७. पृथ्वी		.	६, १३.	१२, २०.	१, ४.	६
८. इन्द्रवज्रा	.	३५.	..	४, ५.	१३, १९.	५
९. अनुष्टुभ्		२, १३.		..	२१.	३

१०.	मन्दाक्रान्ता	..	..	२४, २५.	१०.	३
११.	पुष्पिताग्रा	६, ४२.	..	..	५.	१
१२.	गीति	४, ५.	..	..	..	२
१३.	वंशस्थ	..	..	१८.	..	१
१४.	उपगीति	..	..	२६.	..	१
१५	स्वागता	..	..	..	११.	१
१६.	हरिगीति	..	..	८.	..	१
१७.	हारिणी	..	..	२०.	..	१
१८.	उपेन्द्रवज्रा	८.	..	..	..	१
		४८	२३	२७	२०	१२१

कर्पूरमञ्जरी

	छन्द का नाम	अंक १	अंक २	अंक ३	अंक ४	कुल
१.	शार्दूलविक्रीड़ित ..	१, १३, १६, १७, १८, २०, ३६, २९.	१, ३, ८, २७, २९, ४६.	१, ३, २५, २७.	४, ९, २२, २३.	२४
२.	मन्दाक्रान्ता ..	३०, ३३.	२, २३, ३०.	..	..	५
३.	वसन्ततिलका ..	१४, १९, २१, २४, २५, २७.	४, ५, ६, २६.	९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, २२.	५, ८, २१.	२३
४.	स्रग्धरा ..	४, १५, २६.	१०, २८, ३१, ४१, ५०.	१९, २८, २९.	३०.	१२

५.	पुष्पिताग्रा	२.	..	..	२.	२
६.	आर्या	३, ५, ७, ८, ९, १०.	१२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, ४०, ४३, ४३, ४८, ४९.	८.	१, १९	३२
७.	गीति	६.	..	..	२४.	२
८	रथोद्धता	११.	७.	२१, २३, २४, ३१, ३२, ३३, ३४.	..	९
९.	स्वागता	१२.	.	..	१६, १७, १८.	४
१०.	शालिनी	२३.	.	..	..	१
११.	मालिनी	.	२४, ४४, ९.	२, ७, १८.	२०.	७
१२.	इन्द्रवज्रा	२२.	७.	५, ६.	१०.	५
१३.	उपेन्द्रवज्रा	.	..	..	१४.	१
१४.	उपजाति	३१, २८.	२५.	..	११, १५, १२, १३, १४.	७
१५	उपगीति	.	४५	..	..	१
१६	वंशस्थ	.	.	४	..	१
१७	पृथ्वी	३४	३२, ४७	२०, २६.	३, ६.	७
१८.	शिखरिणी	.	११	.	..	१
		३६	५०	३४	२४	..

राजशेखर की सूक्तियाँ

(सुभाषित ग्रन्थों में)

शिव-विष्णु प्रार्थना

यद्ब्रह्मार्धजटं यदर्धमुकुटं यच्चन्द्रमन्दारयो
धर्मं धाम च दाम च स्मितरमत्कुन्देन्दुनीलाश्रियो ।
तन्मद्वारप्रख्यासमर्धिपदं श्रीकण्ठ वैकुण्ठयो—
र्वन्दे नन्दितमृत्युशताश्चर्यगृहाशान्नामाद्भुतकं वपु ॥ (१)

शिव-नृत्य

भ्राम्यद्विश्वभराणि भ्रमिचलन-नमत्कूर्मकुम्भीनसानि
क्षुद्यत्पातालानि दिङ्गजदरणिधरशिरः श्रेणिशीर्यद् दृषन्ति ।
दिक्कीर्णाक्षपदानि द्रवदमरचमूचत्रचर्चार्पयन्ति ।
ध्वंसन्तु व्यापदं वास्त्रिपुरविजयिनस्ताण्डवा रम्भणानि ॥ (२)

शिवभाल-शोभी चन्द्र

स वः पायादिन्दुर्नवबिसलताकोटिकुटिलः
स्मरारेर्यो मूर्ध्नि ज्वलनकपिशे भाति निहितः ।
स्रवन्मन्दाकिन्याः प्रतिदिवससिक्तेन पयसा
कपालेनोन्मुक्तः स्फटिकधवलेनाङ्कुर इव ॥ (३)

गौरी (विवाह के अवसर पर)

गोनासाय नियोजितागदरजाः सर्पाय बद्धौषधिः ।
कण्ठस्थाय विषाय वीर्यमहतः पाणौ मणीन् बिभ्रती ॥
भर्तुर्भूतगणाय गोत्रजरतीनिर्दिष्टमन्त्राक्षरा
रक्षत्वद्रिसुता विवाहसमये प्रीता च भीता च वः ॥ (४)

श्री राम

मार्तण्डैककुलप्रकाण्ड तिलकस्त्रैलोक्यरक्षामणि
विश्वामित्र महामुने निरुपधिः शिष्यो रघुग्रामणी ।
रामस्ताडित ताडक त्रिभुवन प्रत्यक्षनारायण
कौसल्यानयनोत्सवो विजयते भूकश्यपस्यात्मजः ॥ (५)

लक्ष्मी

प्रवीरहठभोग्यापि जयति श्रीर्महासती ।
कृत्स्नत्रैलोक्यवासापि कृष्णोरःस्थलशायिनी ॥१॥ (६)
विष्णुवक्षोगृहे लक्ष्मीरस्ति कौस्तुभदीपिके ।
पुनातुनिवसन्ती वो दृढदोः स्तम्भतोरणे ॥२॥ (७)

लक्ष्मीशृङ्गार

मिथ्याकण्डूनिसाचीकृतगल सरणिर्येषु जातो गररमा
न्येनिद्रा नाट्यट्भि शयनफणिफणैर्लक्षिता न श्रुताश्च ।
ये च ध्यानानुबन्धच्छलमुकुलदृशा वेधसा नैव दृष्टा ।
स्ते लक्ष्मी नर्मयन्तो निधुवनविधय पान्तु वो माधवस्य ॥ (८)

कविप्रशंसा

सरस्वतीपवित्राणा जातिस्तत्र न देहिनाम् ।
व्यासस्पर्धी कुलालोऽभूद्द्रोणो भारते कवि ॥ (९)
हृता शिखिनि गौणाढ्या स्तोक शेषाऽपि साकथा ।
गुरलीढेन्दुलेखेव लोके पूज्यतमाऽभवत् ॥ (१०)
स्वस्ति पाणिनयो तस्मै यस्य रुद्रप्रसादत ।
आदौ व्याकरण काव्यमनु जाम्बवती जयम् ॥ (११)
भाम नाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावक ॥ (१२)
तौ शूद्रककथाकारौ रम्यौ रामिलसोमिलौ
काव्य ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोपमम् ॥ (१३)
पृथिव्या ग्रथिता गाथा सातवाहनभूभुजा ।
व्यदधुस्तेतु विस्तारमहो चित्र परम्परा । (१४)
सरस्वतीव कार्णाटी विजयाङ्का जयत्यसौ ।
या वैदर्भगिरा वास कालिदासादनन्तरम् ॥ (१५)
आदौ गणपति वन्दे महामोदविधायिनम् ।
विद्याधरमणेर्यस्य पूज्यते कण्ठगर्जितम् ॥ (१६)
दूरादपि सता चित्रे निमिग्नाश्चर्यमञ्जरीम्
कुलशेखरवर्माऽस्या घाराश्चर्यमञ्जरीम् ॥ (१७)
मनुप्राणिनि मन्दस्मे गोनन्दगम कुन ।
यथार्थनामनैवास्य यः वाग्दरी नामनाम् ॥ (१८)

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणा. ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ (१९)
मायुराजसमो जज्ञे नान्यः कलचुरिः कविः ।
उदन्वत समुत्तस्थुः कति वा तुहिनांशवः ॥ (२०)
जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति ।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः ॥ (२१)
पार्थस्य मनसि स्थानं लेभे खलु सुभद्रया ।
कवीनां च वचोवृत्तिचातुर्येण सुभद्रया ॥ (२२)
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥ (२३)
के वैकटनितम्बेन गिरा गुम्फेन रञ्जिता ।
निन्दन्ति निजकान्तानां न मौग्ध्यमधुरं वचः ॥ (२४)
कालंजरपतिश्चक्रे भीमट. पञ्चनाटकीम् ।
प्राप प्रबन्धराजत्वं तेषु स्वप्नदशाननम् ॥ (२५)
अहो प्रभावो वाग्देव्याः यन्मातंगदिवाकर. ।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयो ॥ (२६)
दर्पं कविभुजंगानां गता श्रवणगोचरम् ।
विषविद्येव मायूरी मायूरी वाङ् निकृन्तति ॥ (२७)
मा स्म सन्तु हि चत्वार प्रायो रत्नाकरा इमे ।
इतीव स कृतो धात्रा कविरत्नाकरोऽपर. ॥ (२८)
कर्तुं त्रिलोचनादन्यो न पार्थविजय क्षमः ।
तदर्थः शक्यते द्रष्टुं लोचनद्वयिभि. कथम् ॥ (२९)

द्विसन्धाने निपुणतां स तां चक्रे धनंजयः ।
यथा जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनंजय. ॥ (३०)

सूक्तीनां स्मरकेलीनां कलानां च विलासभू ।
प्रभुर्देवी कविर्लाटी गताऽपि हृदि तिष्ठति ॥ (३१)

बाणेन हृदि लग्नेन यन्मन्दोऽपि पदक्रम ।
प्राय. कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥ (३२)

भासो रामिलसौमिलौ वररुचि. श्री साहसाङ्क. कवि
र्मेण्ठो भारविकालिदासतरला. स्कन्धः सुबन्धुश्चय. ।
दण्डी बाण-दिवाकरौ गणपति कान्तश्च रत्नाकर. ।
सिद्धा यस्य सरस्वती यदि भवेत्के तस्य सर्वेऽप्यमी. ॥ (३३)

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥ (३४)
सहर्षचरितारब्धाद्भुतकादम्बरीकथा ।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमति क्षितौ ॥ (३५)
कृत्स्नप्रबोधकृद्वाणी भारवेरिव भारवेः ।
माघेनैव च माघेन कम्पः कस्य न जायते ॥ (३६)
वक्रोक्त्या मेण्ठराजस्य वहन्त्या सृणिरूपताम् ।
आविद्धा इव धुन्वन्ति मूर्धानं कविकुंजराः ॥ (३७)
ध्वनिनातिगभीरेण काव्यतत्त्वनिवेशिना ।
आनन्दवर्धनः कस्य नासीदानन्दवर्धनः ॥ (३८)
यायावरकुलश्रेणेर्हारयष्टेश्च मण्डनम् ।
सुवर्णबन्धरुचिरस्तरलः स्तरलो यथा ॥ (३९)
अकालजलदश्लोकैश्चित्रमात्मकृतैरिव ।
जातः कादम्बरीरामो नाटके प्रवरः कविः ॥ (४०)
अकालजलदेन्दोः सा हृद्या वचनचन्द्रिका ।
नित्यं कविचकोरैर्या पीयते न च हीयते ॥ (४१)
नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः ।
कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनम् ॥ (४२)

सत्पुरुष प्रशंसा

उदन्वच्छन्ना भूः स च निधिरपां योजनशतं
सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं गणयति ।
इति प्रायो भावाः स्फुरदवधिमुद्रामुकुलिताः
सतां प्रज्ञोन्मेषः पुनरयमसीमा विजयते ॥ (४३)
नूनं दुग्धाब्धिमन्थोत्थाविमौ सुजनदुर्जनौ ।
विन्दिवन्दो सोदरः पूर्वं कालकूटस्य चेतरः । (४४)

स्त्री

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः ।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः ॥ (४५)

सतीवर्णन

अभ्युन्यातमुपागते गुरुजनौ तद्भाषणे नम्रता
तस्याधोऽविनिबद्धदृष्टिगमनत्विधिमिन्दस्य रिक्तां स्वयम् । (४६)

गुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यः पुत्रि निवेदिताः कुलवधूसिद्धान्तधर्मा इमे ॥ (४७)
निर्व्याजा दयिते ननान्दृषु नता श्वश्रूषु भक्ता भव
स्निग्धा बन्धुषु वत्सला परिजने स्मेरा सपत्नीष्वपि ।
पत्युर्मित्रजने सनर्मवचना खिन्ना च तद्द्वेषिषु
स्त्रीणां संवननं ननु तदिदं वीतौषधं भर्तृषु ॥ (४८)

पश्चिमी प्रदेश की स्त्री

यत् गच्छति तरङ्गतरलभ्रूनेत्रमालोकितु
रम्यं स्थातुमनादरार्पितमनोमुद्रं च संक्षेपितुम् ।
मन्यन्त्योज्जयिनीजनो विदधति हृद्यं च लङ्कारे ।
प्रत्यङ्गार्पणसुन्दरं च न जनो जानाति तत्तु पुर ॥ (४९)
प्रपञ्चितकलानन्दे पाञ्चालीरेतिकर्मणि ।
सर्वास्त्रमोदं लभते मम कुसुमकार्मुकः ॥ (५०)
चकोर्य एव चतुराश्चन्द्रिकापानकर्मणि ।
आवन्त्य एव निपुणाः स्त्रियः सुरतकर्मणि ॥ (५१)
ताटङ्कवल्गनतरङ्गित गण्डलेख-
मानाभिलम्बिदरदोलिततारहारम् ।
आश्रोणि-गुल्फ-परिमण्डलितोत्तरीय
वेशं नमस्यत महोदयसुन्दरीणाम् ॥ (५२)

उत्तर-पूर्व की स्त्री

आर्द्रार्द्रचन्दनकुचार्पितसूत्रहार—
सीमन्तचुम्बिसिचयस्फुटबाहुमूल ।
दूर्वाप्रकाण्डरुचिरासु गुरुप्रभोगो
गौडाङ्गनासु चिरमेष चकास्ति वेषः ॥ (५३)

दक्षिणात्य स्त्री

आमूलतो वलितकुन्तल चारुचूड
चूर्णालकप्रकरलाञ्छितभालभाग ।
कक्षानिवेशनिबिडीकृतनीविरेष
वेषश्चिरं जयति कुन्तलकामिनीनाम् ॥ (५४)
नेत्रयाल्लाशरक्षेपैस्त्वयम्बरस्यापि ताडनी ।
भ्रूलता द्रविडस्त्रीणां द्वितीयं कामकार्मुकम् ॥ (५५)

नायिका

(विचित्रुपारुढ-यौवना)

पद्भ्या मुक्तास्तरलगतय सश्रिता लोचनाभ्या
श्रोणीबिम्ब त्यजति तनुता सेवते मध्यभाग ।
धत्ते वक्ष: कुचसचिवतामद्वितीय च वक्त्रम्
तद्गात्राणा गुणविनिमय कल्पितो यौवनेन ॥ (५५)

युवती

तरन्तीवाङ्गानि स्फुरदमललावण्य-जलधौ
प्रथिम्न प्रागल्भ्य स्तनजघनमुन्मुद्रयति च ।
दृशोर्लीलारम्भा स्फुटमपवदन्ते सरलता—
महो सारङ्गाक्ष्यास्तरुणिमनि गाढपरिचय ॥ (५६)

मुग्धा

ध्रुवमुदधितटीषु वल्लभस्ता
पटुदिततन्तुचर्यैर्भवन्ति काञ्च्य ।
इह हरिणदृश फणैर्यदीयै
विदधति मौक्तिकनदामभिस्य हारान् ॥ (५७)

लक्षित विरहिणी

आहारे विरति समस्तविषयग्रामे निवृत्ति परा
नासाग्रे नयन यदेतदपर यच्चैकतान मन ।
मौन चेदमिद च शून्यमखिल यद्विश्वमाभाति ते
तद्ब्रूया सखि योगिनी किमसि भो कि वा वियोगिन्यसि ॥ (५८)

यत्तालीदलपातपाण्डुवदन यन्नेत्रयोर्दुर्दिन
गण्ड. पाणिनिवेशनाच्च यदय सक्रान्त-पञ्चाङ्गुलि ।
गौरी मुग्धतनु वर्णन यदि न ते तत्कोपि चिन्ते युवा
धिग्धिग् त्वा सहपाशुखेलन-सखीवर्गेपि यन्निह्नव ॥ (५९)

नायिकागमन

तिलम्बगुर्वी यदृश श्रमेण
विश्रम्य सोपानपदेषु वाचिन ।
धामीररम्याम्बितवामपाणि
स्न्धाय हर्म्य करपाककोर ॥

(६०)

विरहिणी रोदन

मुक्तानङ्ग. कुसुमविशिखान्पञ्च चूर्णीकृताग्रा
न्मन्ये मुग्धां प्रहरति हठात्पत्रिणा वारणेन ।
तारां पूरः कथमितरथा स्फारनेत्रप्रणाली
वत्तोद्गाहस्तिवलिविपिने सारणी-साम्यमेति ॥ (६१)

पक्ष्मान्ते स्खलिता. कपोलफलके लोलं लुठन्त. क्षण
धारालास्तरलोच्छलत्तनुकणाः पीनस्तनास्फालनात् ।
कस्माद् ब्रूहि तवाद्य कण्ठविगलन्मुक्तावलीविभ्रम
विभ्राणा निपतन्ति बाष्पपयसा प्रस्यन्दिनो बिन्दव. ॥ (६२)

उपालम्भ

चन्द्रोपालम्भ

प्रियविरहमहोष्णान्मुर्मुराङ्गलेखा–
मयि हतकहिमांशो मा स्पृश क्रीडयापि ।
इह हि तव लुठन्त प्लोषभाव भजन्ते
दरजरठमृणाली-काण्डमुग्धा मयूखा ॥ (६३)

मूर्तिर्दुग्धसमुद्रतो भगवतः श्रीकौस्तुभो सोदरो
सौहार्दं कुमुदाकरेषु किरणा पीयूषधारागिर ।
स्पर्धा ते वदनाम्बुजैर्मृगदृशा तत्पाण्डुचूडामणे
हहो चन्द्र कथ न मुञ्चसि मयि ज्वालामुचो वेदनाः ॥ (६४)

मदनोपालम्भ

मागुडचापममी शरा मनसि मे मग्ना. मम पञ्च ते
निर्दग्धं विरहाग्निना वपुरिदं तैरेव सार्धं मम ।
कष्टं नाम निरायुधोऽसि भवता जेतुं न शक्यो जनो
दु.खी स्यामहमेक एव सकलो लोकः सुखं जीवतु ॥ (६५)

चन्द्र

(चन्द्रकला)

सिद्धामनङ्गपुरतोरणकान्तिभाज—
मिन्दोर्विलोकय तनूदरि नूतनस्य ।
देशान्तरप्रणयिनोऽपि यत्र मूर्ना—
नूनं मिथ सन्ति मिलन्ति विलोचनानि ॥ (६६)

चन्द्रास्त

यातस्यास्तमनन्तरं दिनकृतो वेशेन रागान्वित
स्वैरं शीतकरः करं कमलिनीमालिङ्गितुं योजयन् ।
शीतस्पर्शमवाप्य संप्रति तया गुप्ते मुखाम्भोरुहे
हासेनेव कुमुद्वतीवनितया वैलक्ष्ययाण्डूकृतः ॥ (७४)

मिश्रकचन्द्र

चिताचक्रं चन्द्रः कुसुमधनुषो दग्धवपुषः
कलङ्कस्तस्यायं वहति मलिनाङ्गार तुलनाम् ।
अयं तस्य ज्योतिर्दरदलितकर्पूर धवल
मरुद्भिर्भस्मेव प्रसरति विकीर्णं दिशि दिशि ॥ (७५)

बहुरूपकचन्द्र

फेनं क्षीराम्बुराशेरयमुदयगिरेरिन्दुशृङ्गातपत्रं
पूर्वस्या भालदेशे तिलक इव दिशो दर्पणो यामिनीनाम् ।
वापीनां राजहंसः परिलमितसटः केशरी वानराना–
माकाशस्याट्टहासः कुमुदवनचयानन्दकोशः शशाङ्कः ॥ (७६)

चन्द्रोदय

यस्त्रैलोक्यजितः स्मरस्य किमपि क्रीडातडागं महद्
यश्चाभोगभृतो भुवः प्रकटिताकारार्पणे दर्पणः ।
सोयं सुन्दरि मन्दराद्रिमथित-क्षीरोदसारोच्चय
श्चन्द्रः कुङ्कुमपत्रपिण्डलडहच्छायः समुद्गच्छति ॥ (७७)

अमावेकद्वित्रिप्रभृतिपरिपाट्या प्रकटयन्
कला स्वैरं स्वैरं नवकमलकन्दाङ्कुररुचः ।
पुरन्ध्रीणां प्रेयोविरहदहनोद्दीपितदृशां
कटाक्षेभ्यो बिभ्यन्निभृत इव चन्द्रोभ्युदयते ॥ (७८)

पर्णं नागरखण्डमार्द्रसुभगं पूगीफलं पालयं
कर्पूरस्य च यत्र कोऽपि चतुरस्ताम्बूलयोगक्रमः ।
देशः केरल एष केलिमदनं देवस्य शृंगारिणः
स्त दृष्ट्वा कुरु कोमलाङ्गि सफले द्राघीयसी लोचने ॥ (७९)

वाकमत्वागसमुद्रवैरभिनवैर्नित्यं रसोल्लासिनो
यामाद्यगृय. प्रणयन्ति यत्र मदनक्रीडा महानाटकम् ।
भ्रमान्भ्रामत्व दक्षिणेन त इमे गोदावरीसंगमा
सप्तानामपि वारिधिप्रणयिता द्वीपान्तराणि स्थिताः ॥ (८०)

येनैव सागरमहं लघु लङ्घयामि
किं सेतुना समरकर्मणि वो नयामि ॥ (८७)

नीलेन सैन्यपतिना प्रभुताडनान्ते
मुक्तस्तथा किलविलाप्ध्वनिरेष रौद्रः ।
स्पष्टापि वाञ्छति सगोजभवः श्रवांसि
शङ्के यथा करयुगेन मुधा पिधातुम् ॥ (८८)

ऋतुचक्रवाल

वसन्त का आरम्भ

गर्भग्रन्थिषु वीरुधां सुमनसो मध्येऽङ्कुरं पल्लवा
वाञ्छामात्रपरिग्रहः पिकवधूकण्ठोदरे पञ्चमः ।
किं च त्रीणि जगन्ति जिष्णुदिवसैर्द्वित्रैर्मनोजन्मनो
देवस्यापि चिरोज्झितं यदि भवेदभ्यासवश्यं धनुः ॥ (८९)

वसन्त

जम्बूनां कुसुमोदरेष्वतिरसादाबद्धपानोत्सवाः
कीराः पक्वफलाशया मधुकरीश्चुम्बन्ति मुञ्चन्ति च ।
एतेषामपि पश्य किंशुकतरोः पर्वैरभिन्नत्विषा
पुष्पभ्रान्तिभिरापतन्ति सहसा चञ्चुषु भृङ्गाङ्गना ॥ (९०)

ये दोलाकेलिकाराः किमपि मृगदृशां मन्युतन्तुच्छिदो ये
सद्यः शृङ्गारदीक्षाव्यतिकरगुरवो ये च लोकत्रयेऽपि ।
ते कण्ठे लोलयन्तः परभृतवयसां पञ्चमं रागराजं
वान्ति स्वैरं समीराः स्मरविजय-महासाक्षिणो दक्षिणात्याः ॥ (९१)

वसन्तपथिक

सव्याधेः कृशताक्षतस्य रुधिरं दष्टस्य लालास्रव
सर्वं नैतदिहास्ति तत्कथमसौ पान्थस्तपस्वी मृतः ।
आ ज्ञातं मधुलम्पटैर्मधुकरैरारब्धकोलाहले
नूनं साहसिकेन चूतमुकुले दृष्टिः समारोपिता ॥ (९२)

ग्रीष्मवेश

जलार्द्रं सव्यानं विमिश्रिसनयं केलिवलयाः
शिरीषैरुत्तंसं विचकिलमयी हाररचना ।
शुचावेणाक्षीणां मलयजरसार्द्रं स्तनतटो
विना तन्त्रं मन्त्रैरतिस्मरणमृत्युञ्जयविधिः ॥ (९३)

ये दोलाकेलिकारा: किमपि मृगदृशां मन्युतन्तुच्छिदो ये
मन्च शृंगारदीक्षाध्वनिकरगुरवो ये च लोकत्रयेऽपि।
ते कण्ठे लोठयन्त: परभृतवयसां पञ्चमं रागराजं
वान्ति स्वैरं समीरा: स्मरविजयमहासाक्षिणो दक्षिणात्या: । (१००)

मदन

सुधासूतेर्बन्धुर्मधुसहचर: पञ्चमरुचि-
र्दिशल्लीलां बल्ली कुवलयदृशां नर्मणि गुरु: ।
सदैव शृंगारी हृदयवसति पञ्चविशिख:
सदा स्वादून् कुर्वन्मधुमदविकारान् विजयते ॥ (१०१)

मदनशौर्य

कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने
परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य ।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता
जयति सुरतलीला नाटिकासूत्रधार: ॥ (१०२)

मदनलेख

ताडीदलं यदवरोधमिदं यदेषा
मुद्रा स्तनाङ्कघनचन्दनपङ्कमूर्ति ।
यद्बन्धनं बिसलता ननु तन्तुभिश्च
कस्याश्चिदेष गलितस्तदनङ्गलेख: ॥ (१०३)

पाणिप्रेङ्खणतो विशीर्णशिरस: स्वेदाम्बुभग्नश्रिय
स्तत्कृत्याङ्कविशेषतो मनसि ते किंचिद्भजीर्नि गता ।
वैचित्र्यात्पुनरुक्त लाञ्छनभृत खण्डेन वामेन वा
व्याक्षेपं कथयन्ति पक्ष्मलदृशो लेखाक्षरश्रेणय: ॥ (१०४)

मदनोपालम्भ

प्रापुर्बाणाग्रमसीशरा मनसि ते मग्ना शम पञ्च ते
निर्दग्धं विरहाग्निना वपुरिदं तैरेव सार्धं मम।
स्पष्टं काम निरायुधोऽसि भवता जेतुं न शक्यो जनो
दु:खी स्यामहमेव एव सकलो लोक: सुखं जीवतु ॥ (१०५)

कटाक्ष

प्रणालीदीर्घस्य प्रसृमरतरङ्गस्य सुहृद
कटाक्षव्याक्षेपा शिशुशफरफालप्रतिभुव: ।

सुधाया. सर्वस्व कुसुमधनुषोस्मान् प्रतिमाखे
नव नेत्राद्वैत कुवलयदृश. सनिदधति ॥ (१०६)

विलोकन

भवनभुवि मृजन्तस्तारहारावतारान्
दिशि दिशि विदिशन्त. केतकाना कुटुम्बम् ।
वियति च रचयन्तश्चन्द्रिका मुग्धमुग्धा
प्रतिनयननिपाता सुभ्रुवो विभ्रमन्ति ॥ (१०७)

स्वप्न

क्व पेय ज्योत्स्नाम्भो वदन बिसवल्लीसरणिभि
र्मृणालीतन्तुभ्य मिचयरचना कुत्र भवतु ।
क्व वा पारीमेयो बत बकुलदाम्ना परिमल.
कथ स्वप्न साक्षात्कुवलयदृश कल्पयतु ताम् ॥ (१०८)

नायकाभिलाषा

न नीलाब्ज चक्षु मरसिरुहमेतन्न वदन
न बन्धूकस्येद मुकुलमधरस्तद्द्युतिधर ।
ममाप्येषा भ्रान्ति प्रथममभवद्भृङ्ग किमुते
कृत यत्नैरेभ्यो विरम विरमेत्यञ्जलिरयम् ॥ (१०९)

गुणकीर्तन

तद्वक्त्र यदि मुद्रिता शशिकथा हा हेम सा चेद्युति
स्तच्चक्षुर्यदि हारित कुवलयैस्तच्चेत्स्मित का सुधा ।
धिक्कन्दर्पधनुर्भ्रुवौ च यदि ते किं वा बहु ब्रूमहे
यत्सत्य पुनरुक्त-वस्तुविमुख सर्गक्रमो वेधस ॥ (११०)

नायक आगमन

द्वारगतं काप्यवगम्य कान्तमुन्मय्य वक्त्र मिचयाञ्चलेन ।
विमुञ्चती मण्डनकर्मदीर्घ यथायथात्मानमलचकार ॥ (१११)
काप्यागत वीक्ष्य मनोधिनाथ समुत्थिना सादरमासनाय ।
करेण शिञ्जद्वलयेन तल्पमास्फालयन्ती कलमाजुहाव ॥ (११२)

नायिका-गमन

नितम्बगुर्वी दहुश श्रमेण विश्रम्य सोपानपदेषु काचित् ।
काञ्चीकलापस्थितवामपाणि-रुत्थाय हर्म्यं वलयारुरोह ॥ (११३)

भ्रूः

मसोसुमौ मन्मथचापयष्टि रतनुरा विभ्रमवैजयन्ती।
गवाक्षमालाङ्गनपांशीयमनङ्गता धुरन्धुयाति दृष्टिम् ॥ (११४)

मध्य-भाग

कुचकलशमहिम्ना श्रोणिभारप्रथिम्ना
विहितनिबिडपीडस्या इवी मुष्टिपष्टा।
त्रिवलिवलयभङ्गैर्निर्मितैर्यस्य मामा
भ्रुकुटिमिव घटन्ति श्रेणयो मध्यभागाः ॥ (११५)

स्तन

गजकुम्भौ कुम्भावपि जनितुगजन्म च गतं
प्रवृद्धौ मात्रा च स्तन इति समानावुदयिनौ।
मिथः सीमामात्रे यदिह मनयोर्मण्डनभुवो
रपि स्पर्धा नूनं यदिह हि समस्या इति नता ॥ (११६)

वेश

कण्ठे मौक्तिकमालिका स्तनतटे कार्पूरमच्छं रजः
सान्द्रं चन्दनमङ्कुरे बलयिता पाणौ मृणालीलता।
तन्वी सत्भियं चकास्ति शुचिनी चीनांशुके बिभ्रती
शीतांशोरधिदेवतेव गलिता व्योमाग्रमारोहन ॥ (११७)

जलक्रीडा

मौक्तं स्नानाशुकानि स्मरभरगम्यानुकूलैर्दुकूलैः
सस्नातुं केशपाशानगुरुसुरभिणा धूपधूमोद्गमेन।
ताम्बूलोल्लेखरेखामपि विरचयितुं घोनपृष्ठेधरोष्ठे
तीरोत्तीर्णास्तरुण्यः क्षणमुपविविशुर्वल्लिवेश्मगृहेषु ॥ (११८)

कन्दुकक्रीडा

अमन्द-मणिनूपुर-प्रचुरचारु-चारक्रम
झणज्झणितमेखलास्खलिततारहारच्छटम् ।
इदं तरलकङ्कण वलिविशेषवाचालितं
दृशो हरति सुभ्रुव स्त्रिमपि कन्दुकक्रीडितम् ॥ (११९)
यस्याः स्वेदाम्बुबिन्दुच्युततिलकतया व्यक्त-वक्त्रेन्दुकान्ते
पर्याप्तस्कन्दुकस्य ग्रहणगणना केलिवाचालिताया ।

उत्पातोत्ताल-तालभ्रम-नमितदृशस्तत्ताडनोत्तालतालो
लीलाभ्यामौनिता स्म. प्रतिपदममुना कन्दुकक्रीडितेन ॥ (१२०)
चेलाञ्चलेन चलहारलताप्रकाण्डै-
र्वेणीगुणेन च वलाद्वलयीकृतेन ।
स्वेच्छाहितभ्रमरसः भ्रमिमण्डलीभि-
रम्य रस रचयतीव चिर नतभ्रू ॥ (१२१)
शिञ्जामणिरतोरणस्खलवलयस्य मेदनी
मिलोगलितगुम्फनास्तरत्नवेणिवान्ता स्रज ।
इतश्चुरितमन्तरा त्रुटितहारमुक्ता-फलै
रित. श्रवणपातत कमलपत्रमाम्ने च्युतम् ॥ (१२२)

वनविहार

उज्झन्त्य स्वर्णवाञ्चीर्श्रेणिनि रशनया चम्पकस्याममय्या ।
तन्वत्यस्तारहाराग्निचकित-रतिवापडित-मुक्तावलीभि ।
किं चाशोक-प्रवालैररुणमणिमयान् गत्यजन्योवनमा-
गुत्कीर्णा कामबाणैरिव हृदि सुहृदो वल्लभाना बभूवु. ॥ (१२३)

उद्वेग-कथन

गौवाद्दुद्विजने त्यजत्युपवन द्वेष्टि प्रभामैन्दवी
हारात्त्रस्यति चित्रकेलिसदसो वेश विष मन्यते ।
मास्ते केवलमब्जिनीकिसलयप्रस्तारिणशूयाने
सङ्कल्पोपनतत्वदाकृतिरसायत्तेन चित्तेन सा ॥ (१२४)

तनुता

दोलालीला स्वगतमतन स्तनभुवी निर्झराम्भे
तस्या शुष्यत्तगरसुमनपाण्डुरा गण्डभित्ति ।
तद्गात्राणा किमिव हि वद्द बूमहे दुर्बलत्व
येषामग्रे प्रतिपदुदिता चन्द्रलेखाप्यकल्पी ॥ (१२५)

विनावस्था

नारोत्भ प्रभुनिलय प्रजग्वान् याम प्रणामाजिन ।
भ्रुकाणा नर्मिरर्द्धलवक्लिवविवा पर्यिद्दक्षि स्मर वधु
कि भाध्यन् कथयामि सर्विमर्षिता स्वहर्म्यसाद्यने
[illegible] क्लिष्टा स्वर्णे ॥ (१२६)

प्रियसम्बोधन

विलिम्पत्येतस्मिन्-मलय रजमार्द्रेण महसा
दिशा चक्र चन्द्रे सुकृतमिदमस्या मृगदृश.।
दृशोर्वाणि पाणौ वदनमसव कण्ठकुहरे
हृदि त्वं ह्री. पृष्ठे वचसि च गुणा एवभवत.. ॥ (१३३)
चन्द्र चन्दनकर्दमेन लिखित सा मार्ष्टि दष्टाधरा
वन्द्य निन्दति यच्च मन्मथमसौ भक्ताग्रहस्ताञ्जलि ।
काम पुष्पशर किलेति सुमनोवर्गं लुनीते च य
तत्का सा सुभग त्वया वरतनुर्वातूलता लम्भिता ॥ (१३४)

पोचित

केयूरीकृतकङ्कणावलिरसौ कर्णावतंसीकृत
व्यालोलालकपद्धति पथि पुरो बद्धाञ्जलि पृच्छति ।
यावत्किञ्चिदुदन्तमात्मनरमितुस्तावन्म एवंस्यथ
व्रीडावक्रितकण्ठनालमबला कं वैनं भिन्ना रसं (१३५)

सर्वाप्रंथश

दृष्ट सगमसाक्षिभिर्निगदित वैतालिकश्रेणिभि
र्न्यस्त चेतसि सज्जनै मुक्तविधि काव्येषु सचारितम् ।
उत्कीर्णं कुशलै प्रशस्तिविशदै गीतच नाकेपदा-
दानैर्निर्जितवैरिवीर भवतश्चन्द्रावदात यश ॥ (१३६)
मा चन्द्रादपि चन्दनादपि दरव्याकोषकुन्दादपि
क्षीराब्धेरपि शेषतोपि फणिनश्चण्डीशहासादपि ।
कर्णाटीसितदन्तपत्रमहसोप्यत्यन्तमुद्द्योतिनी
कीर्तिस्ते भुजवीर्यनिर्जितरिपोर्लोकत्रय भ्राम्यति ॥ (१३७)

संकीर्ण

प्रारम्भे प्रथम क्रमेण विजिते कृत्ये धनस्यार्पण
केलिद्यूतविदो पण प्रियतमे कान्तामुन पृच्छति ।
मन्मर्गान्तविमूढमन्मपरमस्फारीभवद्दूरणया
स्वैर गौरिविसारणाय निहित स्वेदाम्बुगर्भ कर: ॥ (१३८)

मध्याह्न

धत्ते पद्मवनादमेपुरपरि स्व धर्मनाम दिश.
जनमन्मथमालिप्रवर्ति शिखी मध्येशिखण्ड शिर ।

मिथ्या लेढि मृणालकोटिरभसादृष्ट्वाङ्कुरं शूकरो
मध्याह्ने महिषश्च वाञ्छति निजच्छायामहाकर्दमम् ॥ (१३९)

प्रदोष

सैरन्ध्रीकरकृष्टपट्टकसरत्ताराघ्वनिदूरतो
दूतीसूचित-सन्धिविग्रहविधिः सोल्लासलीलाचय. ।
वारस्त्री-जनसज्ज्यमानशयन· संनद्धपुष्पायुध—
श्रीखण्डद्रवधौतगौरमलिनो रम्यः क्षणोवर्तते ॥ (१४०)

भोगावली

भिन्दान. सुन्दरीणां पतिषु रणमयं हर्म्यपारावतानां
वाचालत्वं दधान· कवितृषु च गुणं प्रातिभं सदधान· ।
प्रातस्त्यस्तूर्यघोषः स्थगयति गगनं मासलं प्रागुनल्पा
दस्वल्पादुत्थितानां नरवरकरिणां शृङ्खलाशिञ्जितेन ॥ (१४१)

प्रिय-स्मरण

नागवल्लिरधिरोहतु पूगं
राजिरेणतिलकेन समेतु ।
श्यामसौ भजति कोकिलकण्ठी
वाचमर्चतु कवे· सुकृतार्थ· ॥ (१४२)

श्रुतिसुख

वीणया च निनदेन च वेणो
केकया च कलकण्ठगिरा च ।
शीत्कृतैश्च रणितैश्च वधूना
भुञ्जते श्रुतिसुखानि युवान ॥ (१४३)

तडाग

एतन्मानिनि मानसं सुरसरो निर्लूनहेमाम्बुजं
पार्वत्या प्रियपूजनार्थमभुतो गङ्गासरिन्निर्गता ।
अस्माच्चित्रशिखण्डिभिश्चपरमे ब्रह्मण्युपादीयते
स्नानोत्तीर्णवृषाङ्क-भस्मरजसा सगात्पवित्रं पय. ॥ (१४४)

उपालम्भ

श्रध्वश्रमाय चरणौ विरहाय दारा
अभ्यर्थनाय वचनं च वपुर्जरायै
एतानि मे विदधतस्तव सर्वदैव
धातस्त्वया न यदि किं न परिश्रमोपि ॥ (१४५)

घन्य

शिलापट्टोद्घृष्टा मलयजरसालेपसुभगा
स्फुरद्धूमामोदा दरदलित—कर्पूरसुहृद.।
इत. कम्बुच्छेदच्छविभिरहिवल्ली-किसलयै-
र्निषेवन्ते केऽपि श्रमुकफलपाणीन् सुकृतिन.॥ (१८६)

राजशेखर की पूर्वकवियों को श्रद्धाञ्जलि

कवि-प्रशस्ति

राजशेखर ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का न केवल अध्ययन किया था अपितु उनके गुणदोषों का सम्यक् परीक्षण भी किया था। पूर्ववर्ती कवियों के प्रति उन्होंने जो सादर श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है वह कविप्रशस्तिरूप में प्रस्तुत है—

१—द्रोण

सरस्वती-पवित्राणां जातिस्तत्र न कारणम् ।
व्यासस्पर्धी कुलालोऽभूद्द्रोणो भारते कवि ॥

२—गुणाढ्य

हृता शिखिनि गौणाढ्या स्तोकशेषापि सा कथा ।
सुरलोकेन्दुलेखेव लोके पूज्यतमाऽभवत् ॥

३—पाणिनि

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह ।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम् ॥

४—भास

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

५—रामिलसोमिल

तौ शूद्रककथाकारौ रम्यौ रामिलसोमिलौ
काव्यं ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोपमम् ॥

६—विजया

सरस्वतीव कर्णाटी विजयाङ्का जयत्यसौ ।
या वैदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम् ॥

७—गणपति

प्रथो गणपतिं वन्दे महामोदविधायिनम् ।
विद्याधरगणैर्यस्य पूज्यते कण्ठगर्जितम् ॥

८—कुलशेखर वर्मा

दूरादपि सताचित्ते लिखित्वाऽऽश्चर्यमञ्जरीम् ।
कुलशेखरवर्माऽऽस्या चकाराश्चर्य-मञ्जरीम् ॥

९—गोनन्दन

अनुप्रासिनि सदर्भे गोनन्दसम कुत. ।
यथार्थनामतैवास्य यद्वाग्वदति चास्नाम् ॥

१०—दण्डी

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणा ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥

११—मायुराज

मायुराजसमो जज्ञे नान्य कलचुरि कवि ।
उदन्वत समुत्तस्थु कति वा तुहिनाशव ॥

१२—कुमारदास

जानकीहरण कर्तु रघुवंशे स्थिते सति ।
कवि कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ ॥

१३—सुभद्रा

पार्थस्य मनसि स्थान लेभे खलु सुभद्रया ।
कवीना च वचोवृत्ति-चातुर्येण सुभद्रया ॥

१४—शीलाभट्टारिका

शब्दार्थयो समो गुम्फ पाञ्चाली रीतिरुच्यते ।
शीलाभट्टारिकावाचि वाणोक्तिषु च सा यदि ॥

१५—विकटनितम्बा

के वैकटनितम्बेन गिरा गुम्फेन रञ्जिता ।
निन्दन्ति निजकान्ताना न मौग्ध्यमधुर वच ॥

१६—भीमट

कालञ्जरपतिश्चक्रे भीमट पञ्चनाटकीम् ।
प्राप प्रबन्धराजत्व तेषु स्वप्नदशाननम् ।

१७—मनङ्गदिवाकर

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकर
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्य समो बाणमयूरयो

१८—मयूरभट्ट

दर्पं कविभुजङ्गानां गता श्रवणगोचरम् ।
विषविद्येव मायूरी मायूरी वाङ् निकृन्तति ॥

१९—रत्नाकर

मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे
इतीव स कृतो धात्रा कवी रत्नाकरोऽपरः ॥

२०—त्रिलोचन

कर्तुं त्रिलोचनादन्यः कः पार्थविजयं क्षमः ।
तदर्थः शक्यते द्रष्टुं लोचनद्वयिभिः कथम् ॥

२१—धनंजय

द्विसन्धाने निपुणतां स तां चक्रे धनञ्जयः ।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनञ्जयः ॥

२२—प्रभुदेवी

सूक्तीनां स्मरकेलीनां कलानां च विलासभूः ।
प्रभुदेवी कविर्लाटी गतापि हृदि तिष्ठति ॥

२३—कालिदास

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥

२४—बाणभट्ट

(१) [illegible] ।
बाणस्य [illegible] ॥
(२) बाणेन हृदि लग्नेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥

२५—माघ

कृत्स्नप्रबोधकृद् वाणी भारवेरिव भारवेः ।
माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते ॥

२६—भर्तृ.

[illegible] ।
[illegible] ॥

स्नाता. स्वर्गतरङ्गिणीमपि मदा पूता पुनन्तिरयो ।
व्युत्पत्त्या परया रसोपनिषदां रामायणस्यास्य ते ॥
यदुक्ति-मुद्रा सुहृदर्थवीथी
नधारमो यच्चुलकैश्चुलुकय. ।
तथाऽमृतस्यन्दि च यद्-वचोवै
रामायणं तत् कविकृत् पुनाति ॥

३७—वररुचि

यथार्थता कथ नाम्नि माऽभूद् वररुचेरिह ।
तदधत्त कण्ठाभरणं म सदारोहणप्रिय. ॥

३८—प्रद्युम्न

प्रद्युम्नान्नापरस्येह नाटके पटवो गिर· ।
प्रद्युम्नान्नापरस्येह पौष्पा अपि शरा खरा ।

३९—अचल

कविरमर· कविरचल कविरभिनन्दश्च कालिदासश्च ।
अन्ये कवय कपयश्चापल-मात्र परं दधति ॥

४०—नानाकवयः

इह कालिदास—भर्तृमेण्ठावत्रामररूपवर्पभारवय. ।
हरिचन्द्र चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम् ॥
भासौ रामिलसौमिलो वररुचि श्रीसाहसाङ्क. कवि
मेण्ठो भारविकालिदास-तरला स्कन्द सुबन्धुश्चय ।
दण्डी बाणदिवाकरौ गणपति कान्तश्च रत्नाकर
सिद्धा यस्य सरस्वती यदि भवेत् के तस्य सर्वेऽपि ते ॥

राजशेखर-प्रशस्तयः

पातुं श्रोत्ररसायनं रचयितुं वाचः सतां सम्मताः।
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः।
भोक्तुं स्वादुफलं च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुकं
तद् भ्रातः शृणु राजशेखरकवेः सूक्तीः सुधास्यन्दिनीः॥
समाधिगुणशालिन्यः प्रसन्नपरिपक्त्रिमाः।
यायावरकवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तयः॥
यायावरः प्राज्ञवरो गुणज्ञैराशंसितः सूरिसमाजवर्यैः।
नृत्यत्युदारं भणिते रसस्था नटीव यस्योद्भटरसा पदश्रीः॥
स मूर्तो यत्रासीद्गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा।
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागास्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले॥
आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारांनिधिः
त्यागी सत्यसुधाप्रवाहशशभृत्कान्तः कवीनां गुरुः।
वर्ण्यं वा गुणरत्नरोहणगिरेः किं तस्य साक्षादसौ
देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः॥

—

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ

अप्पयदीक्षित .. चित्रमीमांसा—काव्यमाला सीरीज, १९४१ (३८)

अभिनवगुप्त .. अभिनवभारती—दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली १९६१

आनन्दवर्धन .. ध्वन्यालोक—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९४०

कविकर्णपूर .. अलंकारकौस्तुभ—राजशाही, १९२६

कुन्तक .. वक्रोक्तिजीवित—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५५

केशवमिश्र .. अलंकारशेखर—काशी संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस, १९१७

क्षेमेन्द्र .. औचित्यविचारचर्चा—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६४

कविकण्ठाभरण—मोतीलाल बनारसीदास, १९६७

सुवृत्ततिलक—

दण्डी .. काव्यादर्श—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९५८

धनंजय .. दशरूपक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९५५ १९५५

नरेन्द्रप्रभसूरि .. अलंकारमहोदधि—ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९४२

भरत .. नाट्यशास्त्र—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, १९३४

भामह .. काव्यालंकार—बालमनोरमा प्रेस, मद्रास, १९५६

भोजराज .. सरस्वती कण्ठाभरण—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३४

शृंगारप्रकाश—पुनर्वसु, मद्रास, १९६३
मम्मट .. काव्यप्रकाश—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६०
राजशेखर .. काव्यमीमांसा—ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा, १९२४
रुय्यक .. अलंकारसर्वस्व संजीवनी—मोतीलाल बनारसी दास, १९६५
वामन . काव्यालंकारसूत्र वृत्ति-काव्यमाला सीरीज, १९२६
विद्यानाथ .. प्रतापरुद्रयशोभूषण—गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई, १९०९
विश्वनाथ .. साहित्यदर्पण—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६
विश्वेश्वर .. अलंकारकौस्तुभ—काव्यमाला संस्करण,
हेमचन्द्र .. काव्यानुशासन—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३४
देशीनाममाला—बम्बई, १८८०
शब्दानुशासन
वाग्भट .. काव्यानुशासनविवेक.

दृश्य-काव्य

कालिदास .. अभिज्ञानशाकुन्तल—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९५५
मालविकाग्निमित्र (नाटिका)—चौखम्बा सीरीज, आफिस, वाराणसी, १९५१
श्री हर्ष . रत्नावली (नाटिका)—चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस, १९५३
प्रियदर्शिका (नाटिका)—चौखम्बा संस्कृत, वाराणसी, १९५३
भवभूति .. उत्तररामचरित—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
महावीरचरित—चौखम्बा विद्याभवन, बनारस, १९५५
मालतीमाधव (प्रकरण)—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६
राजशेखर .. बालरामायण—बनारस, १९६९,

	बालभारत—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
	विद्धशालभञ्जिका (नाटिका)—चौखम्बा विद्या-भवन, वाराणमी, १९६५
बिल्हण ..	कर्णसुन्दरी (नाटिका)—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८८८

सट्टक

राजशेखर ..	कर्पूरमंजरी—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
	कर्पूरमंजरी—आर्यभूषण प्रेस, पूना, १९६०
	कर्पूरमजरी—हार्वर्ड ओरियण्टल सीरीज, १९०१
	कर्पूरमजरी—युनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, १९३९
घनश्याम ..	आनन्दसुन्दरी—मोतीलाल बनारसीदास, १९५५
विश्वेश्वर ..	शृंगारमंजरी—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
प्रसन्नचन्द्र ..	रम्भामंजरी—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८८९
रुद्रदास ..	चन्द्रलेखा

धर्म-ग्रन्थ

ऋग्वेद ..	भारत मुद्रणालय, सतारा, १९४०
याज्ञवल्क्यस्मृति ..	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
बौधायन धर्मसूत्र ..	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, १९३४
वैखानस गृह्यसूत्र ..	" " "

गद्य-काव्य

बाणभट्ट ..	हर्षचरित—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
सोड्ढल ..	उदयसुन्दरी-कथा
	यशस्तिलकचम्पू—तारा यन्त्रालय, वाराणसी, १९६०
क्षेमेन्द्र ..	बृहत्कथामंजरी—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०१

अन्य

अमरसिंह ..	अमरकोश, पूना, १९१३
आपटे वामन सदाशिव ..	राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग्ज—आर्यभूषण प्रेस, पूना, १८८६
बरो ए० ..	भवभूति एण्ड हिज प्लेस इन संस्कृत लिटरेचर—कलकत्ता, १७३८

राजशेखर

डे० एस० के० एण्ड दास } दि हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—कलकत्ता,
गुप्ता एस० एन० } १९६४

झा-गंगानाथ .. कविरहस्य—हिन्दुस्थानी अकादमी, इलाहाबाद १९५०

फ्लीट ऑफ़ जॉन . इंडियन एण्टीक्वेरी, १८८७

कीलहार्न एफ़० .. एपिग्राफ़िका इण्डिका, १८८९

कृष्णमाचारी एम० . दि हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, मद्रास, १९३७

काणे पी० वी० . एन इण्ट्रोडक्शन टू साहित्यदर्पण

मूलर एफ़० एक्स० .. इण्डिया व्हॉट कैन इट टीच अस ? लन्दन, १८८३

मिराशी वी० वी० पाठक कमेमोरेशन वाल्यूम

पीटर्सन एण्ड परब इण्ट्रोडक्शन टू वल्लभदेवाज सुभाषितावली, बाम्बे संस्कृत सीरीज़, १८८६

विल्सन एच० एन० सिलेक्ट स्पेसिमन ऑफ दि थियेटर ऑफ दि हिन्दूज़, वा० ३, लन्दन, १८७१

झा० गंगानाथ कविरहस्य—हिन्दुस्थानी एकादमी, इलाहाबाद, १९५०

संगीत रत्नाकर—आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुण्यपतन, १९४२